॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

१९९

श्रीब्रह्मानन्दगिरिविरचितं

तारा-रहस्यम्

सटिप्पण 'विद्या' हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः

श्री पं० सरयूप्रसादशास्त्री 'द्विजेन्द्रः'



चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

१९७०

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-1
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी-1
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०२६
मूल्य : ३-००

गोपाल मन्दिर लेन,
पो० बा० ८, वाराणसी-१ (भारतवर्ष)
फोन : ६३१४५

प्रधान शाखा
चौखम्बा विद्याभवन
चौक, पो० बा० ६९, वाराणसी-१
फोन : ६३०७६

THE
KASHI SANSKRIT SERIES
199

TĀRĀRAHASYA

OF

BRAHMĀNANDA GIRI

Edited with

'VIDYĀ' HINDĪ COMMENTARY

by

PT. SARAYUPRASAD SHASTRI 'Dvijendra'

THE
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI-1
1970

Gopal Mandir Lane,
P. O. Chowkhamba, Post Box 8,
Varanasi-1 (India)
1970
Phone : 63145

First Edition
1970
Price Rs. 3-00

Also can be had of
THE CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Publishers and Oriental Book-Sellers
Chowk, Post Box 69, Varanasi-1 (India)
Phone : 63076

प्राक्कथन

भारतीय तन्त्रशास्त्रों में मन्त्रों की शक्ति अद्भुत है जिस प्रकार अत्यन्त लघु अंकुश-द्वारा मदोन्मत्त महाबलशाली गजराज भी वशीभूत हो जाता है। उसी प्रकार बड़े-से-बड़े प्रबलशक्तिशाली देवी-देवताओं को भी कुशल साधक अपने सविधि अनुष्ठानपूर्वक मन्त्रशक्ति द्वारा शीघ्र ही आकर्षित करने में पूर्ण समर्थ होता है। आज भी संयम-नियमपूर्वक अनुष्ठान के साथ की गयी सारी सिद्धियाँ मन्त्रों के वशीभूत हैं।

'काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च मातङ्गी कमलात्मिका॥
धूमावती च बगला महाविद्या प्रकीर्तिताः'।

उपर्युक्त दश महाविद्याओं में भगवती काली के बाद तारा का ही नाम आता है। अतः ये तारा देवी भी परम महाविद्या हैं। सब से प्रथम त्वरित् सिद्धि को देने वाली, सर्वगुणों से युक्त एवं समस्त देवगणों से पूजित संसार में यदि कोई सारभूत देवता हैं तो यही। वस्तुतः इस तारा-रहस्य को अच्छी तरह समझ कर यदि कोई साधक इनकी उपासना करे तो देव-दानव-दुर्लभ उन समस्त सिद्धियों को वह सद्यः प्राप्त कर सकता है, इसमें सन्देह नहीं।

प्रस्तुत पुस्तक का नाम 'तारा-रहस्य' है। इसमें भगवती तारा देवी का चरित्र-चित्रण, स-विधि उपासना पद्धति एवं तत्सम्बन्धी अन्यान्य विविध विषयों का संग्रह अनेक तान्त्रिक ग्रन्थों से श्रीपरमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मानन्द गिरि महाराज ने संक्षिप्त में किया है। चार पटलों में विभाजित यह ग्रन्थरत्न तान्त्रिकों में प्रख्यात है। जिसकी विवेचना की यहाँ आवश्यकता नहीं। पाठक स्वयं ग्रन्थावलोकन करें।

वस्तुतः तन्त्रशास्त्र की ऐसी सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थरत्न का अभाव तान्त्रिक विद्वानों को तो खटक रहा ही था, विशेषतः तारा के उपासक वर्ग को

बड़ा असन्तोष था। परन्तु इस कमी को विद्याभास्कर मन्त्रमनीषी, साहित्याचार्य पण्डित श्री सरयूप्रसाद जी शास्त्री 'द्विजेन्द्र' ने मूलपाठ की शुद्धता के साथ 'विद्या' नामक राष्ट्रभाषा हिन्दी व्याख्या एवं सन्दिग्ध स्थलों पर टिप्पणी लिखकर ग्रन्थ को अतीव उपासक-जनसुलभ कर दिया है।

इस कार्य के लिए 'द्विजेन्द्र' जी को मैं हार्दिक साधुवाद करता हूँ। आपने अत्यन्त व्यस्त जीवन में भी प्रस्तुत ग्रन्थ के मूल पाठों को विशुद्धि-पूर्वक हिन्दी रूपान्तर कर बहुजनहिताय की भावना से उपासक वर्ग का अत्यधिक कल्याण किया है। परन्तु हमें हार्दिक दुःख है कि अपने जीवन काल में 'द्विजेन्द्र' जी अपनी प्रस्तुत कृति का वर्तमान रूप नहीं देख सके और बीच ही में कालकवलित हो गये। आशा है, इस सर्वांग सुन्दर प्रकाशन से उनकी स्वर्गस्थ आत्मा को शान्ति मिलेगी।

सुन्दर छपाई-सफाई एवं विशुद्ध मुद्रण के लिए 'चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी' के अधिकारी वर्ग विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। चौखम्बा-परिवार की यह सर्वोत्कृष्ट विशेषता है कि वर्तमान प्रकाशन-सम्बन्धी अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करते हुए भी ऐसे-ऐसे अनेकों ग्रन्थरत्नों को संस्कृत-हिन्दी व्याख्या, सुन्दर सम्पादन एवं सर्वांगसुन्दर आधुनिक साज-सज्जा से अलंकृत कर जनहित की भावना रख कर सदैव, प्रकाशित कर रहे हैं।

आशा करता हूँ कि इस पुस्तक से समस्त तान्त्रिक उपासक विद्वान् विशेष लाभ उठायेंगे। कैलासवासी स्व० 'द्विजेन्द्र' जी की इस कृति के संशोधन में कोई प्रमाद रह गया हो तो उसे क्षमा करेंगे।

गणतन्त्रदिवस
२६ जनवरी १९७०

—शिवदत्त मिश्र शास्त्री
५/२६ ए०, भिखारीदास,
वाराणसी–१

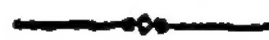
विषयानुक्रमणिका

प्रथमः पटलः

द्वितीयः पटलः

तृतीयः पटलः

चतुर्थः पटलः



॥ श्रीः ॥

तारा-रहस्यम्

'विद्या'ऽऽख्या-व्याख्याविलसितम्

प्रथमः पटलः

अथ सृष्टिप्रकरणम्

तारां संसारसारां त्रिभुवनजननीं सर्वसिद्धिप्रदात्रीं
सर्वाद्यां सर्वरूपां सकलगुणमयीं वन्दितां देववृन्दैः ।
दिव्ये राज्ञे सरोजे भवभयभयदां राजमानां प्रणम्य
ब्रह्मानन्दाख्यकोऽहं भुवनहितकृते तद्रहस्यं तनोमि ॥ १ ॥

टीकाकर्तृमङ्गलाचरणम्*

ॐ ह्रीं तारां स्वतन्त्रां तनु-तरु-लतिकां तारिणीं तन्त्रसिद्धा-
माद्यां विद्यामपूर्वां विबुधवरप्रदां विश्ववन्द्यां वरेण्याम् ।
तां नित्यां ज्ञानदात्रीं स्वहृदयकमले संस्थितां सम्प्रणम्य
भाषाटीकां सविद्यां सहृदयसुखदामातनोति 'द्विजेन्द्रः' ॥

व्याख्या तारारहस्यस्य 'विद्याख्या' क्रियते मया ।
यया सम्प्राप्यते ज्ञानं साधकैस्तु निरन्तरम् ॥

---

*(कवित्त)

अ-च-वर्णमात्रिका से मुख-बाहु-वक्षःस्थल,
नाभि-कटि-पाद सोहे पंचाशती माला से ।
चूड़ामणि चन्द्र की छटा है सिर राजती-सी,
सूर्य-शशि-वह्नि को अपूर्व नेत्र-ज्वाला से ॥

संसार में एक मात्र सारभूत, तीनों लोकों की माता, सब प्रकार की सिद्धियों को देने वाली, सबसे आदि में होने वाली, सब गुणों से युक्त, सर्वस्वरूप तथा देवगणों से पूजित, कमल के दिव्य आसन पर विराजने वाली एवं आवागमन को विनष्ट करने वाली अत्यन्त शोभायमान भगवती तारादेवी को प्रणाम करके 'ब्रह्मानन्द' नामक मैं संसार की भलाई के लिये उस तारा देवी के रहस्य को विस्तारपूर्वक लिखा रहा हूँ ॥ १ ॥

ब्रह्मा विष्णुरुमापतिस्त्रिभुवने सृष्टिं स्थितिं प्रालयं
ध्यात्वैनां जगदम्बिकां वितनुते मोक्षप्रदां तारिणीम् ।
भक्त्या तद्गतमानसो यदि जनस्तारां भजेद् यत्नतः
स क्षेमङ्करमेतदेव लभते तत्त्यागतो यात्यधः ॥ २ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये तीनों क्रमशः जगत् की सृष्टि, रक्षा और संहार किया करते हैं, उनका ध्यान करके मैं (ब्रह्मानन्द) इस जगज्जननी तथा मुक्तिदायिनी 'तारा' देवी के सम्बन्ध में जो कुछ लिख रहा हूँ—उस तारा देवी को तद्गतमानस अर्थात् तन्मयतापूर्वक जो जन प्रयत्न के साथ भजते हैं, उनके लिये यह मन्त्र कल्याणकारी है; किन्तु जो जन उनका परित्याग करते हैं, वे नरक में जाते हैं ॥ २ ॥

ज्ञात्वा तारारहस्यं भजति यदि जनस्तारकामन्त्रराजं
श्रेष्ठां सिद्धिं लभेताममरमनुजैर्दुर्लभां तारकातः ।
त्यक्त्वा तारां प्रयाति ध्रुवमतिविपदामास्पदं मोहकूपं
दुःखं शोकञ्च सम्यग् गतिरपि सुतरां नैव भव्यां कदाचित् ॥ ३ ॥

कर में विराजे वर मुद्रा-स्फटिक-माल,
सुधा-रस भरा घट, व्याख्या रत्नमाला से ।
ऐसी सुर-सुन्दरी को 'तारिका' प्रमान यहाँ,
पीजिये "द्विजेन्द्र" विद्या-सुधा शुचि प्याला से ॥
शिव-शवारूढा मुण्डमालिनी कपालिनी ले,
दक्षिण करों में खड्गकर्तृका सुराजती ।
वायें दोनों हाथ में कपाल-कंज धारिणी जो,
पिंगल जटा का जूट एक सिर साजती ॥
शिव के समान नागभूषिता अदूषिता जो,
नीलमणि सदृश अपूर्व छवि छाजती ।
सूर्य - शशि - वह्नि - तेज त्रिनयन-धारिणी सो,
महापान - मत्त देवी तारिका विराजती ॥

इस प्रकार 'ताराहस्य' को भलीभाँति जानकर यदि मनुष्य इस 'तारक[1] मन्त्रराज' को जपता है, तो उनकी कृपा से देव-दानव-दुर्लभ उस उत्तम सिद्धि को वह अवश्य प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं। इसके विपरीत जो तारा देवी को छोड़कर अन्यत्र जाता है, वह अवश्यमेव कठोर विपत्ति रूपी मोहान्धकार किंवा अन्धकूप में पड़ता है। दुःख और शोक से व्याकुल उस मानव की कभी सुगति (मुक्ति) नहीं होती ॥ ३ ॥

तारासारं समालोक्य तारानिगममेव च।
महानीलं महाचीनं नीलतन्त्रं शिवप्रियम् ॥ ४ ॥

ताराकल्पं शक्तिकल्पं शक्तिसारं तथैव च।
रुद्रयामलकञ्चैव नीलसारस्वतं तथा ॥ ५ ॥

लिङ्गतन्त्रं योनितन्त्रं षोढातन्त्रं महामतम्।
तारायाः कुलसर्वस्वं ऊर्ध्वाम्नायं विशेषतः ॥ ६ ॥

नानाशास्त्राणि चालोक्य ताराया मन्त्रसिद्धये।
वक्ष्ये रहस्यं ताराया ब्रह्मानन्दो हिताय वै ॥ ७ ॥

ग्रन्थ-रचयिता स्वामी 'ब्रह्मानन्द' जी का कथन है कि 'तारासार' तारानिगम, महानील, महाचीन[2] (चैनातंत्र), नीलतंत्र (जो शिव को अत्यन्त प्रिय है), ताराकल्प, शक्तिकल्प, शक्तिसार तथा रुद्रयामलतंत्र, नील सारस्वत तंत्र, लिङ्गतन्त्र, योनितन्त्र, षोढातन्त्र, (सर्वश्रेष्ठ तंत्र है—जो लुप्तप्राय है) ताराकुल सर्वस्व एवं विशेष करके ऊर्ध्वाम्नाय - आदि अनेक आगमतन्त्रों को भलीभाँति देखकर तारा-मंत्र की सिद्धि के लिये 'ब्रह्मानन्द' नामक मैं यह 'ताराहस्य' नामक एक तन्त्र-ग्रन्थ निर्माण करता हूँ ॥ ४–७ ॥

नानाशास्त्रार्थविलोकनपूर्वकं श्रीमत्तारादेव्या रहस्यं धर्मकामार्थ-मोक्षाणां तारामन्त्रेण दायकं सकलगुरुमतं प्रातःकृत्यादिक्रिया-

---

१. इसके लिये 'ताराभक्ति-सुधार्णव' देखना चाहिये।

नोट—तारासार, तारानिगम, आदि प्राचीन तंत्रग्रंथ वर्तमान समय दुर्लभ-से हैं। यह ग्रंथ-रत्न उन्हीं तन्त्रग्रंथों के आधार पर संत-ब्रह्मानन्द गिरि ने संसार को दिया है।

२. वर्तमान चीन देश में जो तंत्रागम आज भी प्राप्त हो रहा है, वह अपने ढंग का निराला है। तिब्बती एवं जापानी लामाओं में सम्प्रदायगत आज भी वह तंत्र विद्यमान है।

ज्ञानार्थं देवतामन्त्रनिरूपणादिग्रन्थः साधकहिताय ब्रह्मानन्देन मया यत्नेन वितन्यते ।

साथ ही अनेक शास्त्रों के तत्वार्थों का विवेचन करके श्रीमती तारादेवी के उस रहस्य को मैं कहना चाहता हूँ—जो धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष इन चारों पदार्थों को देनेवाला है तथा जो सब आचार्यो को अभीष्ट है—मैं (ब्रह्मानन्द) साधकों के कल्याणार्थ प्रातःकालीन कृत्यों का सम्यक् ज्ञान होने के निमित्त भी प्रयत्न करूंगा ।

प्रथमे निगमे कल्पे रत्नद्वीपे सुरालये ।
श्रुत्वा कालीमुखाद् वाक्यं न च हृष्टः सदाशिवः ॥ ८ ॥
पुनः पुनः पृच्छमानः प्रश्नञ्चैवाकरोच्छिवाम् ।
यदा मूर्त्या करालास्यो रावणो नाशितः पुरा ॥ ९ ॥
वराभयकरा देवी खड्गमुण्डधरा परा ।
लोलजिह्वा चोग्ररूपा तारा सर्वैः सुपूजिता ॥ १० ॥
तदा चिन्तान्विता देवा रुद्रार्थं कृतनिश्चयाः ।
देवताभिः समं ब्रह्मा स्तुतिं कर्त्तुं समागतः ॥ ११ ॥

सर्वप्रथम स्वर्गलोक के रत्नद्वीप में वैदिक कल्पोक्त वाक्यों को काली के मुख से सुनकर सदाशिव भगवान् शङ्कर जी केवल प्रसन्न ही नहीं हुए, अपितु बार-बार प्रश्न करते हुए शिवजी ने शिवा (काली) से पूछा—'हे देवि ! प्राचीन काल में जब आपने उस भयंकर मुख वाले रावण का विनाश किया, तब आश्चर्य-मय आप का वह रूप 'तारा' नाम से विख्यात हुआ । उस समय आप अपने हाथों में वर, अभयमुद्रा, खड्ग एवं नरमुण्ड धारण कर रही थीं, चंचल जीभ मुख से बाहर करके भयंकर रूपवाली आपका सब देवता स्तुति कर रहे थे । आपका विकराल रूप देखकर देवता कांप उठे । जब चिन्तित देवगण रुद्र भगवान् को प्रसन्न करने के लिये ब्रह्मा के पास गये, तब ब्रह्माजी उन देवताओं के साथ वहीं स्तुति करने लगे ॥ ८–११ ॥

दृष्ट्वा तान् मोक्षदा देवी कवित्वधनदायिनी ।
प्राप्तलज्जा महादेवी दक्षिणे खड्गमावहत् ॥ १२ ॥
लज्जया नम्रवक्त्रा च तस्माल्लम्बोदरी परा ।
रुद्राद्विगलितं वासो ब्रह्मा चर्माम्बरं ददौ ॥ १३ ॥

उन ब्रह्मादि देवताओं को देखकर मुक्ति देनेवाली तथा कवित्वशक्ति रूपी सम्पदा देनेवाली उस महादेवी ने लज्जावश अपने दाहिने हाथ में खड्ग धारण कर लिया । साथ ही लज्जा से मुख नीचे करने के कारण वह 'लम्बोदरी'

कहलायीं। उस समय जब रौद्रतावश नग्न हो गयीं, तब ब्रह्माने उन्हें चर्म प्रदान किया ॥ १२–१३ ॥

काञ्चीमुद्रां गृहीत्वा च कर्त्रीं कृत्वाऽथ दक्षिणे।
भूमौ च मुकुटं क्षिप्त्वा तत्र रुद्रं समाह्वयत् ॥ १४ ॥
भूमौ निपत्य देवेशः पपात चरणान्तिके।
अयुतं द्वादशं[1] देवि! पुस्तकं चावलोकितम् ॥ १५ ॥
कलां वक्तुं न शक्तोऽहं वद योगं सुरेश्वरि!।
पूज्ये! मे कालिके! देवि! प्रसीद भक्तवत्सले! ॥ १६ ॥

उस समय बायें हाथ में काञ्चीमुद्रा तथा दक्षिण हाथ में कर्त्रीमुद्रा बनाकर—अपने मुकुट को पृथ्वी पर पटक कर—देवी ने वहाँ भगवान् रुद्र को पुकारा। पुकार सुनते ही उनके दोनों चरणों के निकट आ, महादेवजी ने साष्टाङ्ग दण्डवत् (प्रणाम) किया और इस प्रकार कहा—'हे देवि! मैंने एक लाख बीस हजार ग्रंथों का अवलोकन किया है; परन्तु तुम्हारी कला का वर्णन करने में मैं समर्थ नहीं हूँ। इसलिये हे सुरेश्वरी! अब तुम्हीं वह योग (तन्त्रयोग) बताओ; क्योंकि हे कालिके! तुम ही पूज्य जगज्जननी हो। हे भक्तवत्सले! भगवति!! तुम मुझपर प्रसन्न होओ' ॥ १४–१६ ॥

श्रुत्वा वाक्यं शिवस्यापि हसित्वोवाच तारिणी।
त्वद्रूपाः पुरुषाः सर्वे मद्रूपाः सकलाः स्त्रियः ॥ १७ ॥
इदं योगं महादेव! भावयस्व दिने दिने।
पादपद्मे ततो नीलपद्मं दत्तं मनोहरम् ॥ १८ ॥

शिव के इस वचन को सुनकर तारिणी (तारा) देवी ने हँसते हुए कहा—'हे महादेव! इस संसार के सभी पुरुष तुम्हारे स्वरूप हैं और सभी स्त्रियाँ मेरे रूप में हैं' इस प्रकार के उत्तम योग की तुम अपने मन में प्रतिदिन भावना किया करो ॥ १७-१८ ॥

गृहीत्वा वामहस्तेन तत्तोयैरभिषिच्य च।
रुद्रदत्तं पानपात्रं विधृतं वामपाणिना ॥ १९ ॥
एतेन तारा सा जाता शीर्षेऽक्षोभ्यो भुजङ्गमः।
महाकालः स एव स्यात्तारारूपे जगत्त्रये ॥ २० ॥

---

१. 'अयुतं द्वादशं देवि! पुस्तकञ्चावलोकितम्।' इस वचन द्वारा प्रमाणित होता है कि उस समय तक १,२०००० पुस्तकें बन चुकी होंगी, पर मेरे लघु विचार में अयुत के स्थान पर 'अद्भुतं' पाठ समीचीन होगा।

ऐसा कहकर देवी ने महादेव के पादपद्मों पर एक सुन्दर नील कमल चढ़ाया, जिसे शिवजी ने बायें हाथ से ग्रहण कर, उसीके जल से अभिषेक किया। उधर रुद्रप्रदत्त 'पानपात्र' बायें हाथ में लेकर तारा देवी भी प्रसन्न हुईं। इस प्रकार आपस में आदान-प्रदान करके दोनों ही शक्ति-शिव के रूप में हो गये। अर्थात् शिवप्रिया 'तारा' और ताराप्रिय 'शिव' अर्द्ध-नारीश्वर के रूप में प्रकट हो गये। उस समय शिव के सिर पर भयंकर सर्प होने के कारण वे 'महाकाल' कहलाये और तीनों लोकों को तारने के कारण वे भगवती 'तारा' नाम से त्रैलोक्य में प्रसिद्ध हुईं ॥ १९-२० ॥

यस्याश्च स्मरणे सद्यो भोगमोक्षौ करस्थितौ।
एवम्भूता महादेवी ब्रह्माण्डशून्यमध्यगा ॥ २१ ॥

सृष्टिस्थितिकरी देवी तारारूपा दयान्विता।
द्वितीये चैव शून्यान्ते सुविराड्रूपधारिणी ॥ २२ ॥

जिसके स्मरण मात्र से शीघ्र ही भोग और मोक्ष दोनों ही हस्तगत हो जाते हैं—ऐसी वह महादेवी शून्य ब्रह्माण्ड-नभोमण्डल में विराजने लगीं। फिर वही सृष्टि-स्थिति करते समय अत्यन्त दयालु 'तारा[1] देवी' के रूप में हुईं और फिर दूसरी बार शून्य गगन के अन्त (बीच) में सुन्दर अनिर्वचनीय विराट् रूप धारण करने वाली बनीं ॥ २१-२२ ॥

तृतीये च महाशून्ये तडित्कोटिसमप्रभा।
निराकारा निराधारा तारा सर्वार्थसाधिका ॥ २३ ॥

उसके बाद तृतीय महाशून्य में करोड़ों बिजुली के समान प्रकाशवाली वह 'तारा' निराकर एवं निराधार होती हुई भी सर्व-साधन-सम्पन्ना थीं ॥ २३ ॥

चतुर्थे शून्यमाश्रित्य विष्णुः पालयते ध्रुवम्।
तस्माज्जातश्चतुर्वक्त्रः सृष्टिं वितनुते ध्रुवम् ॥ २४ ॥

चतुर्थ शून्य का आश्रय लेकर 'विष्णु' के रूप में सबके पालन-पोषण करने वाली वे बनीं। तत्पश्चात् उन्हीं विष्णु से चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न होकर जगत्-प्रपंच की रचना करने लगे ॥ २४ ॥

---

१. दशमहाविद्याओं में 'तारा परम महाविद्या' हैं। देखिये—

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च मातङ्गी कमलात्मिका ॥
धूमावती च बगला 'महाविद्या' प्रकीत्तिता ॥

पञ्चशून्ये महादेवी शिवरूपा त्रिलोचना।
लयं नयति ब्रह्माण्डं महाकालेन लालिता ॥ २५ ॥

फिर अन्त में पाँचवें शून्य में शिव स्वरूपा बनकर तीन नेत्रवाली वह महादेवी तारा ही ब्रह्माण्ड का प्रलय करती हैं, जो महाकाल शिव की परम प्रिया हैं ॥ २५ ॥

पुनर्ब्रह्माण्डसिद्ध्यर्थं महाविद्या च तारिणी।
सर्वान्ते कालिकां मूर्त्तिं त्यक्त्वा वस्त्रं पुनर्दधौ ॥ २६ ॥

फिर ब्रह्माण्ड की सिद्धि के लिये महाविद्या तारा देवी ने सबके अन्त होने पर कालिकामूर्ति का परित्याग किया और पुनर्वार द्वितीय वस्त्र धारण किया ॥ २६ ॥

षष्ठे शून्यमयं ब्रह्म विश्वं विश्वेश्वरं तथा।
महामहाशब्दपरा कालिका बीजतारका ॥
पञ्चशून्ये स्थिता तारा सर्वान्ते कालिका स्थिता ॥ २७ ॥

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्य्यब्रह्मानन्दगिरितीर्थावधूत-
विरचिते तारारहस्ये सर्वरहस्योत्तमे हरगौरी-संवादे
प्रथमपटले सृष्टिप्रकरणम् ॥ १ ॥

—:०:—

षष्ठ शून्य मय जो ब्रह्म, विश्व एवं विश्वेश्वर है तथा सर्वोत्तम परा शब्द स्वरूप जो 'कालिका' हैं, वही 'बीजतारका' (ॐकाररूपा) कहलाती हैं। इस प्रकार पंचशून्य में 'तारा' तथा प्रलयान्त में 'कालिका देवी स्थित रहती हैं ॥२७॥

श्री 'द्विजेन्द्र' कविकृत 'विद्या' व्याख्या-विभूषित तारारहस्य के
प्रथम पटल का प्रथम सृष्टिप्रकरण समाप्त ॥ १ ॥

—:०:—

अथ प्रातःकृत्यादिप्रकरणम्

साधको ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय योषादर्शनं कृत्वा च उत्तरास्यः स्वनाभौ दक्षिणहस्तोपरि वामहस्तं दत्त्वा शिरसि द्वादशार्णसरसिरुहोदरसहस्रदलकमलावस्थितं श्वेतवर्णं नानालङ्कारभूषितं रक्तशक्ति वामभागं त्रिनयनं बिम्बाधरं शक्तिवदनारविन्दं गुरुं समालोकयन् हृष्टमानसं स्वस्तिकासनस्थं विभाव्य मानसोपचारैराराध्य 'ऐं' इति अष्टोत्तरशतं जप्त्वा जपं समर्प्य प्रणमेत्।

साधक को चाहिये कि वह ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर शक्ति रूपी योषादर्शन (ज्योतिदर्शन) करके उत्तराभिमुख बैठ जाय। उस समय स्वस्ति-

कासनस्थ वह साधक अपने नाभि के पास दक्षिण हथेली पर वाम हथेली रखे और सिर में द्वादशाक्षर युक्त कमल के भीतर सहस्रदल कमल में स्थित श्वेतवर्ण वाले अनेक प्रकार के आभूषण से विभूषित सद्गुरु के वाम भाग में रक्तवर्ण वाली शक्ति विराजती है—इस प्रकार के तीन नेत्रवाले बिम्बाधर कमल सदृश कोमल मुख वाले सद्गुरु स्वरूप महादेव को ध्यान में देखते हुए, प्रसन्न-वदन एवं स्वस्तिकासनासीन मानसोपचार विधि से उनकी पूजा करके 'ऐं' इस वाग्भव मंत्र का १०८ वार जपा करे और जप समर्पण करते हुए निम्न-लिखित मंत्रों द्वारा उन्हें प्रणाम करे—

ॐ अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २८ ॥

स्थावर-जंगम समस्त गगन-मण्डल जिससे व्याप्त है तथा उस परम पद (धाम) को जिसने अपनी दिव्य दृष्टि से देख लिया है, उस श्रीगुरु देव भगवान् को प्रणाम है ॥ २८ ॥

ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २९ ॥

जो अज्ञानान्धकार में अन्धे हुए शिष्यों के नेत्रों को ज्ञान रूपी अंजन लगाकर खोल देते हैं, अर्थात् सद्ज्ञान प्रदान करते हैं, उन श्रीगुरु भगवान् को प्रणाम हैं ॥ २९ ॥

उत्थाय पश्चिमे यामे भावयेद् ब्रह्मरन्ध्रतः ।
रक्तशक्त्या समायुक्तं शुक्ररूपं महेश्वरम् ॥ ३० ॥

रात के पश्चिम भाग (ब्राह्ममुहूर्त्त) मे उठकर अपने ब्रह्मरन्ध्र (सहस्रार) में लालवर्णवाली कुण्डलिनी रूपी महाशक्ति के साथ 'श्वेतवीर्य रूप महादेव का ध्यान[1] करे ॥ ३० ॥

सहस्रारे महापद्मे कर्पूरधवलं गुरुम् ।
उत्थाय पश्चिमे यामे तच्चैतन्यं समाचरेत् ॥ ३१ ॥

अथवा सहस्रार के महापद्म पर विराजते हुए कपूर के समान धवल (श्वेत) वर्ण वाले जगद्गुरु प्रभु 'शंकर' का ध्यान कर, प्रतिदिन प्रातःकाल उस चैतन्य आत्मा का अनुभव करे ॥ ३१ ॥

---

१. वह 'सहज ध्यान योग' प्राणक्रिया द्वारा संभव है । इसलिये—
प्राणक्रिया करते चलो, जब तक घट में प्राण ।
प्राणक्रिया छूटे विना, कबो न पावो त्राण ॥
('द्विजेन्द्र-दोहावली' से)

सर्वविद्यासु सर्वत्र प्रातःकृत्यादिकर्मसु।
ध्यानयोगे वामहस्ते दक्षिणं परिधारयेत् ॥ ३२ ॥

सब मंत्रों के जप में तथा प्रातःकालीन सभी क्रियाओं में ध्यानयोग करते समय बाई हथेली पर दाईं हथेली रखा करे। अर्थात् सिद्धासन या स्वस्तिकासन से बैठकर दोनों हाथों को अपनी नाभि के नीचे (पिडुरी) पर ही रखकर प्रभु का ध्यान मनोयोग द्वारा करना चाहिये ॥ ३२ ॥

इति नानाशाखानुकूलप्रातःकृत्यादिवचनात् तारात्रिपये वैपरीत्यमिति। तारागमे च —

यद्यपि उपर्युक्त विधि नानाशास्त्रानुमोदित है, तथापि 'तारोपासना' के विषय में इसके विपरीत है। यथा—

स्वनाभौ दक्षिणे हस्ते वामहस्तं प्रदापयेत्।
भावयेच्च सहस्रारे श्रीगुरुं शक्तियुक्तकम् ॥ ३३ ॥

अपने नाभिस्थान पर—दक्षिण हाथ पर वाम हाथ रखकर—उस समय सहस्रार (ब्रह्मरन्ध्र) में शक्ति सहित सद्गुरु शङ्कर का ध्यान करे ॥ ३३ ॥

महानीलेऽपि यथा—

ताराविद्यासु सर्वासु भावनादौ व्यतिक्रमः।
स्वनाभौ पाण्योर्योगश्च भूतशुद्धयादिके शिवे ! ॥ ३४ ॥
सहस्रारे महापद्मे कुन्देन्दुसदृशप्रभम्।
रक्तशक्त्या समायुक्तं भावयेत् साधकाग्रणीः ॥ ३५ ॥

'महानील' तंत्र में भी लिखा है—तारा मंत्रों में उपर्युक्त भावना विपयक क्रम इस प्रकार है—अपने नाभि पर दोनों हाथों का योग करे, (तत्पश्चात् भूतशुद्धिपूर्वक) सहस्रार रूपी महापद्म पर विराजते हुए 'कुन्द-इन्दु' के समान श्वेत वर्ण वाले लाल शक्ति सहित शिव का ध्यान साधकप्रवरों को इस प्रकार करना चाहिये ॥ ३४-३५ ॥

तारानिगमे च—

प्रातः शिरसि शुक्लाब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम्।
वराभयकरं शान्तं देव्याश्च वदनाम्बुजम् ॥ ३६ ॥
दृष्ट्वा हृष्टं ब्रह्ममयं परब्रह्मस्वरूपिणम्।
नानालङ्कारसंयुक्तं भावयेत् स्वस्तिकासने ॥ ३७ ॥
सर्वज्ञानप्रदं देवं ज्ञानानन्दस्वरूपिणम्।
तथा च वाग्भवं बीजं सर्वज्ञानविशुद्धये ॥ ३८ ॥
न जप्त्वा वाग्भवं बीजं तारिणीं यस्तु भावयेत्।
न सिद्धिस्तस्य देवेश ! विघ्नस्तस्य क्रियासु च ॥ ३९ ॥

'तारानिगम' तंत्र में भी लिखा है—प्रातःकाल नित्यकर्मोपरान्त अपने सिर के श्वेत कमल (सहस्रारचक्र) में उन द्विनेत्र तथा द्विभुज 'गुरु' (सदाशिव) का ध्यान करे साथ ही अभेद बुद्धया 'वर' एवं 'अभय' मुद्रा को धारण किये हुए ज्ञानमूर्त्ति भगवती आदिशक्ति के मुख-कमल को देख कर स्वयं प्रसन्न रहे। सुतराम् सतत प्रसन्न परब्रह्मस्वरूप, विविध-भूषण-विभूषित सच्चिदानन्द प्रभु का ध्यान (अनुभव) करे। उस समय स्वस्तिकासन से सब प्रकार के ज्ञान को देनेवाले ज्ञानानन्द स्वरूप भगवान् शिव गुरु का ध्यान करके तत्पश्चात् सब प्रकार के ज्ञान को देने वाले वाग्भव बीज "ऐं" किंवा (मूलमंत्र[१]) का जप करे, 'क्योंकि विना सरस्वती बीज के जपे 'तारा' देवी का जो ध्यान करता है, उसे सिद्धि नहीं मिलती। अपितु हे शिव ! उसकी क्रिया में विघ्न ही होता है ॥३९॥

प्रातः शिरसि शुक्लाब्जे गुरुं सम्भाव्य यत्नतः ।
जप्त्वा तु वाग्भवं बीजं सर्वज्ञानविशुद्धये ॥
संजप्त्वा वाग्भवं बीजं प्रणमेच्च पुनः पुनः ॥ ४० ॥

इसलिये नित्य प्रातः उठकर सहस्रार में श्वेत कमल दल के मध्य मे यत्नपूर्वक सद्गुरु देव का ध्यान करके सब ज्ञान की विशुद्धि के निमित्त वाग्भव बीज 'ऐं' मंत्र का जप करे और वार-बार उन्हें प्रणाम करे ॥ ४० ॥

सर्वसाधारणब्रह्मखण्डोक्तमन्त्रेण वारद्वयं प्रणमेत्। तत्र प्राणायामचतुष्टयस्यावश्यकत्वम् ।

उस समय सर्वसाधारण को चाहिये कि ब्रह्मखण्डोक्त मंत्र से दो वार प्रणाम करे। वहाँ पर चार वार प्राणायाम करने को आवश्यकता है।

मन्त्रद्वयेन तूक्तेन प्रणमेत् श्रीगुरुं सदा।
तारामन्त्रविशेषेण कुलोक्तेन द्वयेन च ॥ ४१ ॥

श्री गुरु भगवान् को उपर्युक्त दोनों मंत्रों से सर्वदा प्रणाम करे अथवा कुलोक्त[२] दोनों तारा मंत्रों द्वारा विशेष करके प्रणाम करना चाहिये ॥ ४१ ॥

---

१. मूलमंत्रो यथा—
'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं तारा देव्यै नमः'। यह अभिनव 'दशाक्षर' मंत्र ध्यान करते समय—मेरे (टीकाकार) के अन्तःकरण में प्रस्फुटित हुआ। यों तो 'ऐं तारायै नमः' षडक्षर मंत्र ही मूलमंत्र है।

२. कुलोक्तं मंत्रद्वयं यथा—
१—षडक्षरी—ॐ ह्रीं हूं हूं नमः।
२—ऐं ह्रीं ॐ ऐं ह्रीं फट् स्वाहा।

ततः स्वस्तिकासनस्थः पृथ्वीमण्डलात् सार्द्धत्रिवलयान्वितां रविकोटिसमप्रभां चन्द्रकोटिसुशीतलां स्वयम्भूलिङ्गवेष्टितां निराकारस्वरूपां परब्रह्ममयीं कुण्डलिनीं ज्ञानानन्दमुदितमानसां महायोगस्वरूपिणीं पुरतः स्वयम्भू-कनक-वर्णाशीर्षतः पद्मवनसमुद्भवां वहुतरप्रणवानामेककृतशब्दविभागमयीं तत्त्वस्वरूपाम् इडापिङ्गलयोर्मध्ये सुपुम्नामध्यमध्यतः चित्रिणीं ब्रह्मनाड़ीं प्रवेशयेत् । द्वितीयं पद्मं वामतो विभाव्य मृदुमन्दगतिमयीं लोलीभूतां हृत्पद्मे विश्राम्य गुरुयोगं विभाव्य च मानसैः पूजयेत्।

इसके वाद स्वस्तिकासन से बैठकर साधक पर-ब्रह्ममयी उस कुण्डलिनी का ध्यान करे—जो पृथिवी-मण्डल (मूलाधार) से साढ़े तीन वार वलयान्वित-सी है, जो सूर्य-प्रभा के समान ऊष्णकान्ति वाली, चन्द्रप्रभा के समान शीतल कान्तिवाली तथा स्वयम्भूलिङ्ग से सेवित निराकाररूपिणी है, जो ज्ञानरूपी आनन्द से आनन्दित मनवाली एवं महायोगिनी हैं, जो अपने सामने स्वयंभू कनकमय ज्योतीरूपा एवं कमलवन से उत्पन्न हुई हैं। जो अनेक प्रणवों की एकीकृत होकर भी शब्द विभागवाली हैं, जो सव शास्त्रों की तत्त्वमूर्त्ति हैं और जो इडा-पिङ्गला नाड़ियों के वीच में 'सुपुम्ना' नाडो है, उसके वीच में 'चित्रिणी' नाम की ब्रह्मनाड़ी हैं, उसे योगक्रिया द्वारा भीतर ले जाय। तत्पश्चात् दूसरे कमल को बाहरी ओर से घुमा कर मधुर, मन्दगतिशीला एवं चंचलमयी उस देवी को अपने हृदय-कमल में विश्राम देकर गुरुयोग का अनुभव करते हुए मानसोपचार विधि से उनकी पूजा करनी चाहिये।

विभावयेत् सदा भक्त्या सर्वाद्यां भुजगाकृतिम् ।
भूपद्मे लिङ्गमावेष्ट्य राजते ब्रह्मरूपिणी ॥ ४२ ॥

'शक्तिसार' में भी लिखा है—

'भूपद्म-मूलाधार' में लिङ्ग को घेरकर सर्पाकारवाली उस सवकी आदि देवी भगवती 'कुण्डलिनी' का भक्तिपूर्वक सर्वदा अनुभव करे ॥ ४२ ॥

स्वयम्भूनाम्नि योनौ च लिङ्गे न भावयेच्छिवम् ।
शतकोटिं[1] जपन् देवि ! तस्य सिद्धिर्न चैव हि ॥ ४३ ॥

(तारासार—रुद्राध्याये)

---

१. अत्र 'कोटि' शब्दः प्रकारवाचकः, नतु कोटिसंख्यकः । तथैवाग्रेऽपि विद्युत्कोटिः, रविकोटिः ।

भैरवोऽहं सुधाढ्योऽहं तत्त्वज्ञोऽहं कुलस्त्रियः ।
गुरुप्रसादवानस्मि शक्तिसाधकसेवकः ॥ ५५ ॥

मैं ही भैरव, सुधाढ्य, तत्त्वविद् एवं कुलस्त्रियाँ हूँ । मुझे गुरुदेव की कृपा प्राप्त है । मैं शक्ति-साधकजनों का सेवक हूँ ।। ५५ ।।

रतानन्दः कुलानन्दः कुमारीदास एव च ।
कुमारीवणिकोऽहञ्च ताराचरणनायकः ॥ ५६ ॥

इति तारानिगमोक्तं पठित्वा बहिर्गच्छेत् ।

मैं ही रतानन्द, कुलानन्द एवं कुमारीदास हूँ । कुमारी वणिक् होकर मैं ही ताराचरण-सेवक हूँ । इस प्रकार तारानिगमोक्त मंत्रों को पढ़कर बाहर जावे ॥ ५६ ॥

प्रातःकृत्यं विना देवि ! न सिद्धिर्जायते शिवे !
न पूजाफलमाप्नोति मन्त्रजापस्य निश्चितम् ॥ ५७ ॥

सर्वा क्रिया निष्फला स्याद् वैदिकी तान्त्रिकी तथा ।
प्रातःकृत्यविहीनस्य शौचहीना यथा क्रिया ॥ ५८ ॥

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्य्यब्रह्मानन्दगिरितीर्थस्वामि-
कुलावधूतविरचिते तारारहस्ये सर्वरहस्योत्तमे हरगौरी-
संवादे प्रथमपटले प्रातःकृत्यादिप्रकरणम् ॥ २ ॥

—:०:—

हे देवि ! विना नित्यकर्मोपासना किये कभी सिद्धि प्राप्त नहीं होती और हे शिवे ! प्रातः क्रिया न करने वालों को पूजा-फल नहीं मिलता । साथही मंत्र-जाप भी निष्फल हो जाता है । यहाँ तक कि उनकी वैदिकी एवं तांत्रिकी सारी क्रियाएँ वैसे ही निष्फल (व्यर्थ) हो जाती हैं, जैसे पवित्रता से रहित कोई शुभ कर्म व्यर्थ है । इसलिये प्रातःकालीन नित्यकर्म अवश्यमेव करना चाहिये ॥ ५७–५८ ॥

श्रीद्विजेन्द्र कविकृत 'विद्या'व्याख्या-विभूषित तारारहस्य का प्रातःकृत्यादि
वर्णन नामक द्वितीय प्रकरण समाप्त ॥ २ ॥

—:०:—

अथ तारागायत्रीप्रकरणम्

ततः प्रातःकृत्यानन्तरं स्नानम्। साधकानां वैदिकी तान्त्रिकी प्रातः कालावधि महानिशापर्य्यन्तं क्रिया वक्तव्या। शिवपूजा तु वैदिक-तान्त्रिकयोरेकत्वात् तत्पूजनञ्च। अतो नद्यादौ गत्वा मज्जनं कृत्वा "ओमद्येत्यादि श्रीमत्तारादेव्याः प्रीतयेऽस्मिन् जले स्नानमहं करिष्ये" इति सङ्कल्प्य जले त्रिकोणं विलिखेत्॥ तथा च तारानिगमे—

इस प्रकार प्रातः कृत्य करके स्नान करना चहिये। तदुपरान्त साधकों को वैदिक एवं तांत्रिक क्रिया की विधि प्रातःकाल से लेकर निशीथ (आधी रात) पर्यन्त जाननी चाहिये। वास्तविक शिवपूजा तो वैदिक एवं तान्त्रिक की एकता के साथ मानसिक पूजन ही है। इसलिये नदी आदि में जाकर स्नान-मज्जनादि करके संकल्प करे। यथा—

'ॐ अद्येत्यादि श्रीमत्तारा देव्याः प्रीतयेऽस्मिन् जले स्नानमहं करिष्ये।' संकल्प के बाद जल में अङ्गुली से त्रिकोण यंत्र बनावे। तथाहि—

देव्याश्च प्रीतये स्नानं कर्त्तव्यं तन्त्रवेदिभिः।
तीर्थमावाह्य तोये च जप्त्वा मज्जनपूर्वतः॥ ५९॥

तत्रैव, रुद्रयामले वा—

यत्र यत्र महाविद्या साधकैः समुपासिता।
तत्र तत्र [1]त्रिकोणञ्च अधोमुखमुदीरितम्॥ ६०॥
देवत्रिकोणे कर्त्तव्यं ऊर्ध्वास्यं विधिसम्मतम्।

'तारा निगम' में लिखा है—तन्त्रज्ञ पुरुषों को देवी की प्रसन्नता के लिये सर्वप्रथम स्नान करना चाहिये और उसी जल में तीर्थावाहन पूर्वक स्नान करके मंत्र-जप करे। रुद्रयायल तंत्र में लिखा है—

जहाँ-जहाँ साधकगण महाविद्या की उपासना करें, वहाँ-वहाँ 'अधोमुख त्रिकोण अवश्य निर्माण करें॥ देवत्रिकोण में विधिवत् ऊर्ध्वमुख का विधान है। उस समय यह मंत्र पढ़ना चाहिये—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति!।
नर्मदे सिन्धु-कावेरि! जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥ ६१॥

अर्थात् गङ्गा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु तथा कावेरी नामक ये सातों नदियाँ इस जल में प्रवेश करें॥ ६१॥

---

१. देवीत्रिकोण ▽ देवत्रिकोण △।

इति अङ्कुशमुद्रया सूर्य्यमण्डलात्तीर्थमावाह्य प्राणायामं कराङ्ग-षडङ्गे विन्यस्य देवीरूपं विचिन्त्य आत्मानं तारामयं विभाव्य मूलं शीर्षे दशधा, जले दशधा जप्त्वा त्रिकोणवृत्तचतुरस्रं विलिख्य धेनुयोनिमत्स्याङ्कुशमुद्राः प्रदर्श्य सूर्य्याभिमुखं द्वादशधा वारि निक्षिप्य मूलेन मूर्द्धानं सप्तधा अभिषिञ्चेत्। तत्र इष्टदेवताचरणनिःसृतजलेन उदङ्मुखः स्नायात्।

इस मंत्र से आवाहन करके 'अङ्कुशमुद्रा' द्वारा सूर्य-मण्डल से तीर्थो को बुलाकर प्राणायाम करे। तत्पश्चात् षडङ्ग-करन्यास करके देवी के दिव्य रूप का अनुचिन्तन करते हुए, अपने आत्मोपम तारामय जगदीश्वरी का अनुभव करे। मूलमंत्र को सिर पर, हृदय में १० बार, जल में १० बार जाप करके वर्ग में त्रिकोण मंत्र लिखकर धेनुमुद्रा, योनि, मत्स्य, अंकुश मुद्राएँ दिखावे। फिर सूर्याभिमुख होकर द्वादश बार जल छिड़के तथा मूल मंत्र से सिरपर सात बार अभिसिंचन करे। इसके बाद इष्ट देवता के चरण से निकलते हुए जल से मुख ऊपर करके स्नान करे। तारार्णव में इस प्रकार लिखा है—

तीर्थमावाह्य तोये च प्राणायामषडङ्गकौ।
देवीरूपं जले ध्यायेदात्मानं तारिणीमयम्॥ ६२॥

जल में तीर्थ का आवाहन करके षडङ्ग-न्यासपूर्वक प्राणायाम करे। उस समय तारनेवाली तारादेवी के रूप में अपने आप (आत्मा) का ध्यान करना चाहिये॥ ६२॥

शीर्षे हृदि जले जप्त्वा दशधा मूलमन्त्रकम्।
जले त्रिकोणवृत्तञ्च चतुरस्रं लिखेद्बुधः॥ ६३॥
अङ्कुशं धेनुमुद्राञ्च योनिं मत्स्यं प्रदर्शयेत्।
रवौ रविजलं दत्त्वा सिञ्चेच्छीर्षं तु सप्तधा॥ ६४॥

इति स्नानम्

तत्पश्चात् मस्तक, हृदय एवं जल में मूल मंत्र को दश बार जप करके, जल में ही त्रिकोण वृत्त तथा वर्गाकार मंत्र बुद्धिमान् साधक को लिखना चाहिये। साथ ही अंकुश, धेनुमुद्रा, योनि एवं मत्स्यमुद्रा प्रदर्शित करे। तब सूर्य को अर्घ्य जल देकर सात बार अपने सिरपर भी अभिषिचन करे। यह मंत्र स्नान विधि कही गयी है॥ ६३–६४॥

तथाच महाचीनमहातारार्णवादौ—

प्रकुर्य्याद्वैदिकस्नानं तान्त्रिकं तदनन्तरम्।
सन्ध्याञ्च वैदिकीं कृत्वा तान्त्रिकीं स्वयमाचरेत्॥ ६५॥

इसी प्रकार महाचीन तथा महातारार्णव आदि में भी विधान है। यथा—सर्वप्रथम शौचादि से निवृत्त होकर वैदिक स्नान करे। उसके बाद तांत्रिक स्नान करे। तब वैदिक संध्याविधि समाप्त करके तांत्रिक विधान इस प्रकार स्वयं करे ॥ ६५ ॥

जले त्रिकोणं संलिख्य तीर्थान्यावाहयेत्ततः।
तत्त्वेनाचमनं कृत्वा वह्निजायान्तमन्त्रतः ॥ ६६ ॥

कुशैः समूलैरुदकं दद्याच्छीर्षे च साधकः।
ततश्च भूमौ दातव्यं सप्तधा साधकोत्तमः ॥ ६७ ॥

वामहस्ते जलं नीत्वा चाच्छाद्य दक्षिणेन च।
मन्त्रं वारत्रयं जप्त्वा पञ्च वर्गान् जपेत्ततः ॥
क्षान्तं चन्द्रसमायुक्तं सप्तवर्णाद्यमेव च ॥ ६८ ॥

पहले जल मे त्रिकोण बनाकर तीर्थों का आवाहन करे। पुनः तत्त्व-मुद्रा की विधि से आचमन करते समय 'स्वाहान्त[1]' मंत्र का उच्चारण करे। उसके बाद साधक समूल कुशदलों द्वारा अपने सिरपर जल छोड़े तथा सात बार भूमिपर भी जल गिराना उत्तम साधकों का कर्त्तव्य है। इसके बाद बायें हाथ में जल लेकर दाहिने हाथ से आच्छादित करे। तब तीन बार मंत्र का जप करके पञ्चवर्ग[2] (क, च, ट, त, पवर्गा,), क्षान्त[3] (अ से क्ष तक) वर्ण चन्द्रविन्दु सहित सप्तवर्ण (क, च, ट, त, प, य, श) का जप करना चाहिये ॥ ६६–६८ ॥

वह्निबीजं पृथिव्याश्च वारुणं तदनन्तरम् ।
हँ यँ वँ लँ रँ इत्येकजटामन्त्रेऽघमर्षणमन्त्रकम् ॥ ६९ ॥

मुद्रया स्नापयेच्छीर्षं गलितोदकविन्दुभिः।
मुद्रा तु तत्त्वमुद्रा स्यात् सन्ध्यायां कुलतर्पणे ॥ ७० ॥

वह्निबीज (रँ) पृथिवी तथा वरुण के मंत्र एवं हँ यँ वँ लँ रँ—इत्यादि एक जटा मंत्र मे अघमर्षण करे। साथ ही तथोक्त मुद्राओं से जल-विन्दु द्वारा सिरपर स्नान करे। इस प्रकार कुल-तर्पण युक्त संध्या करने में 'तत्त्वमुद्रा' का प्रयोग करना चाहिये ॥ ६९-७० ॥

---

१. स्वाहान्त मंत्र-यथा—अग्नये स्वाहा, वायवे स्वाहा इत्यादि।

२. अत्र 'पञ्च कु चु टु तु पु वर्गाः' इत्युक्तेः।

३. अ-क्ष वर्णानित्यर्थः।

मण्डले देवीं ध्यात्वा गायत्रीमुच्चार्य्य सूर्य्यमण्डलस्थायै तारादेव्यै श्रीमदेकजटायै इदमर्घ्यं नमः इति त्रिः। ततः कृताञ्जलिः—

इसके बाद दूर्वाक्षत रक्तपुष्प सहित अर्घ्य-द्रव्य लेकर सूर्य को अर्घ्य देवे। उस समय यह मंत्र पढ़ना चाहिये—"ॐ ह्रीं हं सः श्रीसूर्य्याय, प्रकाशशक्ति-सहिताय इदमर्घ्यं प्रददे।" इस प्रकार सूर्यार्घ्य प्रदान कर, सूर्यमण्डल में विराजित श्रीगायत्री देवी का ध्यान करके गायत्री मंत्र का उच्चारण करे। साथ ही यह मंत्र तीन बार उच्चारण करे—"ॐ सूर्यमण्डलस्थायै श्रीमदेकजटायै इदमर्घ्यं नमः।" अन्त में अंजलि जोड़ कर निम्नलिखित मंत्रों द्वारा गायत्री का ध्यान करे।

ॐ प्रातराधारकमले हुतभुङ्मण्डलोपरि।
वाग्बीजरूपां विद्यां तां विद्युत्पटलभास्वराम् ॥ ७७ ॥
पुष्पबालेक्षुकोदण्डपाशाङ्कुशलसत्कराम् ।
स्वेच्छागृहीतवपुषीं गुरुविद्याकरात्मिकाम् ॥ ७८ ॥

प्रातःकालीन कमल के आधारस्वरूप सूर्यमण्डल में वाग्बीज 'ऐं' रूप उस तारा विद्या का—जो विजुली के समान चमकती हुई, लाल गुलाव के समान कोमलाङ्गी एवं पुष्प तथा कोमल इक्षुदण्ड से और पाश-अंकुश से सुशोभित हाथों वाली हैं—जो स्वेच्छया विग्रह धारण करती हैं तथा गुरुद्वारा प्राप्त मंत्र (विद्या) वाली हैं—प्रातःकाल में ध्यान करे॥ ७७-७८ ॥

मध्याह्ने हृदयाम्भोजकर्णिकासूर्य्यमण्डले।
कामबीजात्मिकां देवीं अलक्तकरसारुणाम् ॥ ७९ ॥
प्रसूनबालपुण्ड्रेक्षुचापपाशाङ्कुशान्विताम् ।
परिस्तृताञ्च मुख्याभिः षट्त्रिंशत्तत्त्वसेविताम् ॥ ८० ॥

मध्याह्नकाल में हृदय कमल-कर्णिकाओं में स्थित सूर्यमण्डल में कामबीज (क्लीं) वाली उस देवी को—जो अलक्तक (लाक्षारस) रस के समान रक्तवर्णा हैं तथा जो पुष्प तथा कोमल इक्षुका चाप (धनुष) एवं पाशाङ्कुश धारण करने वाली हैं—मुख्य नाड़ियों से परिविस्तृत है तथा जो छत्तीस तत्वों से सेविता है—ऐसी गायत्री स्वरूपा तारा देवी को मेरा प्रणाम हो ॥ ७९-८० ॥

सामयज्ञे सरोजस्थे चन्द्रे चन्द्रसमद्युतिम्।
शक्तिबीजात्मिकां चापबाणपाशाङ्कुशान्विताम् ॥ ८१ ॥
चिन्तयित्वा भगवतीं नित्याभिः परिवारिताम्।
युगनित्याक्षराकारां घण्टिकावरसन्निभाम् ॥ ८२ ॥
तारासारमतो ध्यायेद् गायत्रीं तारकामणौ।
त्रिपुराया विशेषेण देव्याश्चैकजटामणौ ॥ ८३ ॥

इसी प्रकार सायंकालीन कमलासीन उस देवी को—जो चन्द्रमण्डल में चन्द्रमा के समान चमकनेवाली हैं—जो शक्ति बीज 'ह्रीँ' स्वरूपा हैं तथा जो धनुष, वाण एवं पाशाङ्कुश अपने चारो हाथों में ली हुई हैं, जो नित्य शक्ति द्वारा घिरी हुई हैं, जो दो नित्याक्षरों वाली 'तारा' नाम से प्रसिद्ध हैं, जो घण्टा और वरदान हाथ में ली हुई हैं, जो आदि देवी की एकमात्र जटामणि में विराजती रहती है—विशेषकर ऐसी त्रिपुरा भगवती तारा-मणि के समान सुशोभिता श्रीगायत्री माता का ध्यान करना चाहिये ॥ ८१-८३ ॥

इति तारासारोक्तश्रवणात्। त्रिपुरासुन्दरीविषये च गायत्र्या इदं ध्यानम्। तथा नीलसरस्वतीतन्त्रे तारानिगमे च—

इस प्रकार तारासार तंत्र में कहा गया त्रिपुरा-सुन्दरी गायत्री का यह ध्यान है। अब आगे नीलसरस्वती तंत्र एवं तारानिगम तंत्र में भी देखिये :—

तारायै[1] च पदं प्रोच्य विद्महे तदनन्तरम्।
महोग्रायै ततो दद्याद्धीमहीति ततः परम्।
तन्नो देवीति चोच्चार्य्य ततो दद्यात् प्रचोदयात् ॥ ८४ ॥

प्रणवपूर्वक 'तारायै' यह पहले रखे, तदनन्तर 'विद्महे' तव 'महोग्रायै' तथा 'धीमहि' पद जोड़े। उसके बाद 'तन्नो देवी' का उच्चारण करके अन्त में 'प्रचोदयात्' कहने से गायत्री का स्वरूप वन गया ॥ ८४ ॥

"ॐ ह्रीँ तारायै विद्महे, महोग्रायै च धीमहि, तन्नो देवी प्रचोदयात्" इति तारानिगमादिनानाग्रन्थसम्मता गायत्री जप्तव्या।

तारा निगमादि अनेक ग्रंथों से समर्थित इस गायत्री मन्त्र का जप करना चाहिये।

सामान्यमादौ जप्त्वा च दशधा साधकोत्तमः।
विशेषिकां जपेद्विद्यां गायत्रीं सर्वसिद्धिदाम् ॥ ८५ ॥

शतं वा विंशतिं वापि यो जपेत् साधकाग्रणीः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वयं तारापुरे वसेत् ॥ ८६ ॥

श्रेष्ठ साधक को चाहिये कि पहले सामान्य मूल मंत्र (नमः शिवाय) का जप करके उस विशेष मंत्र गायत्री का जप करे—जो सवको सिद्धि-प्रदायिनी हैं।

---

१ इस श्लोक-कारिकानुसार गायत्री के २४ वर्ण नहीं होते। इसलिए मैंने सद्गुरु के आदेशानुसार यथास्थान 'ह्रीँ' तथा 'च' विशेष जोड़ दिया हैं। प्रकाशित पुस्तकों में—"तारायै विद्महे महोग्रायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्" है।

जो साधक-प्रवर सौ बार या बीस बार इस मंत्र का जप करते हैं, वे सब पापों से छुटकारा पाकर स्वयं तारापुरी में निवास करते हैं ॥ ८५-८६ ॥

गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च ब्रह्मस्त्रीघ्नश्च यो नरः।
गुरुतल्परतो वापि स्नुषायां वा रतो यदि ॥ ८७ ॥
एतैः पापैर्विमुच्यन्ते सत्यं सत्यं सदाशिव !।
कुमारीगमनाद्दोषो न भूतो न भविष्यति ॥ ८८ ॥
ततश्च मुच्यते लोको गायत्रीस्मरणादपि।
गायत्र्या आगमोक्तायाः शतमात्रजपादपि ॥ ८९ ॥

देवी कहती हैं—हे सदाशिव ! यदि कोई मनुष्य भूल से गोहत्या कर दे, विश्वासघात कर दे तथा जो ब्राह्मण— स्त्री की हत्या कर दे, अथवा जो नीच गुरु-पत्नी-गामी तथा अपनी पुत्रवधू से व्यभिचार कर दिया हो, वह उन पापों से रहित हो जाता है। यहाँ तक कि कन्यागमन के दोष के बराबर तो कोई पाप न हुआ, न होगा। ऐसे पापीजन भी गायत्री के स्मरण से तथा शास्त्रोक्त सौ बार गायत्री जपमात्र से ही मुक्त हो जाते हैं ॥ ८७-८९ ॥

एतैः पापैर्विमुच्येत सत्यं सत्यं सुरेश्वर !
एतैः पापैर्विमुक्तश्च विशेषस्मरणादपि।
तस्मान्निगदिता विद्या जप्तव्या सिद्धिमिच्छता ॥ ९० ॥

हे सुरेश्वर ! मैं सत्य कहती हूँ—तथोक्त पापी गायत्री-स्मरणपूर्वक जप करने वाला मनुष्य सब पातकों से रहित हो जाता है। इस कारण यह कहा गया है कि अपनी भलाई चाहने वाले साधक सिद्धि की इच्छा से वैदिक मंत्रों का जप अवश्य करें ॥ ९० ॥

कूर्चबीजं समुद्धृत्य भगवत्येकजटे ततः।
विद्महे घोरदंष्ट्रे च धीमहीति ततः परम्।
तन्नस्तारे ततो जप्त्वा ततो गद्यं प्रचोदयात् ॥ ९१ ॥

कूर्चबीज 'हुँ' आदि में रखकर 'भगवत्येकजटे' संबोधन में रखे, तत्पश्चात् 'विद्महे' 'घोरदंष्ट्रे तथा 'धीमहि' रखे। उसके बाद 'तन्नस्तारे प्रचोदयात्' रखे। यह 'तारा[1] गायत्री' २० बार जप कर समर्पण करे। अन्त में मूल गायत्री का १०८ बार जप करे। मूल मंत्र इस प्रकार हैं ॥ ९१ ॥

"हुँ भगवत्येकजटे विद्महे, घोरदंष्ट्रे च धीमहि, तन्नस्तारे प्रचोदयात्" इति शतं विंशतिं वा तं जप्त्वा समर्प्य मूलमष्टोत्तरशतं जपेत्।

---

१. यहाँ २७ अक्षर की यह गायत्री है। इसलिये तांत्रिक गायत्री में २४ वर्ण की कोई सीमा नहीं है—ऐसा समझना चाहिये।

गायत्रीं परिजप्याथ मूलमन्त्रं जपेन्न च।
सा सन्ध्या निष्फला ज्ञेयाऽप्यभिचाराय कल्पते ॥ ९२ ॥
प्रातःसन्ध्याविहीनश्च न च स्नानफलं लभेत्।
मध्याह्नसन्ध्याहीनश्च न पूजाफलमाप्नुयात् ॥ ९३ ॥
सायंसन्ध्याविहीनस्य जपविघ्नः सदा भवेत्।
तस्मात् सुन्दरि! तत्वज्ञः सन्ध्यात्रयमुपाचरेत् ॥ ९४ ॥

गायत्री का जप करके जो मूलमंत्र का जप नहीं करता, उसकी की गयी 'सन्ध्या' निष्फल कही गयी है, अथवा वह अभिचार के लिये होती है। हे प्रिये! जो प्रातः कालीन सन्ध्या नहीं करता, वह स्नान का फल नहीं पाता। मध्याह्न कालीन संध्या जो नहीं करता, उसे देव-पूजा का फल नहीं प्राप्त होता। इसी प्रकार जो सायंकालीन संध्या नहीं करता, उसके जप में सर्वदा विघ्न हुआ करता है। इसलिये हे सुन्दरि! तत्त्वज्ञ पुरुष को त्रिकाल सन्ध्या अवश्य करनी चाहिये ॥ ९२-९४ ॥

प्रातर्न तर्पणं कार्य्यं न च सायं विशेषतः।
मध्याह्ने तर्पणं कृत्वा यथोक्तफलवान् भवेत् ॥ ९५ ॥

प्रातः काल तथा सायंकाल में तर्पण नहीं करना चाहिये। हाँ! मध्याह्न-काल में तर्पण करके मनुष्य शास्त्रोक्त फल का भागी होता है ॥ ९५ ॥

अर्घ्यहीना तु या सन्ध्या शोकदुःखप्रदा मता।
अर्घ्यं त्रिसन्ध्यं दातव्यमन्यथा निष्फलो जपः।
समन्त्रापि च गायत्री सत्यं सत्यं वरानने! ॥ ९६ ॥

हे वरानने! अर्घ्यहीन सन्ध्या भी निष्फल होती है तथा शोक और दुःख देने वाली होती है। इसलिये तीनों काल में सन्ध्या के साथ अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। अन्यथा विधिवत् व्याहृति-सहित गायत्री का जप भी निष्फल होता है—यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ ॥ ९६ ॥

ततः संहारमुद्रया तत्तेजः स्वहृदये नयेत् प्रणम्य च पूजाञ्चरेत्। इत्येवं सन्ध्या श्रीमदेकजटाविषया इति।

इसके बाद संहार मुद्रा द्वारा उसका तेज अपने हृदय में धारण करे और प्रणाम करके उसकी विधिवत् पूजा करे। यह एक जटाविषयक सन्ध्या हुई। अब उग्रतारा-सन्ध्या का विधान देखिये।

श्रीद्विजेन्द्र कविकृत 'विद्या'व्याख्या-विभूषित तारारहस्य का तारागायत्री वर्णन नामक द्वितीय प्रकरण समाप्त ॥ २ ॥

—०:—

अथ तारादिसन्ध्याप्रकरणम्

मूलेन त्रिर्जलं देवतायै दद्यात्। वामहस्ते जलमादाय पूर्ववदाच्छादनम्, जपाघमर्षणञ्च ततस्तथा आचमनम्। ततो मूलमुच्चार्य्य "श्रीमदुग्रतारां देवीं तर्पयामि नमः" इति त्रिः। ततः ॐ ह्रीँ हंसः इदमर्घ्यं श्रीसूर्य्याय नमः। इति गायत्र्या सूर्य्यमण्डलस्थायै श्रीमदुग्रतारायै इदमर्घ्यं नमः इति त्रिः। ततो गायत्रीं ध्यायेत्।

मूल मंत्र से अपने इष्ट देवता को तीन बार जल देवे। बायें हाथ में जल लेकर पूर्ववत् उसे ढँक देवे और जप, अघमर्षण तथा तीन बार आचमन करे। उसके बाद मूल मंत्र का उच्चारण करके "श्रीमती उग्रतारा देवी को तर्पण करता हूँ"—ऐसा तीन बार कहे। तदुपरान्त "ॐ ह्रीँ हंसः इदमर्घ्यं श्रीसूर्याय नमः" कहकर गायत्री मंत्रद्वारा "सूर्यमण्डलस्थायै श्रीमदुग्रतारायै इदमर्घ्यं नमः"—ऐसा तीन बार कहकर ध्यान करे।

मूलेन त्रिर्जलं दत्त्वा देवतायै वरानने!।
ततो देव्याः प्रकर्त्तव्यमघमर्षणमुत्तमम् ॥ ९७ ॥

हे वरानने! इष्ट देवता को मूल मंत्र से तीन बार जल देकर देवी का उत्तम अघमर्षण करना चाहिये ॥ ९७ ॥

ततः स्तुत्वाऽऽचमं कुर्य्यात् ततः स्यादिष्टतर्पणम्।
अर्घ्यं दत्त्वा च गायत्र्या ध्यानं कुर्य्याच्च साधकः ॥ ९८ ॥

उसके बाद स्तुति करके आचमन करे, यही इष्ट-तर्पण कहलाता है। तत्पश्चात् साधक अर्घ्य देकर गायत्री देवी का निम्नलिखित प्रकार से ध्यान करे— ॥ ९८ ॥

देवतातर्पणे चैव तुष्टाः स्युर्गुरुपङ्क्तयः।
शरीरेऽस्यास्ततो देव्याः सन्ति शाश्वतराजसाः ॥ ९९ ॥

इस प्रकार देवता के तर्पण में ही गुरु-पंक्तियाँ सन्तुष्ट होती हैं। इस देवी के शरीर में निरन्तर रजोगुण का निवास रहता है ॥ ९९ ॥

सर्वसाधारणञ्चात्र ध्यानं सर्वजयावहम्।
सर्वदेवमयी यस्मात् तारिणी त्रिगुणात्मिका ॥ १०० ॥

सर्वसाधारण के लिये सर्वत्र जय देने वाला यह ध्यान है। इसी कारण यह त्रिगुणात्मिका 'तारिणी' सर्वदेवमयी कही गयी है ॥ १०० ॥

अथ त्रिकालध्यानम्। तत्रादौ प्रातः—

उद्यद्भानुसहस्राभां पुस्तकाक्षकराम्बुजाम्।
कृष्णाजिनाम्बरां ब्राह्मीं ध्यायेत्तारकिताम्बरे ॥ १०१ ॥

प्रातः उगते हुए सहस्रों सूर्य के समान रक्तवर्ण वाली, काले मृगचर्म का वस्त्र धारण करने वाली, हाथों में पुस्तक, एवं स्फटिकमाला लेने वाली उस गायत्री देवी को स्मरण करे, जो हंसाधिरूढ होने से 'ब्रह्माणी' नाम से कही जाती हैं ॥ १०१ ॥

मध्यह्ने—

श्यामवर्णां चतुर्बाहुं शङ्खचक्रलसत्कराम् ।
गदापद्मधरां देवीं सूर्य्यासनकृताश्रयाम् ॥ १०२ ॥

श्याम वर्ण वाली चतुर्भुजी गायत्री उस वैष्णवी को मध्याह्न में स्मरण करना चाहिये, जिनके चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म शोभा दे रहे हैं और जो सूर्यासन (गरुडासन) पर विराजती है ॥ १०२ ॥

सायं—

सायाह्ने वरदां देवीं गायत्रीं संस्मरेत्ततः ।
शुक्लां शुक्लाम्बरधरां वृषासनकृताश्रयाम् ॥ १०३ ॥

सायंकाल मे वर देने वाली उस शैवी गायत्री देवी को स्मरण करना चाहिये, जो श्वेत वर्ण की हैं और श्वेत वस्त्र धारण करती हैं तथा वृषभ (बैल) पर बैठकर सुशोभित हो रही है ॥ १०३ ॥

त्रिनेत्रां वरदां पाशकपालशूलधारिणीम् ।
सूर्य्यमण्डलमध्यस्थां ध्यायन् देवीं समभ्यसेत् ॥ १०४ ॥

इसके अतिरिक्त वर देनेवाली उस त्रिनेत्रा गायत्री देवी का स्मरण करना चाहिये, जो अपने हाथों में पाश, कपाल, त्रिशूल एवं वरद मुद्रा धारण करती हैं। इस प्रकार सूर्यमण्डल के बीच में उक्त देवी का ध्यान करता हुआ साधक निरन्तर अभ्यास करे ॥ १०४ ॥

लज्जाबीजं समुद्धृत्य उग्रतारापदं ततः ।
सम्बोधनान्तं देवेशि ! विद्महे तदनन्तरम् ॥ १०५ ॥
श्मशानवासिनि पदं धीमहीति ततः परम् ।
तन्नस्तारे समुद्धृत्य प्रचोदयात् पदं ततः ॥
सम्बोधनान्तं देवेशि ! ततः स्यात्तु प्रचोदयात् ॥ १०६ ॥

इसके बाद लज्जा बीज 'ह्रीं' को आदि में रखकर 'उग्रतारा' पद का सम्बोधन रूप रखे, तत्पश्चात् 'विद्महे' तथा 'श्मशानवासिनि' पद रखे। तदनन्तर 'धीमहि' और 'तन्नस्तारे' रखकर—हे देवेशि ! अन्त में 'प्रचोदयात्' पद रखकर उच्चारण करे ॥ १०५-१०६ ॥

(उग्रतारा गायत्री)

"ह्रीं उग्रतारे विद्महे श्मशानवासिनि धीमहि। तन्नस्तारे प्रचोदयात्" इति।

ततः सामान्यगायत्रीं दशधा जप्त्वा विशेषगायत्रीम् अष्टोत्तरशतं जपेत्। ततः संहारमुद्रया तत्तेजः स्वहृदये नयेत्। इति उग्रतारासन्ध्या।

इसके बाद सामान्य गायत्री दसबार जपकर, विशेष गायत्री भी १०८ वार जपे। अनन्तर संहारमुद्रा द्वारा उस तेज को अपने हृदय में स्थापित करे॥

(इति उग्रतारा संध्या)

—:०:—

अथ नीलसरस्वतीसन्ध्या

मूलेन जलं संशोध्य सूर्य्याभिमुखं पञ्चधा जप्त्वा जलञ्च पञ्चधा दत्त्वा ॐ ह्रीं स्वाहा इत्याचम्य कृताञ्जलिः।

फिर मूल मंत्र से जल को पवित्र करके सूर्याभिमुख होकर पाँच वार जपे तथा जल भी पाँच वार नीचे गिराकर 'ॐ ह्रीं स्वाहा' इस मंत्र से आचमन करके हाथ जोड़कर यह मंत्र पढ़े—

ॐ श्मशानालयमध्यस्थां चतुर्वर्गप्रदायिनीम्।
महामेघप्रभां देवीं नीलपद्मे विराजिताम्॥
सर्वाभरणशोभाढ्यां लोचनं हरनेत्रतः॥ १०७॥

श्मशान स्थान के बीच में रहने वाली, चारों पदार्थों को देनेवाली, नील जलद के समान नील कमल पर विराजने वाली, सब प्रकार के भूषणों से सर्वाङ्गविभूषिता त्रिनयना भगवती गायत्री देवी को प्रणाम है॥ १०७॥

इति पठित्वा जले षट्कोणं विलिख्य तीर्थमावाह्य तत्त्वेनाचमनं कृत्वा मूलेन त्रिर्जलं भूमौ दद्यात्। इत्यघमर्षणम्। ततश्चैकजटावत् तर्पणं विधाय अर्घ्यं दद्यात्।

ऐसा कहकर जल में षट्कोण मंत्र लिखे, उसपर तीर्थ का आवाहन करे और जल तत्त्व आचमन करके मूलमंत्र द्वारा तीन वार जल भूमि पर गिरावे यही अघर्षण है।

इसके बाद एक जटा के समान ही यहाँ भी तर्पण एवं अर्घ्य का विधान करे।

जलमूले च संशोध्य पञ्चधा मूलमन्त्रकम्।
पञ्च वारान् जलं दत्त्वा पूजावश्याचमं चरेत्॥ १०८॥

सूर्य्यस्य मण्डले देवीं ध्यात्वा चाचमनं चरेत् ।
ततश्चैकजटावच्च सन्ध्यां कुर्य्यात्तु साधकः ॥ १०९ ॥

जलमें मूल मंत्र का पाँच वार संशोधन करके साधक पाँच वार जल देवे और पूर्व-पूजा (एकजटावत्) के समान आचमन भी करे । तत्पश्चात् सूर्य-मण्डलमें देवी का ध्यान करके पुनः आचमन करे । वहाँ भी साधक को चाहिये कि पूर्ववत् संध्याचरण करे ॥ १०८–१०९ ॥

अर्घ्यं तु गायत्र्या सूर्यमण्डलस्थायै तारादेव्यै श्रीनीलसरस्वत्यै इदमर्घ्यं स्वाहा । इति त्रिः । ततो ध्यानम् ।

अर्घ्य-दान गायत्री मंत्र से देकर तीन वार यह मंत्र कहे—"सूर्यमण्डलस्थायै तारादेव्यै श्री नीलसरस्वत्यै इदमर्घ्यं स्वाहा ।" इसके वाद निम्नलिखित मंत्रों द्वारा तीनों काल का ध्यान करना चाहिए ।

सूर्य्यमण्डलसंलग्नां मुक्ताहारविशोभिताम् ।
द्विनेत्रां द्विभुजां देवीं चतुर्वक्त्रां सरोजजाम् ॥ ११० ॥

सूर्यमण्डल से संलग्न, मुक्ताहार से सुशोभित, दो नेत्र एवं दो भुजावाली चतुर्मुखी—जो कमल से पैदा हुई हैं—ऐसी गायत्री देवी को प्रणाम हैं ॥११०॥

मध्याह्ने विष्णुरूपाञ्च चतुर्हस्ताञ्च भैरवीम् ।
मुक्तामाणिक्यसंयुक्तां नानाहारादिशोभिताम् ।
मन्त्रसिद्धिप्रदां देवीं गायत्रीं साधकाग्रणीः ॥ १११ ॥

मध्याह्न काल में चतुर्भुजी भैरवी देवी--जो विष्णुरूपिणी हैं और मुक्ता-माणिक्य-जटित अनेक हारों से सुशोभित है—ऐसी मंत्रों में सिद्धि देनेवाली श्रीगायत्री देवी को श्रेष्ठ साधक सर्वदा स्मरण करें ॥ १११ ॥

सायाह्ने सूर्य्यसंस्थाञ्च पञ्चवक्त्रां त्रिलोचनाम् ।
माहेश्वरीं जगद्धात्रीं जगज्जङ्गमपालिकाम् ॥ ११२ ॥

सायंकाल में सूर्य-स्थित त्रिनेत्र एवं पंचवदनवाली, चराचर जगत् की रक्षा करनेवाली जगज्जननी श्री माहेश्वरी देवी को प्रणाम है ॥ ११२ ॥

तारं पूर्वं समुद्धृत्य नीलसरस्वतीपदम् ।
धीमहि प्रथमं योज्यं सारदायै च विद्महे ।
तन्नः शिवे पदञ्चोक्त्वा ततो दद्यात् प्रचोदयात् ॥ ११३ ॥

पहले तारक मंत्र 'ॐ' का उच्चारण करके नील सरस्वती पद का सम्बोधन रूप में रखे । फिर 'धीमहि' के वाद 'सारदायै विद्महे' रखे, तत्पश्चात् 'तन्नः शिवे' पद कहकर अन्त में 'प्रचोदयात्' पद रखे । यथा—

(गायत्रीमन्त्रः)

"ॐ नीलसरस्वति धीमहि सारदायै[1] विद्महे, तन्नः शिवे ! प्रचोदयात्" । इति गायत्रीं यथाशक्ति जपेत् ।

यह गायत्री यथाशक्ति जप करे । उसके बाद एक जटावत् सब पूजा करे ॥ ११३ ॥

ततः सर्वमेकजटावत् । तारार्णवे महाचीने च विशेषः—

महाचीन 'तारार्णव' तंत्र में यह विशेषता है । यथा—

स्त्रीणाञ्चापि च शूद्राणां ब्राह्मणानां पृथक् पृथक् ।
ब्राह्मणेन प्रकर्त्तव्यं यद्यदुक्तं हि पुस्तके ॥ ११४ ॥
अन्यथा निष्फलं विद्यात् सर्वा पूजादिका क्रिया ।
प्रातःकृत्यं तथा स्नानं तथा सन्ध्यात्रयं शिवे ! ॥ ११५ ॥
स्त्रीशूद्रयोस्तारमन्त्रे लज्जावीजं प्रकीर्त्तितम् ।
वह्निजायामनुर्यत्र नमस्तत्र प्रकीर्त्तितम् ।
सर्वत्र पूजाहोमादावविशेषो विधिर्मतः ॥ ११६ ॥

स्त्रियों, शूद्रों तथा ब्राह्मणों का विधान अलग-अलग जो ग्रंथों में लिखा है, उसके अनुसार कार्य करना चाहिये । अन्यथा सभी पूजादिक क्रियाएँ निष्फल एवं व्यर्थ कही गयी हैं । प्रातः कृत्य (शौचादि) तथा स्नान एवं त्रिकाल संध्या करनी चाहिये । हे शिवे ! स्त्री शूद्र के लिये तारा मंत्र में 'ह्रीं' आदि में तत्पश्चात् 'नीलसरस्वत्यै' स्वाहा[2] एवं 'नमः' लगाकर सर्वत्र पूजा होमादि में मंत्र प्रयोग करना चाहिये । यह साधारण विधि कही गयी है ॥११४–११६ ॥

श्रीद्विजेन्द्र कविकृत 'विद्या' व्याख्या-विभूषित तारारहस्य का संध्या-वर्णन नामक चतुर्थ प्रकरण समाप्त ॥ ४ ॥

—:०:—

अथ बीजकोश(ष)प्रकरणम्

ततो देव्या मनुं वक्ष्ये तारायाश्च सदाशिवे ! ।
यस्य विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥ ११७ ॥

हे सदाशिवे ! अब तारा देवी का वह उत्तम मंत्र कह रहा हूँ, जिसके जानने से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है ॥ ११७ ॥

---

१. 'शारदायै'—इति साधु पाठः ।

२. हवन में 'स्वाहा' तथा पूजन में 'नमः' जोड़ना चाहिये । यथा—"ह्रीं नीलसरस्वत्यै स्वाहा" "ह्रीं नीलसरस्वत्यै नमः ।"

ब्रह्मा पृथ्वी वामनेत्रं चन्द्रविन्दुसमन्वितम् ।
कामबीजं समाख्यातं त्रैलोक्यजयदायकम् ॥ ११८ ॥

'वीजकोश' के विषय में 'तारानिगम' आदि में इस प्रकार लिखा है—

ब्रह्मा (क), पृथ्वी (ल), वामनेत्र (ई) तथा चन्द्रविन्दु (ँ) सहित कामवीज, क्लीँ कहा गया है। यह तीनों लोकों में विजय देनेवाला है ॥११८॥

ह्रान्तरेफसमायुक्तं वामनेत्रं सचन्द्रकम् ।
लज्जावीजमिति ख्यातं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ११९ ॥
षष्ठस्वरसमोपेतं हकारं चन्द्रखण्डकम् ।
कूर्चबीजमिति ख्यातं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ १२० ॥

'ह्रीं' = यह ह् + र् + ई + ँ (चन्द्रविन्दु) = लज्जावीज सर्वार्थ-सिद्धि-प्रदायक है। 'हूँ' यह षष्ठ स्वर 'ऊ' एवं चन्द्रविन्दु सहित ह कार ही 'कूर्चबीज' कहलाता है—जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥ ११९–१२० ॥

पवर्गस्य द्वितीयञ्च टवर्गस्याद्यमेव च ।
सर्वरक्षाकरं मन्त्रमस्त्रबीजं प्रकीर्त्तितम् ॥ १२१ ॥

पवर्ग का द्वितीय 'फ' टवर्ग का प्रथम 'ट्'—यह 'अस्त्रवीज' (फट्) कहा गया है, जो सर्वत्र रक्षा करने वाला है ॥ १२१ ॥

चन्द्रखण्डसमोपेतं द्वादशस्वरमीरितम् ।
वाग्भवं तच्च विज्ञेयं वाचःसिद्धिप्रदायकम् ॥ १२२ ॥

चन्द्र-विन्दु सहित द्वादशाक्षर 'ऐ' को 'वाग्भव' वीज 'ऐँ' कहते हैं—जो वाक्सिद्धि देनेवाला मंत्र है ॥ १२२ ॥

त्रयोदशस्वरं देवि ! चन्द्रखण्डविभूषितम् ।
तारं प्रणवमित्युक्तं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥ १२३ ॥

हे देवि ! चन्द्रविन्दु सहित त्रयोदशस्वर 'ओँ' को तार (तारक) प्रणव (ॐ) कहते हैं—जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव का प्रतीक है। अर्थात् अ + उ + म् ये त्रिदेव-सूचक स्वर हैं। उन्हींके योगसे 'ओँ' बनता है, जिसका आध्यात्मिक स्वरूप 'ॐ' है ॥ १२३ ॥

पञ्चमस्वरसंयुक्तं हकारं वर्मबीजकम् ।
जलाग्निविन्दुसंयुक्तं चतुर्दशस्वरान्वितम ॥ १२४ ॥
अङ्कुशं बीजमाख्यातं त्रैलोक्यस्य शुभावहम् ।
नादिभान्तं विसर्गान्तं हृद्बीजं परिकीर्त्तितम् ॥ १२५ ॥

पंचम स्वर 'उ' के साथ 'ह' रहने से वह 'वर्मबीज' (हुँ) नाम से प्रसिद्ध है। चतुर्दशस्वर 'और जल (क) अग्नि (र) विन्दु (ँ) सहित 'क्रौँ'

यह "अङ्कुश बीज" कहलाता है—जो तीनों लोकों में शुभफल देनेवाला है। इसी प्रकार आदि में 'न' अन्त में 'भ' विसर्गसहित हो तो उसे 'हृद्बीज' (नभः) कहते हैं ॥ १२४-१२५ ॥

हान्तं यस्य चतुर्थञ्च द्वितीयस्वरसंयुतम् ।
द्वितीयञ्च[1] हकारञ्च वह्निजायासमन्वितम् ॥ १२६ ॥

हान्त = 'स्', यवर्ग का चौथा 'व' द्वितीय स्वर 'आ'=स्वा, द्वितीय 'आ' + 'ह' = हा योग से "स्वाहा" वह्नि-जाया बीज है ॥ १२६ ॥

ब्रह्माग्निर्वामनेत्रान्तं द्विजराजसमन्वितम् ।
वधूबीजमिति ख्यातं वधूरिव यशस्विनी ॥ १२७ ॥

ब्रह्मा 'क' अग्नि 'र' वामनेत्र' 'ई' चन्द्रविन्दु 'ँ' युक्त "क्रीँ" भी वधूबीज 'स्त्रीँ' के समान यशस्विनो है ॥ १२७ ॥

बालस्त्वं वन्दनीयस्त्वं दासस्त्वं गुरुरेव च ।
माता न गोपयेद्वाक्यं बालकेभ्यः कदाचन ॥ १२८ ॥
तस्मात्तत् पृच्छतां नाथ ! यद्यहं देवदुर्लभम् ।
तारामन्त्रं महादेव ! वसुसिद्धिप्रदायकम् ॥ १२९ ॥

देवी महादेव जी से कहती हैं—हे प्रभो ! आप ही बालक हैं, वन्दनीय हैं, दास हैं अथवा आप ही 'गुरु' भी हैं। जैसे माता अपने प्रिय बच्चों से कोई बात कभी छिपाती नहीं, वैसे ही मैं हे नाथ ! आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ। यदि वह देवदुर्लभ भी हो तो मुझसे अवश्य कहने की कृपा करें। हे महादेव ! मैंने सुना है—तारा मंत्र अष्टसिद्धियों को देनवाला अत्यन्त दुर्लभ है ॥ १२८-१२९ ॥

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी ।
भैरवी छिन्नमस्ता च मातङ्गी कमलात्मिका ॥ १३० ॥
धूमावती च वगला महाविद्याः[2] प्रकीर्त्तिताः ।
एतासां श्रवणादेव[3] सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ १३१ ॥

काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, मातङ्गी, कमला, धूमावती और वगलामुखी—ये दश 'महाविद्या' कही गयी हैं। इनके नाम श्रवण या स्मरणमात्र से साधक सब प्रकार की सिद्धियों का स्वामी बन जाता है ॥ १३०-१३१ ॥

---

१. 'तदन्त्यञ्च' इति पाठान्तरम् ।
२. दश महाविद्याओं में 'काली' और 'तारा' सर्वोत्तम कही गयी हैं—विशेषकर कलियुग में ।
३. 'स्मरणादेव' इति साधु पाठः ।

विष्णुविद्या-देवविद्या-शिवविद्याविभेदतः ।
शक्तिविद्याप्रभेदेन विद्या बह्वयः प्रकीर्त्तिताः ॥ १३२ ॥

विष्णुविद्या, देवविद्या, शिवविद्या, शक्तिविद्या—आदि नाम-भेद से अनेक प्रकार की विद्याएँ कहीं गयी हैं ॥ १३२ ॥

सत्यादौ त्रियुगान्तञ्च विद्या जागर्त्ति नित्यशः ।
कलौ जागर्त्ति काली च कलौ जागर्त्ति नित्यशः ॥ १३३ ॥

सत्ययुग, त्रेता, द्वापर—इन तीन युगों तक 'विद्या' ही नित्य जागृत रहती हैं; परन्तु कलियुग में तो केवल काली, तारा प्रभृति दश महाविद्याएँ (विशेषकर काली-दुर्गा) ही प्रत्यक्ष जागृत रहती हैं ॥ १३३ ॥

कलौ काली कलौ कृष्णः कलौ गोपालकालिका ।
काली तारा महाविद्या महासिद्धिप्रदायिनी ॥ १३४ ॥

तंत्रागम की घोषणा है—कलि में 'काली', कलि में 'कृष्ण' तथा कलि में 'गोपाल-कालिका' एवं 'काली-तारा महाविद्या' आदि तथोक्त प्रमाणों से महासिद्धि को देनेवाली प्रत्यक्ष देवता हैं ॥ १३४ ॥

महाविद्यासु सर्वासु कलौ सिद्धिरनुत्तमा ।
सर्वविद्यामयी देवी काली सिद्धिरनुत्तमा ॥ १३५ ।

यद्यपि कलियुग में सभी महाविद्याओं से उत्तम सिद्धि मिलती है; तथापि कलिकाल में 'सर्वविद्यामयी देवी' कहकर काली-तारा को ही सर्वोत्तम सिद्धि बतायी गयी है ॥ १३५ ॥

कालिका तारका विद्या सर्वाम्नायैर्नमस्कृता ।
तयोर्यजनमात्रेण सिद्धः साक्षात् सदाशिवः ॥ १३६ ॥

क्योंकि कालिका और तारिका नाम की यह दो विद्या सब शास्त्रों से अनुमोदित एवं प्रशंसित है । उन दोनों के पूजनमात्र से साक्षात् सदाशिव प्रभु सिद्ध (प्रसन्न) हो जाते हैं ॥ १३६ ॥

यथा काली तथा तारा तथा नीलसरस्वती ।
सर्वाभीष्टफलं दद्यात् तथा त्रिपुरसुन्दरी ॥ १३७ ॥
अभेदमतमास्थाय यः कश्चित् साधयेन्नरः ।
त्रिलोके स तु सम्पूज्यः स्यात्तारासुत एव सः ॥ १३८ ॥

जिस प्रकार काली, तारा और नील सरस्वती देवी, पूजा करने से सब प्रकार की मनःकामनाएँ पूर्ण करती हैं, उसी प्रकार त्रिपुरसुन्दरी भी सिद्धिदायिनी हैं । इसलिये जो साधक अभेदबुद्धया इनकी उपासना करता है, वह त्रैलोक्य में पूजनीय होता है । यहाँ तक कि वह साक्षात् 'तारानन्दन' ही हो जाता है ॥ १३७–१३८ ॥

भेदं कृत्वा तु यो मन्त्री साधयेदत्र साधनम् ।
न तस्य निष्कृतिर्देवि ! निरये पच्यते हि सः ॥ १३९ ॥

किन्तु जो मंत्रज्ञ पुरुष भेद-बुद्धि से इनका साधन (पूजन) करता है, उसको हे देवि ! सिद्धि नहीं मिलती; अपितु वह नरक में गिरता है ॥ १३९ ॥

एतासां साधनेनैव यशः सिद्धिश्च नित्यशः ।
केवलां भक्तिमास्थाय चतुर्वर्गं लभेत् करे ॥ १४० ॥

इन तथाकथित दसों महाविद्याओं के साधनमात्र से नित्य सुयश एवं सिद्धि मिलती है । केवल श्रद्धा-भक्ति रहने पर भी साधक अपने हाथ में चारों पदार्थ प्राप्त कर लेता है ॥ १४० ॥

त्रिपुरा[1] च महाविद्या बहुसाधनसिद्धिदा ।
यस्याः प्रसादान्मन्त्रेण भोगो मोक्षाय जायते ॥ १४१ ॥

उनमें महाविद्या 'त्रिपुरा' देवी तो अनेक साधनों में सिद्धि देनेवाली हैं । जिनकी कृपा तथा मंत्र-साधना से भोग भी मोक्ष का हेतु बन जाता है ॥१४१॥

कालिका तारका विद्या कलौ सिद्धिसमृद्धिदा ।
दुःखं विना प्रसीदेत कलौ जागरणात्मिका ॥ १४२ ॥

विशेष करके कालिका तथा तारा विद्या तो कलिकाल में सिद्धि और समृद्धि देनेवाली हैं । वे केवल जागरणमात्र से बिना कष्ट के ही प्रसन्न हो जाती है ॥ १४२ ॥

न वा प्रयोगबाहुल्यं न्यासजालादिके तथा ।
न तत्र पश्वाचारः स्यात्तस्मात् तत्साधनं शुभम् ॥ १४३ ॥

चूँकि इनकी सिद्धि के लिये न कोई प्रयोगाधिक्य की आवश्यकता है, न न्यास-जालादिक क्रियाओं की । वहाँ किसी प्रकार का पश्वाचार भी नहीं होता । इस कारण वह साधन उत्तम शुभ फल प्रदाता है ॥ १४३ ॥

कालिकासाधनं देवि ! मत्कृते कालिकार्चने ।
राजते तद्धि तत्रैव प्रबुध्य साधनञ्चरेत् ॥ १४४ ॥

हे देवि ! मेरे लिये जो कालिकार्चन किया जाता है, उसे 'कालिकासाधन' कहते हैं । वह वहीं पर शोभा देता है, जहाँ बोधपूर्वक गुरुद्वारा साधन किया जाय ॥ १४४ ॥

अस्या मूर्तिर्द्वितीया या सृष्टिमूले व्यवस्थिता ।
एतस्याः साधनञ्चैव सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ १४५ ॥

---

१. यहाँ पर 'भुवनेश्वरी' देवी का ही नाम 'त्रिपुरा' है ।

धनं धान्यं सुतं जायां भोगं मोक्षं तथैव च ।
अचिराल्लभते वाणीं यस्याः स्मरणमात्रतः ॥ १४६ ॥
छन्दःशास्त्राणि नाधीत्य विनालापं कवेरपि ।
गद्यपद्यमयी वाणी वक्त्रात् तस्य प्रजायते ॥ १४७ ॥

इसकी जो दूसरी मूर्त्ति सृष्टिकाल में व्यवस्थित हुई थी, उसका साधन करना सर्वसिद्धिप्रदायक है; क्योंकि इसके स्मरणमात्र से धन-धान्य (अन्न), पुत्र, कलत्र, भोग-मोक्ष तथा वाणी (विद्या) भी शीघ्र ही प्राप्त होती हैं। यहाँ तक कि छन्दःशास्त्र (पिंगल) के अध्ययन विना—कवियों से वार्तालाप किये विना ही—उस व्यक्ति के मुखसे गद्य-पद्यमयी वाणी अर्थात् लेख-कविता निकलती रहती है ॥ १४५–१४७ ॥

अणिमा लघिमा व्याप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा ।
अदर्शनं स्थौल्यरूपं वह्निस्तम्भं जलस्य च ॥ १४८ ॥
चन्द्रसूर्य्याग्निभूतानां स्तम्भको विभुरेव सः ।
मन्त्रसिद्धिस्तथा - वेद - पुराणागमसिद्धिभाक् ॥ १४९ ॥

अणिमा[1], लघिमा, व्याप्ति, प्राकाम्य, महिमा, अदर्शन (गुप्त होना), स्थौल्यरूप धारण करना, अग्निस्तम्भन, जलस्तम्भन तथा सूर्य-चन्द्र-अग्निस्वरूप का स्तंभन करनेवाला वही प्रभु है। इसी प्रकार मंत्रसिद्धि तथा वेद-शास्त्र, पुराण, तन्त्रों में सिद्धि देने वाली वही प्रभु-शक्ति है ॥ १४८–१४९ ॥

उपचारविशेषेण राजपत्नीं वशं नयेत् ।
चतुःषष्टिप्रकारेण सिद्धिराकाशगामिनी ॥ १५० ॥

उपचार-विशेष से तथोक्त मन्त्रद्वारा राजस्त्री को भी वश में किया जा सकता है, (सर्व साधारण नारीजाति की बात ही क्या ?) चौसठ प्रकार द्वारा गगनगामिनी शक्ति प्राप्त होती है ॥ १५० ॥

पञ्चशून्ये स्थिता तारा सर्वान्ते कालिका स्थिता ।
सिद्धयः सन्ति यत्रापि तदानीय प्रदीयते ॥ १५१ ॥

यदि पाँचवें[2] आकाश में तारा[3] स्थित हो, और सबके अन्त में कालिका

---

१. अणिमादि सिद्धियाँ एवं स्तम्भन, उच्चाटन, वशीकरण आदि सब सुलभ हैं।

२. पञ्चशून्ये महादेवी शिवरूपा त्रिलोचना ।
लयं नयति ब्रह्माण्डं महाकालेन लालिता ॥ २५ ॥
× × ×

३. "पञ्चशून्ये स्थिता तारा सर्वान्ते कालिका स्थिता" ॥ २७ ॥
(ताारहस्य प्रथमपटले प्र० प्रकरणे)

स्थित हों, तो जहाँ कहीं भी सिद्धियाँ होंगी, वहाँ से लाकर वह दे देती है ॥१५१

यदि साधयितुं देवि ! शक्यते तारकाकुले।
तदा सिद्धिमवाप्नोति सर्वदा कुलमण्डले ॥
कुलाचारविहीनस्य न सिद्धिर्न च सद्‌गतिः ॥ १५२ ॥

हे देवि ! यदि तारकाकुल में साधना करने की शक्ति प्राप्त हो तो कुल मण्डल में सर्वदा उसे सिद्धि प्राप्त होती है। साथही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि कुलाचार-विहीन साधक को न तो कभी सिद्धि मिलती है, न उसे सद्‌गति ही मिलती है ॥ १५२ ॥

ब्रह्मघ्नश्च कृतघ्नश्च गुरुयोषागतश्च यः।
कन्यागतः स्नुषागश्च ब्राह्मणीगो गवीगतः ॥ १५३ ॥
हिंसावान् सर्वजन्तूनां ब्राह्मणानां विशेषतः।
पृथिव्यां रेतसां पातः शिवपूजाबहिर्मुखः ॥
शृणु वत्स ! महादेव ! महापातकिनो यथा ॥ १५४ ॥
एतेभ्यो मुच्यते देव ! तारामन्त्रः श्रुतो यदि।
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः सर्वपापयुतोऽपि सः ॥ १५५ ॥

जो ब्रह्मघाती है, कृतघ्न एवं विश्वासघाती है, जो गुरुपत्नीगामी, कन्या, भगिनी एवं ब्राह्मणी से व्यभिचार करनेवाला है, जो पशुगामी और सब जीवों की हिंसा करता है, जो ब्राह्मणों को विशेष सताता है, जो भूतल पर व्यर्थ वीर्यपात करता है तथा जो शिव की पूजा कभी नहीं करता, जो हे वत्स, महादेव ! महापातकी है, तो वे सभी प्रकार के पापी जन उन पापों से मुक्त हो जाते हैं, यदि 'तारामंत्र' सुन लें ॥ १५३-१५५ ॥

कुलदीक्षाविहीनस्य न सिद्धर्न च सद्‌गतिः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तारायाः देशिको नरः ॥ १५६ ॥
कुलाचारविहीनश्चेत् सर्वपापैरवाप्यते।
कुलाचाररतो यस्तु तर्पयेत् कुलदेवताम् ॥ १५७ ॥

जो मनुष्य कुलदीक्षा से रहित है, उसे न सिद्धि मिलती है, न मुक्ति ही मिलती है। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि सब प्रकार से ताराभक्त बने। क्योंकि यदि कुलाचारविहीन वह नर है, तो समझ लीजिये कि निश्चय ही पापभागी है और जो कुलाचार में सर्वदा विरत रहता है, वह अपने कुलदेवता को प्रसन्न कर देता है, यह ध्रुव सत्य है ॥ १५६-१५७ ॥

नित्यं श्रीतारकां देवीं तस्य सिद्धिः करे स्थिता।
आचारज्ञानवान् यश्च क्रियते न कुलक्रिया ॥ १५८ ॥

पच्यते नरके घोरे कल्पकोटिशतैरपि।
परदाररतो यश्च चक्रमध्ये भवेन्नरः ॥ १५९ ॥

जो नित्य ही श्री तारादेवी की उपासना करता है, उसके हाथ में सभी सिद्धियाँ रहती हैं; परन्तु जो ज्ञानी एवं आचारवान् होने पर भी कुलाचार की क्रिया नहीं करता, वह करोड़ों कल्प तक घोर नरक में वास करता है। इसी प्रकार जो वाममार्ग के चक्र में पड़कर परायी स्त्रियों का भोग करता है, वह कुत्ते की विष्ठा का कीड़ा वनकर घोर नरक में अनेक कल्पों तक वास करता है ॥ १५८–१५९ ॥

शुनीविष्ठाकृमिर्भूत्वा तिष्ठेत् कल्पायुतं भुवि।
साधनञ्च समासाद्य परयोपारतो भवेत् ॥ १६० ॥
मातुर्योनिं परित्यज्य विहरेत् सर्वयोनिषु।
निर्विकारो निर्विकल्पो भवेत् साधकसत्तमः ॥ १६१ ॥

जो साधक सच्चा साधन पाकर परस्त्रीगामी हो भी, तो वह केवल स्वमातृ-योनि का त्याग कर अन्य योनियों में विहार कर सकता है। साथही निर्विकार एवं निर्विकल्प होने पर साधकों में श्रेष्ठ हो जाता है ॥ १६०–१६१ ॥

मातृपदं सप्तमातृपरम्। इति सद्गुरुसिद्धानन्दगिरिर्ज्ञातवान् तारा-निगमादिदर्शनात्।

यहाँपर 'मातृपद' से सप्तमातरः का तात्पर्य है—ऐसा सद्गुरु श्रीसिद्धानन्दगिरि का अनुभव है; क्योंकि तारानिगमादि तंत्रग्रंथों के देखने से भी यही प्रतीत होता है। तथाहि—

शक्यते यस्तु वै दातुं स्वयोषां भक्तवत्सलाम्।
तदा योषां समानीय ह्यन्येषां साधयेद् ध्रुवम् ॥ १६२ ॥
स एव साधकश्रेष्ठो निर्विकल्पाय निश्चितम्।
साधकेभ्यः प्रदीयेत तदान्यां परिगृह्यते ॥ १६३ ॥

जो भक्तवत्सला अपनी स्त्री को सहर्ष देना चाहे, उसे प्रेमपूर्वक लाकर चक्रसिद्धि का कार्य करना चाहिये। वही साधक सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है—जो निर्विकल्प समाधि के लिये समर्थ हो। ऐसे ही साधकों के लिये अन्यान्य शक्तियाँ देनी चाहिये, यदि वे उन्हें स्वीकार करें ॥ १६२–१६३ ॥

न दातुं शक्यते यस्तु स्वयोषां देववत्सलः।
नटीं स तु समानीय साधयेच्छक्तिसाधनम् ॥ १६४ ॥

यदि कोई देवभक्त पुरुष अपनी स्त्री न देना चाहें, तो कोई 'नटी' स्त्री ही बुलाकर साधक अपना चक्रसिद्ध करे ॥ १६४ ॥

स्वयोषां दीयते यस्तु चक्रमध्ये तु साधकः।
गुरुभ्यः साधकेभ्यश्च तस्य शीर्षे वसाम्यहम्॥
सर्वसिद्धिस्तस्य देव! चक्षुषोस्तस्य गोचरा॥ १६५॥
(इत्यादि तारानिगमादिचीनान्तम्।)

जो साधक अपनी स्त्री को ही चक्रसिद्धि में अपने गुरुओं किंवा साधकों को दे देवें तो हे देव! मैं प्रसन्न होकर उसके सिर में निवास करती हूँ तथा उसके समक्ष मैं प्रत्यक्ष दर्शन देती हूँ तथा सब प्रकार की सिद्धि उसे प्राप्त होती है॥ १६५॥

श्रीद्विजेन्द्र कविकृत 'विद्या'व्याख्या-विभूषित तारारहस्य का 'बीजकोश-वर्णन' नामक पंचम प्रकरण समाप्त॥ ५॥

—:०:—

६—अथ 'विद्या निरूपणप्रकरणम्।

तारकत्वात् सदा तारा तस्य भेदविभेदतः।
आद्या कल्पे मुक्तकेशी रुद्रस्त्वेकजटः स्वयम्॥ १६६॥
अस्माच्चैकजटा प्रोक्ता मन्त्रश्चास्या निरूप्यते।
वसिष्ठाराधिता विद्या न तु शीघ्रफला यतः॥ १६७॥

सब जीवों को तारने के कारण वह शिवशक्ति ही 'तारा' कही गयी। उसके भेद-प्रभेद होने से आदि कल्प में केवल वह मुक्तकेशी देवी तथा एक जटाधारी रुद्र ही उत्पन्न हुए। इसी कारण वह 'एकजटा' देवी के नाम से प्रसिद्ध हुई। उसका मंत्र इस प्रकार है। उस मंत्रविद्या का सर्वप्रथम महर्षि वसिष्ठ जी ने अध्ययन किया; परन्तु उसकी शीघ्र सिद्धि नहीं हुई॥१६६-१६७॥

अतस्तेनापि मुनिना शापो दत्तः सुद
ततः प्रभृति विद्येयं फलदात्री न कस्
तत्तदुद्धारितं तेन शिवेन गुरुणा

इसलिये उस मुनि ने कठोर शाप दे दिया, त
फल नहीं देती। उसका उद्धार सदाशिव गुरु ने समय

लज्जाबीजं वधूबीजं कूर्चबीजमतः परम् ।
अस्त्रान्तमनुना ख्यातं पञ्चरश्मिस्वरूपकम् ॥ १६९ ॥

इति चैकजटाविद्या सर्वशास्त्रेषु गोपिता ।
सर्वशास्त्रे गोचरा च कामिनी सिद्धिदायिनी ॥ १७० ॥

लज्जाबीज 'ह्रीं' के बाद वधूबीज 'स्त्रीं' तत्पश्चात् 'कूर्चबीज', 'हूँ' और अन्त में अस्त्रबीज 'फट्' रखने से वह मंत्र "पंचरश्मिस्वरूप[1]" कहा जाता है। इसी को तांत्रिकों ने 'एकजटा विद्या' (मंत्र) कहा है—जो सब शास्त्रों में गुप्त[2] रखने योग्य है। यह सब शास्त्रों में कामिनी एवं सिद्धिदायिनी देखी गयी है ॥ १६९-१७० ॥

महापातकलक्षेण क्षितौ यदि च मानवः ।
एतस्य श्रवणाद्देवि ! जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥ १७१ ॥

हे देवि ! यदि मनुष्य भूतल पर लाखों महापातक करता हो; परन्तु इस मंत्र के सुनने या स्मरण करने मात्र से निश्चय ही जीवन्मुक्त हो जाता है ॥१७१॥

श्रीतारा नैव दातव्या भूमिस्वर्गरसातले ।
यदि प्रदीयते देवि ! निरये पच्यते ध्रुवम् ॥ १७२ ॥

ज्येष्ठपुत्राय शान्ताय स्वरूपज्ञानशालिने ।
श्रीयुतां यदि राधेत शूद्रो मोहवशं गतः ॥ १७३ ॥

तारकाद्यां महाविद्यां पतनं तस्य निश्चितम् ।
स्त्रीणाञ्चापि वरारोहे ! निषिद्धं सर्वदैव हि ॥ १७४ ॥

श्रीतारामंत्र को भूलोक, स्वर्गलोक और पाताललोक (तीनों लोकों) में कभी किसी को देना नहीं चाहिये। यहाँ तक कि यदि ज्येष्ठ पुत्र, शान्त तथा रूप-गुणशाली व्यक्ति को भी दिया जाय, तो वह निश्चय ही नरक में जाता है। भूल से यदि तारा आदि दसो महाविद्याओं का शूद्र कोई पूजन करे तो उसका पतन निश्चित ही हो जाता है। हे सुन्दरि ! स्त्रियों को भी सर्वदा वह पूजन निषिद्ध है ॥ १७२-१७४ ॥

आदौ श्री एकजटा उद्धरिता, अतः श्रीतारा नोक्ता, सर्वत्र दोषश्रवणात् स्त्रीयधर्मत्वाच्च ।

---

१. "ॐ ह्रीं स्त्रीं हूँ फट्"—ये पञ्चरश्मि मंत्र हैं।

२. गोपिता = सुरक्षिता। 'गोप्यं' का अर्थ केवल गुप्त रखना ही नहीं; बल्कि रक्षा करना है।

सर्वप्रथम 'श्री एकजटा' देवी का उद्धार बताया। अतः श्रीतारा देवी की चर्चा नहीं की, क्योंकि उसके बारे में दोष सुना जाता है और वैसा करना भी उचित नहीं है।

श्रीबीजाद्या यदा विद्या तदा श्रीः सर्वतोमुखी।
वाग्भवाद्या यदा विद्या वागीशत्वप्रदायिनी॥
पञ्चरश्मिर्महाविद्या लभ्यते यदि भाग्यतः।
तस्य भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव शङ्करः॥ १७५॥

इत्येकजटादेव्याः शक्तिसिद्धिमन्त्रः—

श्रीबीज जिस मंत्र के आदि में हो—वहाँ सर्वतोमुखी लक्ष्मी निवास करती है। इसी प्रकार जो मंत्र वाग्भव (ऐं) मूलक हो तो वह 'वाचस्पतित्व' को देनेवाला है। यदि भाग्यवश कहीं पंचरश्मि ([1]पंचबीजात्मिका) महाविद्या प्राप्त हो गयी, तब क्या कहना ? उसके हाथ में भोग, मोक्ष तथा साक्षात् शंकर जी आ गये॥ १७५॥

(इति एकजटाशक्ति-सिद्धि मंत्र)

लज्जाद्या चापरा चासौ भोगमोक्षप्रदायिका।
सार्द्धपञ्चाक्षरं मन्त्रं महासिद्धिप्रदायकम्॥ १७६॥

'लज्जाद्या' अन्य देवी भी भुक्ति-मुक्ति देनेवाली है। साढ़े पाँच अक्षर का वह मंत्र भी महान् सिद्धियों को देनेवाला है॥ १७६॥

तारा गायत्री इस प्रकार है :—

एतस्या [2]गायत्री। "ॐ तारायै विद्महे मो ग्रदायै च धीमहि। तन्नो नीले प्रचोदयात्"।

(इति तारागायत्रीमन्त्रः)

कामाख्या चापरा विद्या कामतारा प्रकीर्तिता।
भोगमोक्षप्रदा देवी शार्वशास्त्रे प्रपूजिता॥ १७७॥

'कामाख्या' नाम की एक दूसरी विद्या (मंत्र) है, जिसे 'कामतारा' कहते हैं। वह देवी भोग और मोक्ष को देनेवाली तथा शिव-शास्त्र में समादरित एवं पूजित है॥ १७७॥

---

१. 'ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट्' ये 'पंचबीज' कहे जाते हैं। इसीलिये इसे 'पंच-रश्मि' संज्ञा दी गयी है।

२. यह स्मरण रहे कि सभी गायत्री मंत्र २४ वर्ण के होते हैं। इसलिये मैंने उसे पूर्ण कर दिया है। छपे ग्रंथों में २२ अक्षर ही उपलब्ध हैं।

अस्या गायत्री तत्रैव—

इस कामतारा मंत्र की गायत्री भी वहीं लिखी हैं। यथा—

"ॐ कामाख्यायै विद्महे कुलकौलिन्यै धीमहि। तन्नः श्यामे प्रचोदयात्।

(इति एकजटाभेदः)

—:०:—

अथ उग्रतारा।

कूर्चाद्या पञ्चरश्मिर्या विद्या ख्याता महीतले।
उग्रतारा समाख्याता स्वर्गे मर्त्ये रसातले ॥ १७८ ॥
अस्यास्तु स्मरणात् सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते।
भोगमोक्षप्रदा देवी सर्वतन्त्रेषु पूजिता ॥ १७९ ॥

कूर्च आदि पंचरश्मि वाली जो विद्या भूतल में विख्यात हैं, वह तीनों लोकों में 'उग्रतारा' नाम से विदित है। इस मंत्र के स्मरणमात्र से मनुष्य शीघ्र सब पापों से छूट जाता है; क्योंकि मुक्ति-प्रदायिनी वह देवी सर्व-तंत्रग्रंथों में पूजनीय है ॥ १७८–१७९ ॥

गायत्री यथा—

अस्या गायत्री तत्रैव। "ॐ उग्रतारे धीमहि, सिद्धिसारे च विद्महे। तन्नो नीले प्रचोदयात्" ॥ इत्युग्रतारागायत्री।

तत्रैव मन्त्रः।

बधूलज्जा ततः कूर्चमस्त्रान्तोऽयं महामनुः।
शम्भुपत्नी समाख्याता सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥ १८० ॥

वधू[1] (स्त्री) लज्जा (ह्रीं), कूर्च (हूं) तत्पश्चात् अस्त्र बीज (फट्) क्रमशः रखने से महामंत्र होता है। इस का नाम "शंभुपत्नी" कहा गया है, जो सब तंत्रों में गुप्त हैं ॥ १८० ॥

इसकी गायत्री भी इस प्रकार जानिये—

अस्या गायत्री तत्रैव। "ॐ शम्भु-पुत्र्यै विद्महे महोग्रायै च धीमहि तन्नस्तारे प्रचोदयात्" ॥

आदौ कूर्चं ततो लज्जा वधूबीजमतः परम्।
फडन्तश्च महामन्त्रः सर्वतन्त्रशुभावहः।
महाकालप्रिया देवी भोगमोक्षप्रदायिनी ॥ १८१ ॥

---

१. स्मरण रहे कि आदि में प्रणव अवश्य हो। यथा 'ॐ स्त्रीं ह्रीं हूं फट्'।

आदि में कूर्च तत्पश्चात् लज्जाबीज इसके बाद वधूबीज; अन्त में 'फट्' रखने से 'महाकालप्रिया' देवी नाम पड़ता है। यह महामंत्र सब तंत्रों में शुभदायक एवं भुक्ति-मुक्ति देनेवाला है ॥ १८१ ॥

हूँ ह्रीं स्त्रीं फट्। एतस्या गायत्री।

'ह्रों ह्रीं स्त्रीं फट्'। इसकी गायत्री इस प्रकार है—

"ॐ तारकायै विद्महे 'महाकालप्रियायै धीमहि। तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्" ॥

(इति महाकालप्रियागायत्रीमन्त्रः)

—:०:—

अथ नीलसरस्वती

ताराद्येकजटामन्त्रो　नीलवाण्याः　प्रकीर्त्तितः।
यस्यास्तु स्मरणात् सम्यग् वागीशत्वं लभेद्ध्रुवम् ॥ १८२ ॥

तारादि एक जटामन्त्र को ही 'नीलसरस्वती' मंत्र कहते हैं—जिसके विधिवत् स्मरण करने से साधक निश्चय ही 'वागीशत्व' प्राप्त करता है ॥१८२॥

इसकी गायत्री इस प्रकार है :—

अस्या गायत्री। 'ॐ नीलसरस्वत्यै[2] विद्महे श्रीतारायै धीमहि। तन्नो देवि ! प्रचोदयात्' इति ॥

वाग्भवाद्या　चैकजटा　महानीलसरस्वती।
अस्याश्च स्मरणात् सद्यः सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ १८३ ॥

वाग्भवादि-एकजटा को ही 'महानील सरस्वती' कहते हैं। इसके स्मरण-मात्र से शीघ्र ही साधक सब सिद्धियों का स्वामी बन जाता है ॥ १८३ ॥

अस्या गायत्री। तृतीयसन्ध्यायां लिखिता। उग्रतारा सन्ध्यायां गायत्री श्रुता ॥

इसकी गायत्री तृतीय सन्ध्या में लिखी गयी है। उग्रतारा संध्या में भी गायत्री सुनी जाती है। इसलिये यहाँ नहीं लिखी गयी।

श्रीद्विजेन्द्र कविकृत 'विद्या' व्याख्या-विभूषित तारारहस्य का विद्यानिरूपण नामक षष्ठ प्रकरण समाप्त ॥ ६ ॥

—:०:—

---

१. यहाँ 'महाकालायै धीमहि' यह पाठ समीचीन है। क्योंकि आठ वर्ण होना चाहिये, दस नहीं।

२. यहाँ भी 'ॐ नीलवाण्यै विद्महे' पाठ होना चाहिये।

७—अथ कुल्लुकाप्रकरणम् ।

कुल्लुका विद्या मन्त्रस्तु सर्वत्र प्रयोगे, पद्मावती च—

कुल्लुकाविद्यामंत्र जैसे सर्वत्र प्रयोग में आता हैं, वैसे पद्मावती मंत्र भी ।

लज्जावधूकूर्चबीजप्रयोगः सिद्धिदायकः ।
कुल्लुकेयं समाख्याता सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥ १८४ ॥

लज्जा (ह्रीं), वधू (स्त्रीं), कूर्च (हूं) वीज का प्रयोग सिद्धिदायक है । यह 'कुल्लुकाविद्या' सव तंत्रों मे गोपनीय कही गयी है ॥ १८४ ॥

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य पद्मे पद्मे पदं ततः ।
महापद्मे पदं प्रोच्य पद्मावतिपदं ततः ।
माये स्वाहा महामन्त्रप्रयोगः सिद्धिदायकः ॥ १८५ ॥

पहले 'प्रणव' तत्पश्चात् 'पद्मे-पद्मे' उसके वाद 'महापद्मे'—ऐसा कहकर 'पद्मावति' यह उच्चारण करे । अन्त में 'माये' तथा 'स्वाहा' का प्रयोग करने पर जो महामंत्र वनता है, उसे 'पद्मावती' मंत्र कहते है । यह सव प्रकार की सिद्धियों को देनेवाला है ॥ १८५ ॥

"ॐ पद्म महापद्मे पद्मावति ! ह्रीं ह्रीं स्वाहा" अत्र शास्त्रे 'माये' इति श्रवणाल्लज्जाद्वयं बोध्यम् । ये तु सम्बोधनान्तमायाशब्दं वदन्ति ते म्लेच्छाः ।

इस विद्या में 'माये' द्विवचन है, जो सम्बोधनान्त 'माये[1]' कहते हैं, वे म्लेच्छ है । देखिये तारानिगम के पद्मावती प्रकरण में लिखा है । यथा—

तारानिगमे पद्मावतीप्रकरणे यथा—

तारं पद्मे च पद्मे च महापद्मे ततःपरम् ।
पद्मावति ततो लज्जाद्वयं स्वाहा ततो मनुः ॥ १८६ ॥

तारं (प्रणव) के वाद पद्मे २ महापद्मे तत्पश्चात् पद्मावति ! अन्त में दो लज्जावीज के साथ स्वाहा अर्थात् "ॐ पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावति ह्रीं-ह्रीं स्वाहा" ॥ १८६ ॥

तारकत्वात् सदा तारा या काली सैव निश्चिता ।
वहवोऽस्याश्च मन्त्राः स्युः सर्वतन्त्रागमादिषु ॥ १८७ ॥
शक्तिसिद्धा महाविद्याः सारात् सारतराः स्मृताः ।
अष्टविद्यासमो नास्ति भूतले सिद्धिदो मनुः ॥ १८८ ॥

---

१. यहाँ 'माये' शब्द माया (ह्रीं) शब्द का द्विवचन रूप है, सम्वोधन नहीं है । कहीं-कहीं मूल में 'श्रीं ह्रीं' अशुद्ध पाठ है । होना चाहिये— 'ह्रीं ह्रीं' ।

सर्वदा जो जीवों को तारती हैं, वही तारा, 'काली' के नाम से विदित हैं। इनके अनेक मंत्र है—जो सभी तंत्र-शास्त्रों में मिलते हैं। क्योंकि तारादि महाविद्याएँ स्वतः सिद्ध एवं सारतत्त्वों के भी सार हैं। इस भूतल में तथोक्त अष्टविद्या के समान सिद्धि देनेवाला कोई अन्य मंत्र नहीं है ॥ १८७–१८८ ॥

आद्या चैकजटा प्रोक्ता द्वितीया चोग्रतारका।
तृतीया नीलवाणी स्याद् भोगमोक्षप्रदा मता ॥ १८९ ॥

इन सभी मंत्रों के तीन देवता विशेषतः प्रसिद्ध हैं। उनमें पहली है—'एकजटा', दूसरी है—'उग्रतारा' तथा तीसरी है—'नीलसरस्वती'। ये तीनों भुक्ति और मुक्ति देनेवाली हैं ॥ १८९ ॥

तत्र एकजटामन्त्रोद्धारादेकलक्षणं लिखितं संक्षेपतः—

उग्रापत्तारिणी यस्मादुग्रतारा प्रकीर्त्तिता।
दत्ता वाक् नीलया यस्मात्तस्मान्नीलसरस्वती ॥ १९० ॥

उपर्युक्त तीनों मंत्रों में "एकजटा" का लक्षण तो पहले लिख चुके हैं। जो उग्र विपत्ति से उद्धार करे, उसका नाम 'उग्रतारा' कहा गया है। जिसने नीलिमा के रूप में वाग्दान किया, इस कारण वह 'नीलसरस्वती' नाम से प्रसिद्ध हुई है ॥ १९० ॥

एतासामष्टमन्त्राणां ऋषिच्छन्दांसि साधक!।
शृणु चात्र प्रवक्ष्यामि रहस्यं मम सम्मतम् ॥ १९१ ॥
नीलाचारादिकं दृष्ट्वा पुरश्चरणमेव च।
प्रत्येकञ्च प्रवक्ष्यामि अष्टमन्त्रञ्च तारके ॥ १९२ ॥

हे साधक! अब इन आठों महामंत्रों के ऋषि-छन्द आदि भी सुनो, मैं शास्त्रसम्मत रहस्य वर्णन करता हूँ। क्योंकि 'नीलाचार' नामक तंत्र-ग्रंथ एवं पुरश्चरण आदि को भलीभाँति देखकर मैं तारासम्बन्धी इन अष्टमंत्रों का वर्णन करता हूँ ॥ १९१-१९२ ॥

अक्षोभ्योऽस्य ऋषिः प्रोक्तो वृहतीच्छन्द एव च।
वीजं लज्जामनुः प्रोक्तं शक्तिः कूर्चमितीरितम् ॥ १९३ ॥
कीलकं निजबीजञ्च वधूवीजं सुसिद्धकम्।
लक्षसंख्यं जपन्मत्रं फलमूलैर्वने वसन् ॥ १९५ ॥

इस मंत्र के 'अक्षोभ्य' ऋषि हैं, वृहती छन्द है, लज्जाबीज है, शक्ति कूर्च है, कीलक निजबीज है तथा वधूबीज सिद्धि देनेवाला है। इस महामंत्र को वन में फल-मूल के आहार पर रहकर दो लाख मंत्र जप करना चाहिये ॥१९३-१९४॥

नीलपद्मैश्च[1] जुहुयान्मधुरेण त्रयेण च।
आद्यामन्त्रे तद्भेदे च सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥ १९५ ॥

घृत, शक्कर, मधु इन तीनों मधुर द्रव्यों को मिलाकर पद्म-पुष्पों से हवन करना चाहिये। आदि तारामंत्र एवं उसके भेदों द्वारा सब वर्णों में यह विधि विहित है ॥ १९५ ॥

उग्रतारामनौ वत्स ! विधिरेष न संशयः।
लक्षद्वयञ्च तद्भेदे पुरश्चरणकर्मसु ॥ १९६ ॥
नीलवाणी नीलकल्पे मन्त्रभेदसमन्विते।
लक्षद्वयं जपेन्मन्त्रं तदा सिद्धिरनुत्तमा ॥ १९७ ॥

हे वत्स ! उग्रतारा मंत्र में यह विधि जानना, इसमें सन्देह नहीं है। पुरश्चरण कर्मों में दो लक्ष जप का विधान हैं। साथही नीलसरस्वती कल्प में मंत्र-भेद बताये गये हैं। उनमे नीलसरस्वती मंत्र का जप दो लक्ष करने का विघान है। उस समय सब प्रकार की सिद्धियाँ मिलती हैं ॥ १९६-१९७ ॥

सर्वतारासु विद्यासु पुरश्चरणकर्मसु।
जुहुयान्नीलपद्मैश्च बिल्वपत्रैरभावतः ॥ १९८ ॥

सब तारा मंत्रों के पुरश्चरण कर्मो में नीलपद्म द्वारा हवन करना चाहिये। उसके अभाव में बिल्वपत्र से ही होम का विधान है ॥ १९८ ॥

ऋषिश्छन्दस्तथा बीजं शक्तिं कीलकमेव च।
सर्वत्रैव पृथक् विद्धि नाममन्त्रविभेदतः ॥ १९९ ॥

तारा के नील मंत्रों के भेद से सर्वत्र ऋषि, छन्द, बीज, शक्ति एवं कीलक पृथक्-पृथक् जानना चाहिये ॥ १९९ ॥

जपमन्त्रे च तारायाः साधने शक्तिजं कुलम्।
वीरभावरहस्योक्तं त्यक्त्वा साकारमाप्नुयात् ॥ २०० ॥

तारा के जप-मंत्र में, साधन में शक्तिजन्य कुलक—जो 'वीरभाव रहस्य' में कहा गया है—उसका परित्याग करने से साक्षात् देवी का दर्शन प्राप्त होता है ॥ २०० ॥

एतासां निगमागमप्रचलितं संगृह्य शैवं मतम्
तारायाः परिपूजनं जपविधिं बीजं तथा तर्पणम्।

---

१. १९४-१९५ श्लोकयोर्मध्ये प्रक्षिप्तोऽयं श्लोको दृश्यते प्रकाशित-पुस्तकेषु। न तत्सत् ताम्बूलपूर्णास्यविलासत्वात् तथाहि—
नक्तं ताम्बूलपूर्णास्यः शक्तिसङ्गकुले रतः।
तत्र शिवेन ब्रह्मानन्दरतं प्रकल्पतम् ॥

ग्रन्थेऽस्मिन् विनिवेशितं खलु मया संस्मृत्य तारावचः
अत्रास्ते कमला कृताञ्जलिपरा वीणाधरा [1]सारदा ॥२०१॥

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्य्यब्रह्मानन्दगिरितीर्थावधूत-
विरचिते ताराहस्ये सर्वरहस्योत्तमे हरगौरी-संवादे
प्रथमः पटलः समाप्तः ॥ १ ॥

श्रीमत्परमहंस ब्रह्मानन्दगिरि कहते हैं कि उपर्युक्त सभी देवियों के सम्बन्ध में—जो वेद-शास्त्र-पुराण में प्रचलित शैव मंत्र हैं, उनका संग्रह करके विशेषकर श्रीतारादेवी के जप-पूजन का विधान, बीज एवं तर्पण तारादेवी के वचनानुसार ही इस ग्रन्थ में निवेशित करने का प्रयत्न मैंने किया है। इस पटल में वरदायिनी कमला तथा वीणाधारण करनेवाली शारदा भगवती का वर्णन है ॥ २०१ ॥

श्रीद्विजेन्द्र कविकृत 'विद्या' व्याख्या-विभूषित ताराहस्य का कुल्लुका-वर्णन
नामक सप्तम प्रकरण समाप्त ॥ ७ ॥

इति प्रथमः पटलः ।

—:०:—

---

१. प्रकाशित पुस्तकों में सर्वत्र "सारदा" पाठ है—जिसका अर्थ हैं सारं ददातीति 'सारदा' परन्तु लोक में "बुद्धिप्रदा शारदा" का ही प्रयोग प्रशस्त है। अतएव 'शारदा' इति साधु पाठः।

द्वितीयः पटलः

१—अथ तारादीक्षा-प्रकरणम्

तत्र तारानिगमादौ कामाख्यामूले च—

'तारा निगमादि तथा कामाख्यामूल' में लिखा है—

कालीतारामन्त्रदाने चक्रचिन्तां करोति यः।
आयुर्विद्यामोक्षबाधः शूली विष्ठाकृमिर्भवेत् ॥ १ ॥

जो व्यक्ति काली, तारा के मंत्र प्रदान में चक्र[1]-चिन्ता करता है, उसकी आयु, विद्या (बुद्धि या मंत्र) एवं मोक्ष में बाधा (हानि) होती है और वह महा कष्ट पाता तथा विष्ठा का कीड़ा बनता है ॥ १ ।

यदि भाग्यवशान्नाथ ! ताराविद्या प्रलभ्यते ।
इच्छासिद्धिर्भवेत्तस्य किं मोक्षश्चाष्टसिद्धये ॥ २ ॥

भैरवी भैरव से कहती हैं—हे नाथ ! यदि सौभाग्य से तारा विद्या (तारा-मंत्र) कहीं प्राप्त हो जाय तो उसे इच्छा-सिद्धि प्राप्त होती है, तब फिर अष्ट सिद्धियों एवं मोक्ष की भी क्या कथा है ? वह तो "यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम्" के अनुसार सर्वशक्ति-सम्पन्न हो जाता है ॥ २ ॥

यदि मन्त्रे गुरुः साक्षात् सर्वतन्त्रे स्वयं हरः।
न दद्यात् तारकां विद्यां दातुं नैव वदेत् क्वचित् ॥ ३ ॥

यदि मंत्र-शास्त्र में साक्षात् गुरुदेव एवं तंत्र-शास्त्र में स्वयं शिव प्रभु को जो न मानता हो, उसे यह तारा मंत्र न देना चाहिये । यहाँ तक कि ऐसे लोगों को देने का वचन भी नहीं देवे ॥ ३ ॥

यदि भाग्यवशाद्वत्स ! कोटिजन्मतपोबलात् ।
लभेत तारकां विद्यां स भवेत् कल्पपादपः ॥ ४ ॥

हे वत्स ! दैवात् करोड़ों जन्म के तपोबल से तारा-मन्त्र प्राप्त हो जाय, तो वह पुरुष कल्पवृक्ष के समान सफल हो जाता है ॥ ४ ॥

---

१. 'चक्र-चिन्ता से' यहाँ तात्पर्य है—वाममार्गानुसार 'शक्ति-चक्र' (पंच-मकार का सेवन करते हुए) वेदविरुद्ध निषिद्ध तंत्रानुयायी बनना ।

गोपनीयो गोपनीयस्तारामन्त्रः सदाशिव ! ।
यन्त्रं मन्त्रञ्च पटलं स्तोत्रं कवचमेव च ॥ ५ ॥
रहस्यं गुह्यषोढाञ्च तारानिगममेव च ।
गोपनीयं प्रयत्नेन तारां नैव प्रकाशयेत् ॥ ६ ॥

हे सदाशिव ! तारा मंत्र अत्यन्त गोपनीय एवं रक्षणीय है। साथ ही तारा-यंत्र, पटल, तारास्तोत्र कवच एवं तारारहस्य—ये 'गुप्तषष्ठक[1]' कहे जाते हैं। इसलिये यह तारामंत्र यत्नपूर्वक रक्षणीय है, उसे सर्वत्र नहीं प्रकाशित करना चाहिये ॥ ५-६ ॥

कुलकर्मरतो यस्तु सत्त्वभावविवर्जितः ।
मन्त्रे तन्त्रे गुरौ विप्रे लतायां वीरभावतः ॥ ७ ॥
एतादृशाय कौलाय शठाय न कदाचन ।
यो ददाति वरं तस्मै दातारञ्च शिवाज्ञया ॥ ८ ॥
अर्थलोभी कामलोभी कर्मलोभी नरः क्वचित् ।
ददाति यदि देवेशि ! निरये पतति ध्रुवम् ॥ ९ ॥

जो साधक कुल-कर्म-निरत रहता है और जो सत्त्वगुण के भाव से रहित है, अथवा जो मंत्र, तंत्र, गुरु, ब्राह्मण एवं लता में वीर भाव से वाममार्गी है, ऐसे शठ कौलों के लिये यह तारामंत्र कदापि न देवे। यदि कोई ऐसे लोगों के लिये यह श्रेष्ठ मंत्र प्रदान करता है, तो शिव प्रभु के आदेशानुसार हे देवेशि ! वह पुरुष अवश्यमेव नरक में जाता है ॥ ७—९ ॥

शिवहा त्रिषु लोकेषु शक्तिहा ब्रह्महा भवेत् ।
स एव भ्रष्टः कौलेषु कोऽन्यो भ्रष्टो महीतले ॥ १० ॥

वह पुरुष तीनों लोक में शिवहा[2], शक्तिहा तथा ब्रह्महा (ब्रह्मघाती) होता है कौलों में वही पुरुष भ्रष्ट कहलाता है, भूतल में अन्य कोई भ्रष्ट नहीं है। अर्थात् उसके समान अन्य कोई पातकी नहीं है ॥ १० ॥

कुलीनाय महेच्छाय श्रद्धाभक्तिपराय च ।
कौलसेवायुतायापि शक्तिसेवारताय च ॥ ११ ॥
ताराभक्ताय शिष्टाय सदानन्दाय शूलधृक् !
एतेभ्यश्च प्रदातव्यं ह्यन्यथा मृत्युमाप्नुयात् ॥ १२ ॥

हे शूलपाणि शिव ! कुलीन, महती इच्छावाले श्रद्धाभक्ति युक्त, कौल-सेवक, शक्ति के उपासक सदैव प्रसन्नचित्त, शिष्ट, ताराभक्त साधक के लिये ही

---

१. ये छहो 'गुह्यषोढा' कहलाती है।
२. शिवद्रोही एवं ब्रह्मद्वेषी से तात्पर्य है।

वह मंत्र देना चाहिये, अन्यथा देनेवाला मृत्यु (नरक) फल प्राप्त करता है ॥ ११-१२ ॥

सद्गुरुं लक्षणाक्रान्तं स्वयं लक्षणसंयुतः ।
प्राप्य दीक्षा प्रकर्त्तव्या ह्यन्यथा निष्फला क्रिया ॥ १३ ॥

स्वयं शिष्य-लक्षण[1] से युक्त होकर लक्षणवान् सद्गुरु को पाकर दीक्षित[2] होवे, तत्पश्चात् मंत्र-सिद्धि करे, अन्यथा सब क्रिया निष्फल हो जाती है ॥ १३ ॥

विल्वमूले श्मशाने वा पर्वते वा नदीतटे ।
गुरुगेहे महापीठे सिद्धिपीठे शिवालये ॥ १४ ॥
एकलिङ्गे तडागे वा वृपशून्यशिवालये ।
दीक्षां कुर्य्यात् सदा मन्त्री जपञ्चापि समाचरेत् ॥ १५ ॥

विल्ववृक्ष के नीचे, श्मशान में, पर्वत या नदी तट पर, गुरु के घर अथवा किसी सिद्धि स्थान में, महापीठ किंवा शिवालय में अथवा एकलिङ्ग[3], तालाव, वृषभ-हीन शिवालय में दीक्षा लेनी चाहिये। इस प्रकार मंत्री (मन्त्रग्रहण करने वाला) साधक (शिष्य) उन्हीं स्थानों में जप भी करे ॥ १४-१५ ॥

पञ्चक्रोशान्तरे यत्र न लिङ्गान्तरमीक्षते ।
तच्चैकलिङ्गमाख्यातं मन्त्रसिद्धिप्रदायकम् ॥ १६ ॥

पाँच कोश के भीतर जहाँ कोई दूसरा लिङ्ग न दीख पड़े (दूसरा शिवाला १० मील के भीतर न हो) तो मंत्र-सिद्धि को देने वाला वह स्थान 'एकलिङ्ग' नाम से कहा जाता है ॥ १६ ॥

यदि भाग्यवशाद्देवि ! गङ्गातीरं प्रलभ्यते ।
तत्र चेत् क्रियते दीक्षा कोटि-कोटि गुणायते ॥ १७ ॥

हे देवि ! यदि कहीं सौभाग्यवश गङ्गा-तट मिल जाय, तो क्या कहना ? वहाँ यदि दीक्षा-कर्म किया जाय, तो कोटिगुणा[4] फल होता है ॥ १७ ॥

(निषिद्धदीक्षा)

यतेर्दीक्षां पितुर्दीक्षां दीक्षां मातामहस्य च ।
सोदरस्य कनिष्ठस्य वैरिपक्षाश्रितस्य च ॥ १८ ॥

---

१. लक्षण प्रथम पटल में कहा गया है ।

२. 'अदीक्षितो न स्थातव्यः' इत्युक्तेः ।

३. "पञ्चक्रोशान्तरे यत्र न लिङ्गान्तरमीक्षते ।
तच्चैकलिङ्गव्याख्यातं मन्त्रसिद्धिप्रदायकम् ॥"

४ 'कोटि-कोटिर्गुणायते' इति पाठः प्रकारवाचकत्वात् (नाना प्रकार के गुण वाला हो जाता है ।)

विविक्ताश्रमिणो दीक्षां न गृह्णीयात् कदाचन।
न पत्नीं दीक्षयेद्भर्त्ता न पिता दीक्षयेत् सुताम् ॥ १९ ॥
न पुत्रञ्च तथा ज्येष्ठः कनिष्ठं न च दीक्षयेत् ॥ २० ॥

संन्यासी से, पिता से, मातामह (नाना) से सहोदर लघु भ्राता से, शत्रु पक्ष के व्यक्ति विशेष से, त्यागी (वैरागी) से कभी भी दीक्षा न लेवे। इसी प्रकार पति पत्नी को तथा पिता पुत्री को और पुत्र को एवं ज्येष्ठ भ्राता कनिष्ठ भ्राता को मंत्र-दीक्षा न देवे ॥ १८–२० ॥

दीक्षातृतीयदिवसे कृत्वा क्षौरादिकं शुभम्।
हविष्यं तद्दिने कार्य्यमुपवासं परेऽहनि।
गुरोराज्ञां समादाय पुष्पादि स्वयमाहरेत् ॥ २१ ॥
पञ्च घटांश्च संस्थाप्य तत्र देवान् प्रपूजयेत्।
प्रथमे गणनाथञ्च द्वितीये च सदाशिवम् ॥ २२ ॥
तृतीये सुन्दरीं देवीं चतुर्थे परदेवताम्।
पञ्चमे सर्वदेवांश्च सर्वजिद्गुरुसत्तमः ॥ २३ ॥

दीक्षाग्रहण के तीन दिन पूर्व शुभ और कर्म करके उस दिन खीर भोजन करे। दूसरे दिन उपवास रहे। तब फिर गुरु से आज्ञा लेकर पुष्पादि स्वयं ले आवे। साथ ही पाँच कलशों की स्थापना करके गणेशादि देवताओं का पूजनों करे। प्रथम घट में गणेश की, द्वितीय में सदाशिव प्रभु की, तृतीय घट में 'सुन्दरी' देवी तथा चतुर्थ घट में 'पर देवता' एवं पंचम घट में सभी देवताओं का पूजन करे। उनमें सर्वश्रेष्ठ गुरुदेव का भी पूजन करना चाहिये ॥२१-२३॥

स्वस्ति वाच्यं ततः कुर्य्यात् सङ्कल्पं विधिपूर्वकम्।
मुक्ता-माणिक्य-वैदूर्य्य-गोमेदान् वज्रविद्रुमौ ॥ २४ ॥
नीलं मरकतं पद्मरागं पञ्चघटे न्यसेत्।
ततो मूलं सहस्रञ्च प्रजपेत् सद्गुरुः स्वयम् ॥ २५ ॥

[1]स्वस्तिवाचनपूर्वक विधिवत् संकल्प कर लेना चाहिये। उस समय पाँचों कलशों में क्रमशः (१) मुक्ता माणिक्य वैदूर्यमणि, गोमेद, (२) वज्रमूँगा, (३) नीलमणि, (४) मरकत मणि तथा (५) पद्मरागमणि डाल देवे। तत्पश्चात् सद्गुरु को चाहिये कि वे मूल मंत्र अथवा 'सहस्रशीर्षा० मंत्र का पाठ करे ॥ २४–२५ ॥

करन्यासं ततः कृत्वा तत्त्वन्यासं ततः परम्।
पुष्पाद्यलङ्कृतं शिष्यं चन्दनेन प्रलेपयेत् ॥ २६ ॥

---

१. 'स्वस्तिपाठः' से तात्पर्य है।

ततो रत्नादिकुम्भस्थैस्तोयैः शिष्यं प्रसिच्य च।
शिष्यशीर्षे ततो हस्तं दत्त्वा चाष्टोत्तरं शतम् ॥ २७ ॥

इसके वाद करन्यास करके तत्त्वन्यास करे और शिष्य को स्नान, चन्दन-चर्चित एवं पुष्पमालालंकृत करे। तत्पश्चात् रत्नादि-मिश्रित कलशस्थ सलिल से शिष्य को अभिपिंचित करे। इसके वाद शिष्य के सिरपर हाथ रखकर श्रेष्ठ गुरु एक सौ आठ वार[1] मंत्र जप करें ॥ २६-२७ ॥

जपेन्मन्त्रं गुरुश्रेष्ठः कपोले मूलमुच्चरन्।
ऋषिच्छन्दः कीलकञ्च शक्तिबीजमतः परम् ॥ २८ ॥
एकदा दक्षिणे कर्णे गायत्रीञ्च त्रिधा जपेत्।
ततो मन्त्रं प्रवक्तव्यं स्त्रीदीक्षा वामतः सकृत् ॥ २९ ॥

साथ ही शिष्य के कपोल के पास मूल मंत्रोच्चारण करते हुए गुरु ऋषि, छन्द, कीलक, शक्ति तथा बीज का उच्चारण कर, दक्षिण कर्ण में तीन वार गायत्री मंत्र जपे। यदि स्त्री को मंत्र-दीक्षा देनी हो तो वामकर्ण में केवल एक ही वार मंत्रोपदेश करे ॥ २८-२९ ॥

विधिरेष द्विजातीनां स्त्रीशूद्राणाञ्च वामतः।
ततश्च प्रणमेद्देवि ! श्रीगुरुं सर्वलक्षणम् ॥ ३० ॥
स्वयं जप्त्वा ततो मन्त्रं दक्षिणादीन् समाचरेत्।
तारामन्त्रेषु सर्वेषु चैषा दीक्षा प्रकीर्त्तिता ॥ ३१ ॥

हे देवि ! यह विधि द्विजाति के लिये है और शूद्र तथा स्त्री के लिये बायें कान में मंत्रोपदेश करना चाहिये। अन्तमें सर्वलक्षणयुक्त गुरु को प्रणाम करे। यजमान साधक को भी चाहिये कि वह स्वयं गुरुप्रदत्त मंत्र का जप करके यथोचित दक्षिणा प्रदान करे। इस प्रकार सभी ताराभक्तों में यह दीक्षापद्धति कही गयी है ॥ ३०-३१ ॥

श्रीद्विजेन्द्र-कविकृत 'विद्या' व्याख्या-विभूषित तारारहस्य का विद्यानिरूपण नामक षष्ठ प्रकरण समाप्त ॥ ६ ॥

—:०:—

२—अथ शिवलिङ्गार्चनप्रकरणम्

शिवस्य पूजनं कार्य्यं पार्थिवस्य न चान्यथा।
सामान्यार्घ्यं प्रकर्त्तव्यमासनादीन् विशेषतः ॥ ३२ ॥

---

१. यहांपर मंत्र से तात्पर्य शिष्य के लिये देय-मंत्र से है। अथवा मूल मंत्र का उच्चारण करे।

उस समय पार्थिव शिवलिङ्ग की पूजा करनी चाहिये। साधारणतया अर्घ्यदान एवं विशेषतया आसनादि कृत्य भी सम्पादित करे ॥ ३२ ॥

योनिपीठाद्विष्णुपीठं लिङ्गाग्रात्तुल्यमूलकम्।
योन्यधः शेषपर्य्यन्तं त्रिसूत्रीकरणन्त्विदम् ॥ ३३ ॥

उस समय इस प्रकार का त्रिसूत्रीकरण करने का विधान है—(१) योनिपीठ से विष्णुपीठ, (२) लिङ्गाग्र से तुल्य मूलकपर्यन्त तथा (३) योनि के नीचे शेषपर्यन्त तांत्रिक कर्म त्रिसूत्रीकरण कहलाता है ॥ ३३ ॥

न पूजयेत् पार्थिवं यः शिवलिङ्गं सुरेश्वरि!।
नान्यपूजाफलं तस्य चण्डालत्वं प्रजायते ॥ ३४ ॥

हे सुरेश्वरि! जो साधक पार्थिव शिवलिङ्ग की पूजा नहीं करता, उसे पूजा का फल नहीं मिलता; क्योंकि वह चण्डाल के समान दोषभागी होता है ॥ ३४ ॥

देवध्यानं ततः कृत्वा पुष्पं शीर्षे प्रदापयेत्।
प्रणवस्य च पाशस्य कलासंख्यकजापतः ॥ ३५ ॥

साधक को चाहिये कि वह पहले देवता का ध्यान करके सिरपर पुष्प चढ़ावे। तत्पश्चात् प्रणव (ॐ) तथा पाशमंत्र (क्लीं या ह्लीं) का १६ बार जप करे ॥ ३५ ॥

विश्वं देहं शोधयित्वा भूतशुद्धिं[1] समाचरेत्।
स्वनाभौ दक्षिणं पाणिं वामे पाणौ विधाय च ॥ ३६ ॥

---

१. भूतशुद्धिः भैरवतंत्रे यथा—

अङ्के पाणियुगं कृत्वा वियद्बिन्दुयुतो भृगुः।
सर्गवानिति मंत्रेण सतत्त्वं कुण्डलीयुतम् ॥ १ ॥
जीवं-चक्राणि भित्त्वाऽथ शिरस्थकमले शिवे!।
संयोज्य चित्कलां रक्तां नाभौ ध्यायन् पठन् शनैः ॥ २ ॥
वामनासेरितं वायुं ज्वलितेनापि वह्निना।
संशोष्य देहं सन्दह्य स पापं दक्षया ततः ॥ ३ ॥
रेचयेत्तु वधूवीजं पीताभं वायुरूपिणम्।
हृदि ध्यायन् पठन् दक्षनासया पूरिताऽनिलैः ॥ ४ ॥
वामनासापुटेनैव भस्म प्रोत्सारयेद् वहिः।
हूंकारं पूर्णचन्द्राभं ललाटे शशिमण्डले ॥ ५ ॥
भीत्वैतस्य जपादस्मान्निपात्य चामृतं ततः।
तदस्थि प्लावितं कृत्वा देहमुत्पादयेत्ततः ॥ ६ ॥
'सोऽहं' मंत्रेण तत्त्वानि जीवं कुण्डलिनीं क्रमात्।
यथास्थानं समानीय निवर्त्य तारिणीमयम् ॥ ७ ॥

चतुर्विंशतितत्त्वेन साद्धं जीवस्य तोलनम्।
प्रदीपकलिकाकारं सर्वतेजोमयं विभुम् ॥ ३७ ॥

इस प्रकार विश्वरूपी देह को शुद्ध करके भूतशुद्धि करे। सिद्धासन से बैठकर साधक अपनी बायीं हथेली पर दाहिनी हथेली (कर) रखकर चौबीस तत्त्वों के साथ जीव की तुलना करे, तत्पश्चात् दीपक के 'लौ' के समान सर्वतेजोमय (ज्योतिर्मय) विभु (व्यापक ब्रह्म) का ध्यान करे।

प्रविभिद्याखिलं चक्रं परब्रह्मणि योजयेत्।
मूलाधाराग्निशिखया सर्वं देहं विदाहयेत् ॥ ३८ ॥

इसके बाद प्राणक्रिया द्वारा सम्पूर्ण चक्रों (षट्चक्रों) का भेदन करके परब्रह्म परमात्मा में जीव का संयोजन करे अर्थात् 'ईश्वर अंश जीव' को अभेदबुद्धि से एक में विलयन करे। तब मूलाधार से उद्‌वृत अग्नि-शिखा द्वारा सब जड़ शरीर को जला डाले॥ ३८ ॥

सर्वरूपं शरीरञ्च पापेन पुरुषेण च।
दक्षनासापुटं धृत्वा कलासंख्यं जपेच्च यः ॥ ३९ ॥
पूरयित्वा ततो वायुं चतुःषष्टिजपेन च।
कुम्भयेन् परमं वायुं ततो द्वात्रिंशतं जपेत् ॥ ४० ॥
रेचयेद्वामतो वायुं लिङ्गदेहं विनाशयेत्।
वह्निबीजं जपेद्देवि ! पूर्वसंख्यानुसारतः।
सर्वं भस्ममयं ध्यात्वा ततो भस्मविरेचनम् ॥ ४१ ॥

क्योंकि इस पापी पुरुषरूपी जीव ने सर्वरूपमय शरीर को धारण किया है। इसलिये जो पुरुष दक्षिण नासापुट को दबाकर १६ बार मंत्र जप कर, पूरक करता है और ६४ बार जप कर के कुम्भक तथा जो ३२ बार मंत्र पढ़कर 'रेचक' करता है, वह लिङ्गदेहरूपी वायुका विनाश करता है। पुनः हे देवि ! जो पूर्ववत् अग्निबीज 'रं' मंत्र का जप करे तो सब शरीर को भस्मीभूत समझ कर भस्म का ही विरेचन करे—ऐसा ध्यान करना चाहिये॥ ३९-४१ ॥

पृथ्वीबीजं ततो जप्त्वा कलया प्लावयेत्तनुम्।
महाविष्णुः स्वयं साक्षादित्येवं ज्ञानसंकुलः ॥ ४२ ॥

इसके बाद पृथ्वी बीज 'ल' का जप करके शरीर को कलाद्वारा प्लावित करे तो वह ज्ञानी साधक इस प्रकार से साक्षात् विष्णु ही हो जाता है॥ ४२ ॥

वाराहीतन्त्रेऽपि—

मूलाधारोद्‌गतं प्राणं ब्रह्ममार्गेण तान्त्रिकः।
हंसेन पुष्करस्थाने परमात्मनि योजयेत् ॥ ८ ॥

पुनश्च चन्द्रबीजेन चतुःषष्टिजपेन च ।
स्थिरीकृत्य निजं देहं कुम्भयेद्वायुमण्डलम् ॥ ४३ ॥
द्वात्रिंशद्वारुणजपादमृतेन विरेचयेत् ।
साधयेत् परया भक्त्या दिव्यरूपं मनोहरम् ॥ ४४ ॥

फिर चन्द्रबीज 'ठं' द्वारा ६४ बार मंत्र जप करने से अपने शरीर को सुस्थिर करके वायुमण्डल में कुम्भक करे। ३२ बार वरुण मंत्र का जप करने से अमृतत्व को प्राप्त करता है और परम भक्ति से सुन्दर दिव्य रूप धारण करता है ॥ ४३-४४ ॥

भाले चन्द्रञ्च सम्भाव्य विभूतिं परिधारयेत् ।
वामहस्ते समानीय पयश्च शुष्कभस्मकम् ॥ ४५ ॥
यज्ञभस्मसमायोगं वृषभस्मानि कारयेत् ।
प्रजपेत्तत्र मन्त्रञ्च शिवस्यापि षडक्षरम् ॥ ४६ ॥

उस समय साधक अपने भाल में चन्द्राकार विभूति धारण करे। अर्थात् बायें हाथ में जल एवं सूखा भस्म लेकर विभूति धारण करे। साथही वहाँ शिव के 'षडक्षर[1]' मंत्र का जप भी करे ॥ ४५–४६ ॥

शुद्धः पञ्चाक्षरं जप्त्वा प्रिये ! षोडशसंख्यकम् ।
पठेत्तत्र महादेवि ! मन्त्रमेतद्द्वयं पुनः ॥ ४७ ॥

हे प्रिये महादेवि ! शुद्ध पंचाक्षर मंत्र (नमः शिवा ; को १६ बार जप करके इन दोनों मंत्रों को पढ़े। यथा हि— ॥ ४७ ॥

ॐ अग्निरिति भस्म जलमिति भस्म सर्वहरं परम् । भस्म मे चक्षूंषीन्द्रियाणि भस्मानि कुर्यात्, शाम्भवं पशुपाशविमोक्षणाय ।

ॐ भस्मरूपं परब्रह्म परा शक्तिरितीरिता ।
भस्म ज्ञेयं परं ज्ञानं परं तत्त्वस्वरूपकम् ॥ ४८ ॥
परमानन्ददं भस्म ज्ञानकल्पे व्यवस्थितम् ।
विधारयामि तद्भस्म पशुपाशविमुक्तये ॥ ४९ ॥

यहाँ भस्म रूपी 'परब्रह्म' तथा परादेवी ही शक्तिरूप कही गयी है। अर्थात् भस्म ही श्रेष्ठ ज्ञान जानना चाहिये और परब्रह्म तत्त्वरूप है; क्योंकि 'ज्ञानकल्प' नामक ग्रंथ में भस्म को परमानन्ददाता कहा गया है। इसलिये पशुपाश से छुटकारा पाने के लिये उस भस्म को मैं धारण करता हूँ ॥४८–४९॥

ततश्च ब्रह्मणो गद्यं मन्त्रं तस्य षडक्षरम् ।
शुद्धः पञ्चाक्षरं मन्त्रं पठित्वा धारयेत् सदा ॥ ५० ॥

---

1. 'ॐ नमः शिवाय' ।

उसके बाद ब्राह्मण षडक्षर गद्य मंत्र को तथा शूद्र पंचाक्षर मंत्र को पढ़कर सर्वदा भस्म धारण करे ॥ ५० ॥

मृगमुद्रां समासाद्य ललाटे बिभृयाच्छुभम् ।
मूलेन प्रणवेनापि प्राणायामं समाचरेत् ॥ ५१ ॥

'मृगमुद्रा' दिखाकर ललाट में उसे धारण करे। फिर मूलमंत्र किंवा प्रणव मंत्र से ही प्राणायाम करे ॥ ५१ ॥

कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्यन्नासापुटधारणम् ।
प्राणायामः स विज्ञेयः पूरकैः कुम्भरेचकैः ॥ ५२ ॥
कलाचतुष्टयं तस्य द्विगुणेन विरेचयेत् ।
क्रमात् क्रमात् त्रयं कृत्वा मानसेनापि पूजयेत् ॥ ५३ ॥

हे देवि ! कनिष्ठिका, अनामिका एवं अंगूष्ठ द्वारा जो नासिका दबाकर पूरक, कुम्भक और रेचक किया जाता है, उसे "प्राणायाम" जानना चाहिये। उस प्राणायाम क्रिया में १६, चतुष्टय ६४ और द्विगुण ३२ बार मंत्र पढ़कर तथोक्त तीनों काम क्रमशः करना चाहिये। साथ ही उस समय मानसिकरूप से पूजन भी करना चाहिये ॥ ५३ ॥

ज्ञानिनामपि सिद्धिः स्यान्न्यासमेतत् समाचरेत् ।
पशुपतये नमः शीर्षे, मुखे च हरये नमः ॥ ५४ ॥
कण्ठे श्रीनीलकण्ठाय रुद्राय चोरसि न्यसेत् ।
कपाले धूम्रनेत्राय मूले श्रीशम्भवे नमः ॥ ५५ ॥
पादयोर्भैरवायैव शिवाय दक्षबाहुतः ।
कलाय वामबाहौ च पृष्ठे ज्ञानाय एव च ॥ ५६ ॥
क्रोधाय सर्वगात्रेषु विन्यसेच्छिवपूजने ।
षड्दीर्घभाजा बीजेन कुर्य्यादथ षडङ्गकम् ॥ ५७ ॥

इस न्यास के करने से ज्ञानी पुरुषों को भी सिद्धि मिलती है। यथा—

पशुपतये नमः	—	सिर पर हाथ रखे।
हरये नमः	—	मुख पर रखे।
नीलकण्ठाय नमः	—	कण्ठ में रखे।
रुद्राय नमः	—	हृदय में रखे।
धूम्रनेत्राय नमः	—	कपाल में रखे।
श्रीशम्भवे नमः	—	दोंनो कानों में
भैरवाय नमः	—	दोनों पैरों में रखे।

नोट—सद्गुरु द्वारा प्राणायाम की यह विधि पहले समझ लेना चाहिये।

शिवाय नमः	—	दक्षिण बाहु में रखे।
कलाय नमः	—	वाम बाहु में रखे।
ज्ञानाय नमः	—	पीठ पर रखे।
क्रोधाय नमः	—	सब अंगों में रखे।

इस प्रकार शिव-पूजन में न्यास करे तथा षड्दीर्घभाक् बीज द्वारा षडङ्ग-न्यास करे ॥ ५४–५७ ॥

करान्ङ्गञ्च तथा न्यस्य दशदिग्बन्धनञ्चरेत्।
हराय नम उच्चार्य्य मृदञ्चैवाहरेत् शुचिः ॥ ५८ ॥

करन्यास, अंगन्यास करके दशों दिशाओं में दिग्बन्धन करे, तत्पश्चात् 'हराय नमः' कहकर पवित्र मृदाहरण करना चाहिये ॥ ५८ ॥

महेश्वरञ्चतुर्थ्यन्तं नमोऽन्तं गठनञ्चरेत्।
शूलपाणे इहोच्चार्य्य सुप्रतिष्ठो भव स्वयम् ॥ ५९ ॥
प्रतिष्ठाप्य ततः सिद्धे दत्त्वावाह्य प्रपूजयेत्।
पाद्यमर्घ्यञ्च गन्धञ्च पुष्पं धूपञ्च दीपकम्।
नैवेद्यादीनि दत्त्वा च पूजयेत् परमेश्वरम् ॥ ६० ॥

इसके बाद 'महेश्वराय नमः' कहकर गहन (गाँठ बाँधना) कर्म करे और कहे कि—'हे शूलपाणे ! इहागच्छ, स्वयं सुप्रतिष्ठो भव' इस मंत्र से प्रतिष्ठा करके विधिवत् आवाहन-पूजन करे तथा पाद्यार्घ्य देकर पुष्पाक्षत, गन्ध, धूप-दीप एवं नैवेद्यादि देकर परमेश्वर (शिव) की पूजा करनी चाहिये ॥५९–६०॥

मोचाफलं[1] सवृन्तञ्च शिवलिङ्गे ददाति यः।
तस्य पूजां महादेवि ! गृह्णामि प्रयतात्मनः ॥ ६१ ॥

हे महादेवि ! जो मनुष्य शिवलिङ्ग के ऊपर मोचाफल (रम्भाफल) वृन्त सहित चढ़ाता है, उस आत्मजित् पुरुष की पूजा मैं सहर्ष ग्रहण करता हूँ ॥६१॥

तस्य सिद्धिर्भवेद्देवि ! नियता सफला सदा।
पुरःस्थित्वा मूलमन्त्रं जपेद्दशसहस्रकम्[2] ॥ ६२ ॥

हे देवि ! उसी को सिद्धि प्राप्त होती है तथा सर्वदा उसीका कार्य सफल होता है, जो शिवजी के सम्मुख खड़े होकर केवल दस बार मूलमंत्र का जप करता है ॥ ६२ ॥

---

१. 'रम्भामोचांशुमत्फला' इत्यमरः। कदली (केला)।

२. यहाँपर 'दशसहस्रकम्' पद में 'सहस्रकं' शब्द संख्यावाचक है, गणना-वाचक नहीं। संख्यकमित्यर्थः। 'संख्यायां वै सहस्रकम्' इति पुराणोक्तेः।

पशुपतये नम इति लिङ्गं संस्थापयेद् बुधः।
विल्वपत्रस्य माहात्म्यं वक्तुं कः शक्त एव हि ॥
विल्वपत्रैर्विना देवि! लिङ्गपूजा तु निष्फला ॥ ६३ ॥

बुद्धिमान् पुरुष 'पशुपतये नमः' इस गद्य-मंत्र से शिवलिङ्ग की स्थापना करे और विल्वपत्र से पूजन करे। भला विल्वपत्र के माहात्म्य का वर्णन करने में कौन समर्थ है ? क्योकि हे देवि! विल्वपत्र के विना लिङ्गपूजा निष्फल कही गयी है ॥ ६३ ॥

पूजयेत् परया भक्त्या चाष्टमूर्त्तिं शिवस्य च।
आग्नेय्यान्तां प्रपूज्याथ वेद्यां लिङ्गे शिवं यजेत् ॥ ६४ ॥

शिव की अष्टमूर्त्ति की पूजा परम श्रद्धा-भक्ति से करे और आग्नेयान्त वेदी की विशिष्ट पूजा करके लिङ्ग (पार्थिव) में शिव जी की पूजा करनी चाहिये ॥६४॥

लिङ्गवेदी भवेद्देवी लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः।
तयोश्च पूजनात् स्यातां देवीदेवौ सुपूजितौ ॥ ६५ ॥

क्योंकि लिङ्गवेदी ही 'देवी' तथा लिङ्ग ही साक्षात् 'शिव' हैं। अतः उन दोनों की पूजा से देवी और देवता दोनों सुपूजित हो जाते हैं ॥ ६५ ॥

ॐ सर्वाय क्षितिमूर्त्तये नमः, ॐ भवाय जलमूर्त्तये नमः, ॐ रुद्राय अग्निमूर्त्तये नमः, ॐ उग्राय वायुमूर्त्तये नमः, ॐ भीमाय आकाशमूर्त्तये नमः, ॐ पशुपतये यजमानमूर्त्तये नमः, ॐ महादेवाय सोममूर्त्तये नमः, ॐ ईशानाय सूर्य्यमूर्त्तये नमः। इत्यनेनाष्टमूर्त्तीः पूजयेत्।

तथाकथित अष्टमूर्त्ति की पूजा उपर्युक्त गद्यमंत्रों से करे।

पुष्पाञ्जलित्रयं देवि! शङ्कराय निवेदयेत्।
स पूजाफलमाप्नोति नान्यथा लक्षपूजनात् ॥ ६६ ॥

हे देवि! अन्त में भगवान् शिव को तीन बार पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। तभी उसे पूजा का फल प्राप्त होता है, अन्यथा लाखों बार पूजने से कोई फल नहीं होता ॥ ६६ ॥

ततो मूलं प्रजप्तव्यं देवि! चाष्टोत्तरं शतम्।
सजलैर्बिल्वपत्रैश्च जपन् लिङ्गे समर्पयेत् ॥ ६७ ॥
ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव! त्वत्प्रसादान्महेश्वर[1]! ॥ ६८ ॥

हे देवि! इसके बाद मूलमंत्र का १०८ वार जप करना चाहिये। जलाक्षत

१. महेश्वर इत्यत्र 'त्वयि स्थिते' इति क्वचित् पाठो दरीदृश्यते।

एवं बिल्वपत्रों द्वारा शिवलिङ्ग की सपर्या करे। उस समय जप निवेदन करते हुए यह मंत्र पढ़े—'हे भगवन्! आप गुप्त से भी गुप्त बातों को जाननेवाले हैं हमारे किये हुए इस जप को स्वीकार करिये। हे महेश! आपकी कृपा से मेरे कार्यं में सिद्धि हो अथवा मेरा यह मंत्र सिद्ध हो ॥ ६७–६८ ॥

स्तोत्रञ्च लिङ्गार्चनचन्द्रिकादावनुसन्धेयं कवचञ्च। ततो मुखवाद्यादिकञ्चरेत्।

यहाँ पर 'स्तोत्र'-कवचादि 'लिङ्गार्चनचन्द्रिका' आदि ग्रन्थों से जान लेना चाहिये। अन्त में मुख बजाना चाहिये। लिखा भी है—

सम्पूज्य पार्थिवं लिङ्गं मुखवाद्यं[1] चरेत्तु यः।
शिवसायुज्यमाप्नोति तथा करतलध्वनिम् ॥ ६९ ॥

जो साधक पार्थिव लिङ्ग की पूजा करके मुखवाद्य तथा करतल-ध्वनि करता है, वह शिव-सायुज्य मुक्ति पाता है ॥ ६९ ॥

अर्द्धं[2] प्रदिक्षणां कृत्वा प्रणमेत् पार्वतीश्वरम्।
याम्याच्च गच्छेत् कौवेरीं पुनस्तत्रागतिञ्चरेत् ॥ ७० ॥
पृष्ठे हस्तं समादाय मह्यां जानुद्वयं तथा।
शीर्षावनामं दत्त्वा तु चार्द्धचन्द्राकृतिर्भवेत् ॥ ७१ ॥

जो शिव की आधी प्रदक्षिणा करके भवानीपति शंकर को प्रणाम करता है और दक्षिण से उत्तर तथा उत्तर से दक्षिण की ओर गति करता है। साथ ही पीठपर हाथ रखकर शीर्षासन करता है तथा उस आसन द्वारा चन्द्रार्द्ध-आकृति बनाकर प्रतिदिन अभ्यास करता है, वह सिद्ध एवं स्वस्थ रहता है ॥७०–७१॥

यो दद्यात् संविदापात्रं शङ्कराय महेश्वरि!।
अश्वमेधकृतं पुण्यं पात्रेणैकेन जायते ॥ ७२ ॥

हे महेश्वरि! जो भक्त शिवजी के लिये 'संविदापात्र' प्रदान करता है, वह केवल तथोक्त एक पात्र के दान से ही अश्वमेध यज्ञ करने का पुण्य-फल प्राप्त कर पाता है ॥ ७२ ॥

द्वादश्यां शाङ्करं देवि! लिङ्गं दृष्ट्वा तु पार्थिवम्।
संविदापात्रमादाय सर्वं दद्यात् कृताञ्जलिः ॥ ७३ ॥

हे देवि! जो शिवलिङ्ग का दर्शन कर, द्वादशी तिथि को संविदापात्र लेकर हाथ जोड़कर दान देता है, उसे भी वही पुण्य मिलता है ॥ ७३ ॥

---

१. दाहिने हाथ की मध्यमा, अनामिका एवं अंगूठे के सहारे अपना गाल (कपोल) बजाना चाहिये अथवा 'वं-वं-महादेव' बोलना चाहिये।

२. 'शिवस्यार्द्धप्रदक्षिणा' इत्युक्तेः।

नार्चयेच्छङ्करस्यापि लिङ्गं यस्तु नरः क्वचित् ।
न विष्णुभक्तः शाक्तो वा न शैवः स नराधमः ॥ ७४ ॥

जो मनुष्य कहीं शिवलिङ्ग की पूजा-अर्चा नहीं करता, वह नराधम न विष्णुभक्त है, न शाक्त है, न शैव ही है ॥ ७४ ॥

नृत्यगीतवाद्यनामोच्चारणेन शिवं सन्तोष्य संहारमुद्रया क्षमस्वेति विसृज्य स्थानं संस्कुर्य्यात् ।

शिव-पूजन के बाद नृत्य-गीत-वाद्यपूर्वक नामोच्चारण करके शिव को सन्तुष्ट करके संहारमुद्रा दिखाकर क्षमायाचना करे तथा उनका विसर्जन करके अपने स्थान का संस्कार (पवित्रीकरण) करना चाहिये ।

हरस्य पार्थिवं लिङ्गं पूजयित्वा नरो यदि ।
जले संस्थापयेद्देवि ! स दरिद्रो भवेद् ध्रुवम् ॥ ७५ ॥

हे देवि ! यदि कोई मनुष्य शिव के पार्थिव लिङ्ग की पूजा करके उसे जल में छोड़ दे, तो वह निश्चय ही दरिद्र होता है ॥ ७५ ॥

पूजयित्वा तु यो लिङ्गं पार्वतीप्रियमुत्तमम् ।
स्थापयेद्भुवि रौद्रे च दन्दशूकं प्रयाति सः ॥ ७६ ॥
शिवलिङ्गं पूजयित्वा भूमौ संप्रापयेत् किल ।
अथवा स्थापयेत्तोये दन्दशूकं व्रजेन्नरः ॥ ७७ ॥

अथवा जो पुरुष पार्वती को प्रिय एवं उत्तम शिवलिङ्ग की पूजा करके पृथ्वी पर रख देवे, तो वह भयंकर नरक मे 'दन्दशूक' होता है। अथवा जो शिवलिङ्ग की पूजा करके उसे भूमि पर पटकता है, किंवा जल में रख देता है, वह भी दन्दशूक नरक में जाता है ॥ ७६-७७ ॥

यत्र यत्र नरकश्रुतिस्तत् सुधीभिर्न कार्य्यम् । दरिद्राभिभवञ्च न कार्य्यम् । किन्तु महालिङ्गेश्वरतन्त्रे उभयत्र दोषश्रवणात् ! 'दन्दशूकं व्रजेन्नरः' इति श्रवणाच्च । भूमौ प्रापणमेव कार्य्यं तदभावे जले वा क्षिपेत् । शम्भुं भागीरथीजलं विना न जले कूपोदके पूजयेत् ।

जहाँ-जहाँ नरक-यातना की बात कही गई है, वहाँ-वहाँ विद्वान् पुरुषों को वह कार्य नहीं करना चाहिये । दरिद्रों को भी दबाना न चाहिये; क्योंकि 'महालिङ्गेश्वर तंत्र' में उन दोनों के विषय में दोष सुना जाता है । "दन्दशूकं व्रजेन्नरः" यह प्रमाण है । भूमि पर धीरे से रखने का विधान है, उसके अभाव में जल में छोड़े । शिव की पूजा गंगाजल से करे, कूपोदक से न करे ।

न जले पूजयेच्छम्भुं भागीरथीजलं विना ॥ इति यामले ।

त्रिपुरानन्देनमद्गुरुणा व्याख्यातम् । पूजने गङ्गाजले बिल्वपत्रादिभिर्विनापि न च सामान्यजले । जले सामान्यजले न स्थापयेत् ।

३—अथान्तर्याग-प्रकरणम्

तत्रादौ शक्तिसारे—

प्रातःकृत्यं चरेदादौ प्रातःसन्ध्यां ततः परम्।
ततः स्नानं विधायाथ सन्ध्यां माध्याह्निकीं तथा ॥ ८१ ॥
शिवपूजां ततः कुर्य्यात् तथान्तर्यजनं शिव!।
ततः पूजा विधातव्या ततो होमं समाचरेत् ॥ ८२ ॥

सर्वप्रथम प्रातःकालीन कृत्य करके प्रातः सन्ध्या करे। तत्पश्चात् पुनः मध्याह्नकाल में स्नान करके माध्याह्निकी सन्ध्या करे। इसके बाद शिवपूजा करे। तब हे शिव! अन्तर्यजन का कार्य आरम्भ करे। पुनः शिवपूजा विधिवत् करके हवन कर्म करना चाहिये ॥ ८१-८२ ॥

बलिं दद्यात्ततो देव्यै होमं कुर्य्याच्चतः परम्।
भोगं दत्त्वा महादेव्यै सायंसन्ध्यां समाचरेत् ॥ ८३ ॥

बलिदान करके देवी का हवन करे, तत्पश्चात् महादेवी को भोग लगाकर भोजन करे। इसके बाद पुनः सायंकालीन सन्ध्या का आचरण करे ॥ ८३ ॥

ततो योगो विधातव्यस्ततः साधनमुत्तमम्।
एवं प्रकारमासाद्य तारकां साधयेद् यदि।
तदा सिद्धिमवाप्नोति नान्यथा कल्पकोटिभिः ॥ ८४ ॥

इसके बाद योग-कर्म का विधान रात में करना चाहिये। यह उत्तरोत्तर उत्तम साधन साधकों के लिये कहा गया है। इस प्रकार क्रिया करके यदि 'तारा' देवी का समाराधन किया जाय तो अवश्यमेव सिद्धि प्राप्त हो, अन्यथा अनेक कल्पों तक करते रहे, कोई फल नहीं होगा ॥ ८४ ॥

स्तवञ्च कवचञ्चापि सहस्राख्यं पठेत्ततः।
प्रपठेत् साधकश्रेष्ठस्त्रिसन्ध्यं कार्य्यसिद्धये ॥ ८५ ॥

उस समय स्तुति पाठ, कवच तथा सहस्रनाम का पाठ करे। उत्तम साधक कार्य-सिद्धि के निमित्त तथोक्त त्रैकालिक सन्ध्या करे ॥ ८५ ॥

एतेन शिवपूजान्तर्यजनस्य कर्त्तव्यत्वं, तदेव लिख्यते तारासारे निगमे च—

इससे शिव-पूजा एवं अन्तर्यजन का कर्तव्य लिखा जाता है। देखिये 'तारा-सार' और 'तारा-निगम' में—

न पूजाफलमाप्नोति विनान्तर्यजनं शिव!।
तस्मादर्च्चनतः पूर्वमन्तर्यागं[1] समाचरेत् ॥ ८६ ॥

---

१. 'अन्तर्याग' से तात्पर्य आध्यात्मिक 'ध्यानयोग' से है।

मुद्रादर्शनादिभिर्न पूजयेदित्यर्थः । तथा तारानिगमे महालिङ्गेश्वर-तन्त्रे च[१] ।

रुद्रयामलतंत्र में लिखा है—गंगाजल के बिना किसी दूसरे (कूपादि) जल से शिव की पूजा न करनी चाहिये । उस प्रसंग की व्याख्या करते समय मेरे गुरुवर श्री 'त्रिपुरानन्द' ने कहा है कि—गंगाजल से पूजने पर भी विल्वपत्र आवश्यक है, उसके बिना वह अधूरा है, तब साधारण जल की बात ही क्या है । साधारण जल में पार्थिव लिङ्ग न सेरावे (छोड़े । तथा मुद्रादर्शन द्वारा भी शिवपूजा न करे । क्योंकि 'तारानिगम' तथा 'महालिंगेश्वर तंत्र में भी लिखा है । यथा—

पार्थिवं नार्चयित्वा तु कालीं ताराञ्च सुन्दरीम् ।
अर्चयेद् यस्त्रिलोकस्थः स गच्छेद् यमयातनाम् ॥ ७८ ॥

पार्थिवलिङ्गार्चन किये बिना जो काली, तारा एवं त्रिपुरासुन्दरी की पूजा करता है, वह चाहे किसी लोक (त्रिलोक) में रहता हो, पर यम-यातना का अवश्य भागी होता है ॥ ७८ ॥

एतेनादौ महाविद्यां पूजयित्वा शिवपूजां वदन्ति, तत्र लिङ्गार्चनचन्द्रिकायाम् ।

इस कारण पहले महाविद्या की पूजा करके शिवपूजा करने को पूर्वाचार्य कहते हैं । देखिये वहाँ 'लिंगार्चन-चन्द्रिका' में लिखा है ।

महाविद्यां पूजयित्वा शिवपूजां समाचरेत् ।
अन्यथा करणाद्देवि ! न पूजाफलमाप्नुयात् ॥ ७९ ॥

महाविद्या की पूजा करके शिव-पूजा करनी चाहिये, अन्यथा हे देवि ! उलटा करने से पूजा का फल नहीं मिलता ॥ ७९ ॥

इति महाविद्यानां प्रशंसार्थं शिववाक्यम् । तथा च त्रिपुराकल्पे—

यहांपर महाविद्या की प्रशंसामें शिव-वाक्य देखिये । 'त्रिपुराकल्प' में यथा—

यावन्न पूजयेल्लिङ्गं पार्थिवं साधकाधमः ।
तस्य पूजां न गृह्णाति सुन्दरी तारकासिता ॥ ८० ॥

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्य्यब्रह्मानन्दगिरितीर्थावधूत-
विरचिते ताराहस्ये शिवलिङ्गपूजनम्
द्वितीयः पटलः समाप्तः ॥ २ ॥

वह अधम साधक है, जो पार्थिव लिंग की पूजा किये बिना अन्य पूजा करता है । ऐसे साधक की पूजा तारासुन्दरी देवी कभी नहीं ग्रहण करती ॥ ८० ॥

श्रीद्विजेन्द्र-कविकृत 'विद्या' व्याख्या-विभूषित ताराहस्य का लिङ्गार्चन-वर्णन नामक द्वितीय प्रकरण समाप्त ॥ २ ॥

१. कई स्थानों पर मतभेद एवं विरुद्ध वचनों का संग्रह मुझे खटक रहा है । तंत्रमर्मज्ञ मनीषीजनों को उसपर विचार करना चाहिये ।

३—अथान्तर्याग-प्रकरणम्

तत्रादौ शक्तिसारे—

प्रातःकृत्यं चरेदादौ प्रातःसन्ध्यां ततः परम् ।
ततः स्नानं विधायाथ सन्ध्यां माध्याह्निकीं तथा ॥ ८१ ॥
शिवपूजां ततः कुर्य्यात् तथान्तर्यजनं शिव ! ।
ततः पूजा विधातव्या ततो होमं समाचरेत् ॥ ८२ ॥

सर्वप्रथम प्रातःकालीन कृत्य करके प्रातः सन्ध्या करे। तत्पश्चात् पुनः मध्याह्नकाल में स्नान करके माध्याह्निकी सन्ध्या करे। इसके बाद शिवपूजा करे। तब हे शिव ! अन्तर्यजन का कार्य आरम्भ करे। पुनः शिवपूजा विधिवत् करके हवन कर्म करना चाहिये ॥ ८१-८२ ॥

बलिं दद्यात्ततो देव्यै होमं कुर्य्यात्ततः परम् ।
भोगं दत्त्वा महादेव्यै सायंसन्ध्यां समाचरेत् ॥ ८३ ॥

बलिदान करके देवी का हवन करे, तत्पश्चात् महादेवी को भोग लगाकर भोजन करे। इसके बाद पुनः सायंकालीन सन्ध्या का आचरण करे ॥ ८३ ॥

ततो योगो विधातव्यस्ततः साधनमुत्तमम् ।
एवं प्रकारमासाद्य तारकां साधयेद् यदि ।
तदा सिद्धिमवाप्नोति नान्यथा कल्पकोटिभिः ॥ ८४ ॥

इसके बाद योग-कर्म का विधान रात में करना चाहिये। यह उत्तरोत्तर उत्तम साधन साधकों के लिये कहा गया है। इस प्रकार क्रिया करके यदि 'तारा' देवी का समाराधन किया जाय तो अवश्यमेव सिद्धि प्राप्त हो, अन्यथा अनेक कल्पों तक करते रहे, कोई फल नहीं होगा ॥ ८४ ॥

स्तवञ्च कवचञ्चापि सहस्राख्यं पठेत्ततः ।
प्रपठेत् साधकश्रेष्ठस्त्रिसन्ध्यं कार्य्यसिद्धये ॥ ८५ ॥

उस समय स्तुति पाठ, कवच तथा सहस्रनाम का पाठ करे। उत्तम साधक कार्य-सिद्धि के निमित्त तथोक्त त्रैकालिक सन्ध्या करे ॥ ८५ ॥

एतेन शिवपूजान्तर्यजनस्य कर्त्तव्यत्वं, तदेव लिख्यते तारासारे निगमे च—

इससे शिव-पूजा एवं अन्तर्यजन का कर्तव्य लिखा जाता है। देखिये 'तारा-सार' और 'तारा-निगम' में—

न पूजाफलमाप्नोति विनान्तर्यजनं शिव ! ।
तस्मादर्चनतः पूर्वमन्तर्यागं[1] समाचरेत् ॥ ८६ ॥

---

१. 'अन्तर्याग' से तात्पर्य आध्यात्मिक 'ध्यानयोग' से है।

हे शिव ! अन्तर्यजन के बिना पूजा का कोई महत्त्व नहीं है। इसलिये पूजन के पूर्व ही 'अन्तर्याग' करना चाहिये ॥ ८६ ॥

तथा चैकजटापक्षे—

स्वकीयहृदये ध्यायेत् सुधासागरमुत्तमम् ।
रत्नद्वीपञ्च तन्मध्ये सुवर्णबालुकामयम् ॥ ८७ ॥

पारिजातवनं तत्र रत्नानाञ्चापि मन्दिरम् ।
श्मशानं तत्र संचिन्त्य तत्र कल्पद्रुमं स्मरेत् ॥ ८८ ॥

अन्तर्याग का विधान 'एकजटापक्ष' नामक ग्रंथ में इस प्रकार हैं यथा—

साधक को चाहिये कि वह प्रातःकाल उठकर अपने हृदय में एक उत्तम 'सुधासागर' का ध्यान करे। उसके मध्य में सुवर्णबालुकामय "रत्नद्वीप" की परिकल्पना करे। उस द्वीप में पारिजातवन (कल्पवृक्षारण्य) और उसमें भी रत्नजटित दिव्य मन्दिर देखे। वहींपर महाश्मशान एवं एक सुन्दर दिव्य "कल्पवृक्ष" का स्मरण करे ॥ ८७-८८ ॥

तन्मध्ये मणिपीठञ्च नानामणिविभूषितम् ।
चतुर्दिक्षु शवैर्मुण्डैश्चिताङ्गारास्थिभूषितम् ॥ ८९ ॥
विभाव्य यत्नतो मन्त्री तत्त्वदीपे वसेत् स्वयम् ।
ब्रह्मरन्ध्रे सदा ध्यायेन्महादेवं जगद्गुरुम् ॥ ९० ॥

उस श्मशान को चारों दिशाओं में शव एवं नरमुण्डों से घिरा हुआ तथा चिताग्नि और हड्डियों से विभूषित देखे (उस तत्त्वद्वीप में मंत्रज्ञ साधक को यत्नपूर्वक स्वयं बसना तथा अनुभव करना चाहिये। साथही ब्रह्मरन्ध्र में जगद्गुरु सदाशिव प्रभु का सर्वदा ध्यान करे ॥ ८९-९० ॥

तस्य वामस्थितां देवीं तारां तारस्वरूपिणीम् ।
विभाव्य प्रणमेद्विद्यां प्रातः कृतिरितीरिता ॥ ९१ ॥

उस शिव के वाम भाग में स्थित ॐकाररूपिणी तारा देवी का अनुभव करके उसे प्रणाम करे—यह प्रातःकालीन कृत्य कहा गया है ॥ ९१ ॥

ब्रह्मरन्ध्रे विन्दुरूपं पुष्करं तीर्थमुत्तमम् ।
प्रकुर्य्यात् साधकस्तत्र स्नानं सर्वमलापहम् ॥ ९२ ॥

साधक को चाहिये कि वह अपने ब्रह्मरन्ध्र (सहस्रार चक्र) में विन्दुरूप

'पुष्कर' को उत्तम तीर्थ जानकर सब प्रकार की मलिनता को स्वच्छ करनेवाला अपूर्व स्नान करे ॥ ९२ ॥

वधूबीजस्वरूपे च शिवतीर्थं हृदि न्यसेत् ।
मध्ये सुषुम्नानाड्यां[1] तु स्नायात् साधकसत्तमः ॥ ९३ ॥

वधूबीज 'स्त्री' रूपी हृदय में शिवतीर्थ का न्यास करे । तत्पश्चात् सुषुम्ना (म्णा) नाड़ी के मध्य में उत्तम साधक प्रतिदिन स्नान करे ॥ ९३ ॥

(इति स्नानम् ।)

स्वकीयहृदये ध्यायेत् सिंहासनमनन्यधीः ।
तत्र सम्भाव्यते शय्या ज्ञानानन्दस्वरूपिणी ॥ ९४ ॥
शिवं तत्र विभाव्याथ सर्वालङ्कारभूषितम् ।
दिगम्बरं महाकायमुन्मत्तं कामभावतः ॥ ९५ ॥
शय्यायामूर्ध्वलिङ्गञ्च भावयेत् साधकाग्रणीः ।
भावयेच्च ततो देवीममृतानन्दरूपिणीम् ॥ ९६ ॥

तत्पश्चात् अपने हृदय में ही अनन्य बुद्धि द्वारा सिंहासन का ध्यान करे । उसपर ज्ञानानन्दरूपी सुन्दर शय्या का अनुभव करे । वहींपर शिवजी को सब प्रकार के भूषणों से विभूषित विराजते हुए देखे । उसी शय्यापर महाकाय दिगम्बर कामभाव से उन्मत्त शिव के ऊर्ध्व लिङ्ग की भावना करे । साथ ही साधक-प्रवर को चाहिये कि वह मन ही मन अमृतानन्दरूपिणी देवी (शिव-शक्ति) की भी भावना करे ॥ ९४–९६ ॥

तप्तकाञ्चनवर्णाभां नानालङ्कारभूषिताम् ।
पारिजातान्वितां देव्याः कवरीं परिभावयेत् ॥ ९७ ॥
त्रिसन्ध्यं सन्ध्या कर्त्तव्या मन्त्रसिद्धिमभीप्सता ।
माता कामेश्वरी देवी पिता कामेश्वरः शिवः ।
श्रद्धावान् भावयित्वा च अष्टसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ९८ ॥

तत्पुनः प्रतप्त सुवर्ण की कान्तिवाली अनेक आभूषणों से विभूषित अंगवाली पारिजात पुष्प हाथ में ली हुई देवी के कवरी (चोटी) शिरोभाग की भी भावना करे । मन्त्र-सिद्धि चाहनेवाले साधक को त्रिकाल संध्या करनी चाहिये । उस समय कामेश्वरी देवी को 'माता' तथा कामेश्वर शिव को 'पिता' समझते हुए श्रद्धालु साधक अष्टसिद्धियों का स्वामी होता है ॥ ९७–९८ ॥

(इति सन्ध्या ।)

सर्वतेजोमयीं देवीं शिवशक्ति यतात्मिकाम् ।
ज्वलत्सूर्य्याग्निचन्द्राभां तडित्कोटिसमप्रभाम् ॥ ९९ ॥

---

१. 'सुषुम्णा' इत्यपि पाठः समीचीनः ।

भावयेत् साधको यस्तु ध्यानयोगेन निश्चलः ।
इति ध्यानं विधातव्यं साधकैर्मन्त्रसिद्धये ॥ १०० ॥

सन्ध्योपरान्त नित्य सर्वतेजोमयी; यतात्मिका, उस शिव-शक्ति-स्वरूपिणी देवी को, जो देदीप्यमान सूर्य-अग्नि तथा चन्द्रमा की कान्तिवाली हैं—जो करोड़ों बिजुली की कान्तिवाली हैं—ऐसी देवी को उत्तम साधक निश्चल मन से ध्यान-योग द्वारा स्मरण करते हैं । इसलिये अपने मंत्र की सिद्धि के लिये साधकों को यह ध्यान करना चाहिये ॥ ९९–१०० ॥

(इति ध्यानम् ।)

ब्रह्मरन्ध्रचन्द्रपात्रात्तर्पयेत्तारिणीं पराम् ।
तत्रस्थसूर्य्यपात्रेण चार्घ्यं दद्यान्मनोहरम् ॥ १०१ ॥

ब्रह्मरन्ध्र रूपी चन्द्र-पात्र से श्रेष्ठ तारिणी देवी का तर्पण करे और वहीं पर सूर्यपात्र से सुन्दर अर्घ्य भी प्रदान करे ॥ १०१ ॥

दयापुष्पं क्षमापुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहम् ।
ज्ञानपुष्पं पुण्यपुष्पमहिंसापुष्पमुत्तमम्[1] ॥ १०२ ॥
आचारपुष्पं मे देवि ! स्वयम्भूपुष्पमुत्तमम् ।
आनन्दपुष्पं दातव्यं पुष्पञ्च साधकार्चनम् ॥ १०३ ॥
दशपुष्पं यः प्रदद्यात् स गच्छेत्तारकापदम् ।
त्रिलोकस्थशुभद्रव्यैः पूजयेत् साधकोत्तमः ॥ १०४ ॥

दया[2] पुष्प, क्षमा पुष्प, इन्द्रिय-निग्रहरूपी पुष्प तथा अहिंसारूपी उत्तम पुष्प, सदाचार रूपी पुष्प, स्वयम्भू पुष्प एवं आनन्द पुष्प के साथ साधकार्चन

---

१. उपर्युक्त श्लोक १०२ 'दया' से 'उत्तम' तक सर्वथा अशुद्ध है । प्राचीन पुस्तक में इस प्रकार पाठ है:—
"दया ज्ञानं क्षमा पुण्यं प्रत्याहेन्द्रियनिग्रहम् ।
ज्ञानदानं पुण्यपुष्पमहिंसापुष्पमुत्तमम् ॥ १०२ ॥"

२. दया,[1] क्षमा,[2] इन्द्रिय[3] दमन, ज्ञान,[4] पुण्यमय[5] जान ।
पुष्प अहिंसा[6]ऽऽचार[7] पुनि; पुष्प स्वयम्भु[8] बखान ॥ १ ॥
आनन्दात्मक[9] पुष्प पुनि; साधक[10] – पूजन मान ।
दश-विध पुष्प प्रमान कह; कवि 'द्विजेन्द्र' मतिमान ॥ २ ॥
जीवदया,[1] शरणागत[2]–रक्षण, सत्य,[3] अहिंसा,[4] क्षमा, दम[5] मानो ।
शान्ति[6] सुधा, पुनि त्याग सुपुष्प ले, श्रीहरि के पद-पूजन जानो ॥
भक्ति-समेत अहैतुक प्रेम से, ध्यान लगा करके पहचानो ।
है जग में 'द्विजइन्द्र' यही—दश - पुष्प - विधान प्रमानित जानो ॥ ३ ॥

भी दसवाँ पुष्प माना गया है। हे देवि ! इन दशों आध्यात्मिक पुष्पों द्वारा जो देवी का पूजन करता है, वह साधक (शाक्त-शैव पुरुष) निश्चय ही तारा-धाम में जाता है ।। इसलिये इन त्रिलोक पावन शुभ द्रव्यों से साधक देव-देवी का पूजन करें ।। १०२–१०४ ।।

तत्त्वं दद्यात्तारकायै मत्स्यमांससमन्वितम् ।
तदा सिद्धिमवाप्नोति न जपान्न कुलार्चनात् ।। १०५ ।।

जब साधक तारा देवी के लिये मत्स्यमांस के साथ तत्त्व[1] समर्पण करता है, तब निश्चय ही सिद्धि प्राप्त होती है, केवल मंत्र-जप किंवा कुलार्चन मात्र से नहीं ।। १०५ ।।

(इति पूजा ।)

प्रजपेद् वर्णमालाभिर्न्यासपूर्वं कुलेश्वरः ।
हृत्पद्मे षोडशारञ्च विन्यसेत् षोडशस्वरम् ।। १०६ ।।
पूर्वादितः समारभ्य वह्निकोणान्तपत्रतः ।
आधारे विन्यसेद्विद्वान् ककारादिचतुष्टयम् ।। १०७ ।।

कुलेश्वर साधक को चाहिये कि वह अपने हृदय-कमल में वर्णमालाओं से न्यास करके षोडशार को षोडशस्वरों से विन्यस्त करे। उसकी विधि इस प्रकार है—पहले पूर्वादि दिशाओं से आरम्भ करके अग्नि कोण तक विन्यास करे। तत्पश्चात् विद्वान् साधक मूलाधार में ककार आदि चतुष्टय का विन्यास करे ।। १०६–१०७ ।।

पश्चिमादिदले न्यस्य चोत्तरान्तं सुसाधकः ।
लिङ्गमूले न्यसेत् पद्मे षड्दले चोत्तरक्रमात् ।। १०८ ।।
ङकारादिव्रकारान्तं षड्वर्णं साधकोत्तमः ।
नाभिमूले न्यसेद्वर्णं टादिढान्तं मनोहरम् ।। १०९ ।।

पुनः पश्चिमादि दल में उत्तरान्त न्यास करके, लिङ्गमूल में उत्तरक्रम से षड्दल पद्म में 'ङ' कारादि से 'व' कारान्त तक न्यास करे। तब फिर नाभिमूल में 'टा' दि एवं 'ढान्त' वर्णों का सम्यक् प्रकार से न्यास करे ।। १०८–१०९ ।।

दक्षिणादिक्रमान्न्यस्य वर्णरूपान्महामनून् ।
विन्यसेत्तालुमूले च चतुर्दशदलान्विते ।। ११० ।।

१. यहांपर मत्स्य-मांसादि पंचमकारोपासना के मूल तत्त्व (आध्यात्मिक रहस्य) से तात्पर्य है। इसके विषय में विशेष ज्ञान के लिये योगिनी तंत्र का षष्ठ पटल देखिये।

धकारादिसकारान्तमिन्द्रवर्णं न्यसेद् वुधः ।
ललाटे च भ्रुवोर्मध्ये हक्षौ वर्णौ न्यसेत् सदा ॥ १११ ॥

दक्षिणादि क्रम से वर्ण रूप महामंत्र का न्यास करके तालु-मूल में चतुर्दशदल वाले चक्र में 'ध' कारादि 'स' कारान्त १४ वर्णों का न्यास चतुर साधक को करना चाहिये उस समय ललाट भाग तथा भौंहों के बीच ह्रस्व दो वर्ण का विन्यास करे ॥ ११०–१११ ॥

आदौ दक्षे तथा वामे शुक्लपत्रे सुनिश्चितम् ।
द्वादशार्णो न्यसेद्विद्वान् कादिठान्तान् सुसिद्धये ।
डकारादिविसर्गान्तान् सहस्रारे न्यसेत् सदा ।
एवञ्चान्तर्मातृकाणां विना न्यासेन पार्वति ॥ ११२ ॥

इसके बाद विद्वान् साधक को चाहिये कि अपनी सिद्धि के लिये दक्षिण तथा वामभागीय श्वेतपत्र पर 'क' 'से' 'ठ' तक बारह वर्णो का विन्यास करे। साथही सहस्रार (चक्र) में भी 'ड' से विसर्गपर्यन्त वर्ण विन्यास करे, तब चक्र-शुद्धि होकर साधक सफल होता है ॥ ११२ ॥

अन्तःपूजां चरेद् यस्तु स गच्छेत् यमसादनम् ॥ ११३ ॥

क्योंकि हे पार्वति ! इस प्रकार के तथोक्त मातृका-न्यास किये विना सिद्धि नहीं मिलती; अपितु इस क्रिया (तत्त्व) के विना जो अन्तःपूजा करता है, वह यमलोक में जाकर दण्ड पाता है ॥ ११३ ॥

इति मातृकान्तन्यासं कृत्वा वर्णमालया जपेत् । सा तु—

इस प्रकार मातृकान्यास करके वर्णमाला द्वारा जप करे । वह इस प्रकार है :—

अकारादिक्षकारान्तं हक्षवर्णौ च मध्यतः ।
नादविन्दुसमायुक्तं वर्णान्ते प्रजपेन्मनुम् ॥ ११४ ॥
अनुलोमविलोमेन जपेदष्टोत्तरं शतम् ।
अ कु चु टु तु पु यु शु अष्टवर्गेषु संजपेत् ॥ ११५ ॥

अ अवर्गः षोडशस्वरवर्णः । कु कवर्गः, चु चवर्गः, टु टवर्गः, तु तवर्गः, पु पवर्गः, यु यवर्गश्चतुर्वर्णः, शु शवर्गः षड्वर्णः । तारार्णवे—

नादविन्दुसमोपेतं सर्ववर्ण व्यवस्थितम् ।
स्त्रीशूद्रयोरेतदेव नादविन्दुविवर्जितम् ।
नादविन्दुसमायुक्तं जप्ये न्यासे च मोक्षदम् ॥ ११६ ॥

'अ' से 'क्ष' तक ५० वर्ण चारों ओर रखे तथा 'ह क्ष' दो वर्ण मध्य में

रखे। नादबिन्दु के साथ तथोक्त मंत्र का जप करे। अनुलोम तथा विलोम-विधि से १०८ बार जप करना चाहिये। अर्थात् उ कु चु टु तु पु यु शु—इन आठ[1] वर्णों का जप करे ॥ ११४–११५ ॥

उ = अवर्ग १६, कु = कवर्ग ५, चु = चवर्ग ५, टु = टवर्ग ५, तु = तवर्ग ५, पु = पवर्ग ५ तथा यु = यवर्ग ४ एवं शु = शवर्ग ५ = योग = ५० पंचाशत् वर्ण हैं। 'तारार्णव' में लिखा है :—

नाद विन्दु के साथ सभी वर्ण व्यवस्थित हैं। स्त्री और शूद्र को नादविन्दु रहित वर्णोच्चारण विहित है। इस लिये द्विजातिमात्र को नाद-विन्दु समन्वित वर्णन्यास पूर्वक जप करने से ही मोक्ष होता है ॥ ११६ ॥

एतेन मोक्षश्रवणात् सर्ववर्णानामर्द्धचन्द्रखण्डभूषितवर्णजपे न्यासे चाधिकारः। स्त्रीशूद्रयोस्तु विसर्गौकारबिन्दूनां न चन्द्रखण्ड-योगः। तथा च तारासारे—

तथोक्त प्रमाण द्वारा मोक्षश्रवण से सभी अक्षरों के अर्द्धचन्द्र (ँ) खण्ड-विभूषित न्यास या जप में अधिकार है। किन्तु स्त्री-शूद्र को तो विसर्ग (:) उकार विन्दु (ॐ) का चन्द्र खण्ड योग नहीं विहित है। देखिये 'तारासार' में लिखा है—

निश्चन्द्रं न चरेद्वर्णं जपे न्यासे च शूलधृक्।
अन्यथाकरणान्मूढो नरकं याति निश्चितम् ॥ ११७ ॥

निश्चन्द्र अर्थात् चन्द्रबिन्दु के बिना वर्ण-न्यास एवं जप नहीं करे। अन्यथा करने से मूढ साधक नरक में निश्चित ही जाता है ॥ ११७ ॥

स्वकीयहृदये ध्यायेद् योनिमण्डलमुत्तमम्।
राजभिश्च समोपेतं त्रिकोणं सर्ववर्णकम् ॥ ११८ ॥

कामाख्यायोनि संभाव्य नीलपद्ममनुस्मरन्।
हुनेत् षोडशवारञ्च घृतैर्लिङ्गोद्भवैर्धिया ॥ ११९ ॥

अपने हृदय में श्रेष्ठ योनिमण्डल का ध्यान करे जो राजाओं से सुशोभित तथा सब वर्णो वाला त्रिकोण यन्त्र है। उसे ही कामाख्यायोनि की भावना करके नील कमल का स्मरण करता हुआ, लिङ्गों से उत्पन्न घृत की बुद्धि से सोलह बार हवन करे ॥ ११८–११९ ॥

---

१. 'उ कु चु टु तु पु' ऐते उदिताः (पाणिनिः) ततश्च—'अ क च ट त प य श' वर्गाः। (इति ज्योतिस्तन्त्रार्णवे)।

२. किसी २ के मत से ४९, ५१, ५२ वर्ण होते हैं।

ततः प्रदक्षिणं कुर्यान्मानसेन शिवां त्रयम् ।
इत्यन्तर्यजनं मूढोऽकृत्वा यः पूजयेत् पराम् ।
न पूजाफलमाप्नोति तारायाः कोटिजन्मतः ॥ १२० ॥

इसके बाद मनोयोग द्वारा तीन बार शिवादेवी की प्रदक्षिणा करे। इस प्रकार अन्तर्यजन क्रिया को न जानकर जो मूढ साधक परा देवी की पूजा करता है उसे करोड़ों जन्म लेने पर भी तारा भगवती की पूजा का फल नहीं प्राप्त होता ॥ १२० ॥

इत्यन्तर्यजनम् ।

अथोग्रतारान्तर्यागः ।

अथोग्रतारकायाश्च अन्तर्यागं वदाम्यहम् ।
स्वकीये हृदये ध्यायेत् सुधासागरमुत्तमम् ॥ १२१ ॥
हृत्पद्मे षोडशारे च तर्पयेदुग्रतारिणीम् ।
दले दले महादेवीं मूलमन्त्रमनुस्मरन् ॥ १२२ ॥

अब यहाँ उग्रतारा देवी के अन्तर्याग का वर्णन मैं कर रहा हूँ। इस विषय में सर्वप्रथम साधक को चाहिये कि अपने हृदय में उत्तम सुधासागर का ध्यान करे। तत्पश्चात् षोडश दलवाले हृत्कमल में उग्रतारा देवी का तर्पण (पूजन) करे। साथ ही प्रतिदल में महादेवी का ध्यान कर तथा मूल मंत्र का स्मरण कर हे वत्स ! उसकी योनि में इसी मंत्र से हवन करे ॥ १२१–१२२ ॥

तस्या योनौ हुनेद्वत्स ! मन्त्रेणानेन साम्प्रतम् ।
ओं नाभिचैतन्यरूपाग्नौ हविषा मनसा स्रुचा ॥ १२३ ॥
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् ।
प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनाः स्रुचा ।
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णवह्नौ जुहोम्यहम् ॥ १२४ ॥

ॐ नाभिचैतन्यरूपी अग्नि में मनरूपी हवि द्वारा सुषुम्नामार्गरूपी स्रुवा से प्रतिदिन अक्षवृत्ति को मैं हवन करता हूँ—ऐसी भावना करे। अथवा प्रकाश और काश रूपी हाथों से अवलम्बन लेकर 'उन्मना' रूपी श्रुवा द्वारा धर्म, अधर्म, कला, स्नेह से परिपूर्ण (प्रज्वलित) अग्नि में मैं हवन करता हूँ—ऐसी भावना करे ॥ १२३–१२४ ॥

ततश्च वर्णमालाभिर्जपेदष्टोत्तरं शतम् ।
प्रदक्षिणीकृत्य ततः प्रणिपत्य सुखञ्चरेत् ॥ १२५ ॥

इसके बाद वर्णमालाओं से १०८ बार हवन करे तत्पश्चात् प्रदक्षिणा करके साष्टांग प्रणाम करे तथा सुखपूर्वक विचरण करे ॥ १२५ ॥

इत्युग्रतारान्तर्यजनम् ।

स्वकीये हृदये ध्यायेत् शारदां नीलरूपिणीम् ।
प्रत्यालीढपदां देवीं व्याघ्रचर्मावृतां कटौ ॥ १२६ ॥
हास्यवक्त्रां महाघोरां यजेन्नीलसरस्वतीम् ।
विपरीतरताशक्तां वागीशत्वप्रदायिनीम् ॥ १२७ ॥

अपने हृदय में नील सरस्वतीरूपी शारदा देवी को—जो अपने कमर में व्याघ्रचर्म लपेटी हैं तथा प्रत्यालीढ पद वाली हैं—ऐसी हँसमुखी एवं महाभयंकर नीलसरस्वती को जो विपरीत रति में निरत रहती हैं और वागीशत्व प्रदान करती हैं—उनका ध्यानपूर्वक भजन-पूजन करे ॥ १२६-१२७ ॥

पाययित्वा सुधाधारां मत्स्यमांससमन्विताम् ।
चसकेन दद्देद्वक्त्रे चासवं मांससंयुतम् ॥ १२८ ॥

फिर उन्हें मत्स्य-मांस सहित सुधाधार पान करा कर, उनके मुख में चम्मच से मांसयुक्त मदिरा पिलावे ॥ १२८ ॥

महाहृदि परं ध्यायेन्नीलवाणीं सुरेश्वरीम् ।
आसवोन्मत्तहृदया शिववक्त्रे पुनः पुनः ॥ १२९ ॥
पपात वातयोगेन चुम्बनञ्च करोति हि ।
पादपद्मं महादेवि ! विधृत्य निजहस्ततः ॥ १३० ॥

तब अपने महाहृदयाकाश में देवसुन्दरी नील सरस्वती का ध्यान करके आसवपान से उन्मत्तहृदयवाली वह देवी शिव-मुख पर बार-बार गिरे और वात योग से (प्रसंगवश) मुखचुम्बन भी करे। उस देवी के चरण-कमल का भी स्पर्श करे ॥ १२९–१३० ॥

उत्थाय तारिणीवक्त्रं स चुम्बति पुनः पुनः ।
तस्य वक्त्रे प्रदद्याच्च मत्स्यं दग्धं महासवम् ॥ १३१ ॥

इसके बाद वह पुरुष तारिणी देवी के मुख को उठाकर बार-बार चूमता है। साथ ही उसके मुख में पकाया हुआ मत्स्य एवं मदिरा भी डालता है ॥ १३१ ॥

दग्धमत्स्यं दग्धमांसं शोणितं पशुदेहतः ।
शूकरस्योष्ठमांसञ्च भगलिङ्गामृतं तथा ॥ १३२ ॥
दद्यान्नीलसरस्वत्यै चोच्छिष्टं हरवक्त्रके ।
पुनः पुनः पूजयित्वा पूजयेद्वर्णमालया ।
इत्यन्तर्यजनं प्रोक्तं नीलवाण्याः सुशोभनम् ॥ १३३ ॥

इस प्रकार पकाया गया मत्स्य, मांस तथा पशु शरीर का रक्त, शूकर के ओठ का मांस एवं भग-लिंगामृत उस नील सरस्वती के लिये देवे, पुनः शिव-मुख

में उच्छिष्ट देवे। इस प्रकार वर्णमाला द्वारा बार-बार पूजा करके उनकी पूजा करे। यही नील सरस्वती का सुन्दर 'अन्तर्याग' कहलाता है ॥ १३२-१३३ ॥

योऽर्चयेत् परया भक्त्या हस्ते तस्य सदा वसेत्।
सर्वसिद्धिर्महादेवि ! वक्त्रे वाणी वसेद् ध्रुवम् ॥ १३४ ॥

जो साधक, परम भक्तिपूर्वक उस देवी की पूजा करता है, उस के हाथ में हे महादेवि! सब प्रकार की सिद्धि तथा मुख में वाणी सरस्वती निश्चय ही बसती है ॥ १३४ ॥

दिवारात्रौ कुलाचारे चैवं यस्तु विभावयेत्।
तस्य भोगश्च मोक्षश्च वाञ्छासिद्धिः करे वसेत् ॥ १३५ ॥

इसलिये जो साधक दिनरात कुलाचार में निरत होकर इस प्रकार की सद्भावना रखता है, उसके हाथ में भोग और मोक्ष के साथ अभीष्ट सिद्धि निवास करती है ॥ १३५ ॥

इति नीलसरस्वत्या अन्तर्यजनम्।

—:o:—

अथ एकजटामन्त्रोद्धारः।

ब्राह्मणेतरवर्णानां षट्कोणं कर्णिकागतम्।
ब्राह्मणानां सदा लेख्यं त्रिकोणं कर्णिकागतम् ॥ १३६ ॥

जो ब्राह्मणेतर हैं, उनके लिये षट्कोण यंत्र है। और जो ब्राह्मण हैं, उन्हें सर्वदा त्रिकोण यंत्र ही लिखना चाहिये ॥ १३६ ॥

मध्ये कूर्चं लिखेद्विद्वान् वृत्तद्वयमतः परम्।
ततश्चाष्टदलं लेख्यं चतुर्बीजसमन्वितम् ॥ १३७ ॥

विद्वान् साधक को चाहिये कि वह मध्यभाग में कूर्च मंत्र 'हूँ' लिखे। इसके बाद दो वृत्त लिखे। तत्पश्चात् चार बीजों[1] के साथ अष्टदल यन्त्र लिखना चाहिये। वे इस प्रकार हैं :— ॥ १३७ ॥

पूर्वे लज्जा वधूर्दक्षे उत्तरे फः प्रकीर्त्तितः।
पश्चिमे टं समाख्यातं कोणे च रेणुकायुतम्।
चतुरस्रं चतुर्द्वारं लिखेद् यन्त्रं सुशोभनम् ॥ १३८ ॥

पूर्व में लज्जाबीज 'ह्रीं', दक्षिण में वधू बीज 'स्त्री', उत्तर में 'फः' और पश्चिम में 'टं' बीजमंत्र प्रसिद्ध है। कोण में रेणुकासहित चतुष्कोण (वर्गाकार), चार द्वारवाला यंत्र लिखे—जो अत्यन्त सुन्दर हो ॥ १३८ ॥

---

१. चार बीज हैं—'ह्रीं', स्त्रीं', फः, टं'। तांत्रिक क्रियाओं में चक्रशुद्धि की प्रधानता है।

एवं यन्त्रं परित्यज्य भिन्नयन्त्रे प्रपूजयेत् ।
तस्यै दत्त्वा रुषा शापं देवी याति हरं प्रति ॥ १३६ ॥

हे देवि ! इस प्रकार के यन्त्र (चक्र) को त्यागकर जो भिन्न यंत्र की पूजा करता है, उसे भगवती क्रुद्ध हो, शाप देकर शिव के पास लौट जाती हैं ॥१३६॥

अस्या भेदेन ताराया वक्ष्यामि तदनन्तरम् ।
त्रिकोणञ्च त्रिवृत्तञ्च लिखेच्चापि चतुर्दलम् ॥ १४० ॥
ततश्चाष्टदलं लेख्यं द्विवृत्तं तदनन्तरम् ।
चतुरस्रं चतुर्द्वारं कामताराप्रपूजने ॥ १४१ ॥

इस तारा के भेद से तारायंत्र का भी भेद है—जो मैं बता रहा हूँ। त्रिकोण को त्रिवृत्त के साथ चतुर्दल एवं अष्टदल बनावे । उसके उपरान्त अष्टदल बनाकर पुन: द्विवृत्त युक्त करे। तत्पश्चात् चतुरस्र एवं चतुर्द्वारयुक्त यंत्र बनावे। कामतारा पूजन में यह आता है[1] ॥ १४०-१४१ ॥

एतासां धारणयन्त्रं यथा—

त्रिकोणं साधकाख्यञ्च षट्कोणं तदनन्तरम् ।
लिखेदष्टदलं पद्मं षोडशस्वरसंयुतम् ॥ १४२ ॥
पद्मावत्याश्च मन्त्रेण सप्तवर्णेन वेष्टयेत् ।
चतुरस्रं चतुर्द्वारं कोणे वज्रसमन्वितम् ॥ इति । १४३ ॥

इनके धारण करने का यंत्र इस प्रकार है—'साधक' नामक त्रिकोण द्वारा षट्कोण की रचना करे। तदनन्तर अष्टदल पद्म बना कर उसमें १६ स्वरों को लिखे। फिर उसे 'पद्मावत्याः' इत्यादि मंत्र से सप्त वर्ण से आवृत करे। इस प्रकार चतुर्वर्गाकार चार द्वार वाले, कोण में बज्र-सहित मंत्रोच्चारण करे ॥ १४२-१४३ ॥

अथोग्रतारायन्त्रम् ।

नवकोणं लिखेदादौ पञ्चपत्रसमन्वितम् ।
द्विवृत्तं द्विगुणं पद्मं सर्वत्र रेणुभूषितम् ॥ १४४ ॥
चतुरस्रं चतुर्द्वारमुग्रताराप्रपूजने ।
षट्कोणञ्च चतुष्कोणं पञ्चवृत्तसमन्वितम् ॥ १४५ ॥
लिखेदष्टदलं पद्मं चतुरस्रादिकं तथा ।

---

१. उपर्युक्त यंत्र-चक्रों को गुरु द्वारा समझकर सावधानी से बनावे तथा पूजन करे। अन्यथा सिद्धि प्राप्त नहीं होती। —'द्विजेन्द्र'।

वर्त्तुलं बिन्दुसंयुक्तं षट्कोणं तदनन्तरम् ।
लिखेदष्टदलं पद्मं भूगृहं तदनन्तरम् ॥ १४६ ॥

पहले नव कोण यंत्र पंचपत्र-सहित बनावे, जो सर्वत्र रेणु (धूलि) से सुशोभित हो । साथ ही उग्रतारा के पूजान्त में षट्कोण, चतुष्कोण पंचवृत्त सहित रचे । तत्पश्चात् अष्टदल पद्म तथा वर्गाकार चक्र बनावे । बिन्दु युक्त वर्तुल तथा षट्कोण बनावे, इस के बाद पुनः अष्टदल पद्म एवं भूगृह की रचना करे ॥ १४४-१४६ ॥

अथ नीलतारिणीयन्त्रम् ।

त्रित्रिकोणं समं लेख्यं मध्ये बिन्दुसमन्वितम् ।
द्विवृत्तं षड्दलं विद्धि त्रिवृत्तं द्वादशं दलम् ॥ १४७ ॥
पुनर्वृत्तत्रयं लेख्यं चतुर्द्वारात्मकं गृहम् ।
द्वित्रिकोणञ्च षट्कोणं वृत्तं चाष्टदलं तथा ।
पुनर्वृत्तं कलापत्रं चतुर्द्वारात्मकं गृहम् ॥ १४८ ॥
साधारणयन्त्रमेकजटाप्रकरणोक्तं सर्वत्र इति नरयन्त्रोद्धारः ।

तीन त्रिकोण समान लिखे, मध्य में बिन्दु '" रखे । दो वृत्त को 'षड्दल' तथा तीन वृत्त को 'द्वादशदल' कहते हैं । फिर तीन वृत्त लिखकर चार द्वारवाले गृह की रचना करे । दो-तीन कोण, षट्कोण, वृत्त, अष्टदल तथा पुनः वृत्त, कलापत्र, चतुर्द्वारात्मक गृह रचे । एकजटा-प्रकरणोक्त साधारण यंत्र सर्वत्र रहे । इसे ही 'नर यन्त्रोद्धार' कहते हैं ॥ १४७-१४८ ॥

अथ यन्त्रसंस्कारः ।

तारानिगमे—

ताम्रपात्रे कपाले वा श्मशाने काष्ठनिर्मिते ।
स्वर्णे रौप्येऽथवा लौहे यन्त्रं कुर्य्याद्विधानतः ॥ १४९ ॥

तारा निगम में लिखा है । यथा—

साधक को चाहिये कि ताम्रपात्र में, कपाल (खोपड़ी) में, श्मशान में, अथवा काष्ठ-निर्मित, सुवर्ण, रौप्य, अथवा लोहे के पात्र में, विधि-विधान से यंत्र-निर्माण करे ॥ १४९ ॥

संस्कारस्य नित्यतामाह तारासारे—

संस्कार की नित्यता के विषय में तारासार में लिखा है—

असंस्कृते तु ये यन्त्रे पूजयन्ति नराधमाः ।
पुण्यज्ञानसुतैर्हीनाः साधने सिद्धयः कथम् ? ॥ १५० ॥

जो नराधम असंस्कृत यंत्र में पूजा करते हैं, वे पुण्य-ज्ञान एवं सन्तानहीन होते हैं। तब भला ऐसे साधन में सिद्धियाँ कैसे आ सकती हैं ॥ १५० ॥

यन्त्रं लिखित्वा ये पूजां न कुर्वन्ति दिने दिने।
तेषां पूजां न गृह्णन्ति देवाः सिद्धिः कथं भवेत् ? ॥१५१॥

इसी प्रकार यंत्र लिखकर भी जो प्रतिदिन यंत्रपूजा[1] नहीं करते उनकी पूजा देवगण स्वीकार नहीं करते। तब भला सिद्धि कैसे होवे ? ॥ १५१ ॥

तत्रैव—

यन्त्रस्य लेखनेऽशक्तः पुष्पयन्त्रे प्रपूजयेत्।
अपरायां जवायाञ्च द्रोणे च करवीरके ॥ १५२ ॥
गौरीपट्टे शिवस्यापि तत्त्वपात्रेऽथवा पुनः।
अभावे सर्वयन्त्राणां शालग्रामे जलेऽर्चयेत् ॥ १५३ ॥

'तारानिगम' में लिखा है—

वहीं पर लिखा है कि यदि कोई साधक यंत्र लिखने में असमर्थ हो तो पुष्परूपी यंत्र में ही देव-पूजन करे। पुष्पों में अपराजिता, जवाकुसुम (अड़हुल), द्रोणपुष्पी तथा करवीर (दुपहरिया) के पुष्प में गौरीपट एवं शिवपट (चित्र) अथवा तत्त्व-पात्र में पूजा करे। सब प्रकार के यंत्रों के अभाव में शालग्राम या जल में पूजा करे ॥ १५२–१५३ ॥

सुमर्त्यां सर्ववर्णाश्च तद्यन्त्रे च प्रपूजयेत्।
शालग्रामेतरे यन्त्रे शस्यते शूद्रयोषितः।
गौरीपट्टे तु पूजायां पाषाणादौ न पार्थिवे ॥ १५४ ॥

मृत्युलोक में तत्तद् यंत्रों में सभी वर्ण के लोग पूजा करें। पर शूद्र एवं स्त्रियों को शालग्राम के अतिरिक्त अन्य यंत्र में पूजा करना प्रशस्त है। यह भी स्मरण रहे कि पूजा-कृत्य में गौरीपट तथा पार्थिव-पाषाण आदि यंत्रों में पूजा न करे ॥ १५४ ॥

तथा शक्तियामले—

पार्थिवे योनिवेद्यास्तु पूजने रेणुनाशकृत्।
पच्यते नरके घोरे न मोक्षः कोटिजन्मतः ॥ इति ॥ १५५ ॥

'शक्तियामल' में लिखा है—

पार्थिव यंत्र में योनिवेदी के पूजन से रेणुनाश होता है। वह घोर नरक में पड़ता है। करोड़ों जन्म लेने पर भी उसकी मुक्ति नहीं होती ॥ १५५ ॥

---

१. यंत्र-मंत्र का तंत्रक्रिया में सामानाधिकरण्य है। अतः तीनों का सम्यक् ज्ञान अपेक्षित है।

रक्तासनस्थितो वीरः कामाख्यामुख एव च।
लिखेदष्टदलं पद्मं कुङ्कुमेन सुसिद्धये ॥ १५६ ॥
तत्र संस्थापयेद् यन्त्रं पञ्चगव्येन सेचयेत्।
वीक्षणं मूलमन्त्रेण अस्त्रेण पुष्पताडनम् ॥ १५७ ॥
मूलेन निक्षिपेद्बिन्दून् लेपयेच्चन्दनेन च।
गन्धपुष्पाक्षतैर्यन्त्रं समभ्यर्च्य विलोकयेत् ॥ १५८ ॥

रक्तासन (लालवस्त्र के आसन) पर बैठा हुआ वीर साधक कामाख्या देवी के मुख में ही अष्टदल पद्म कुंकुम से लिखे, तो उसे सिद्धि प्राप्त होती है। इसलिये वहीं पर यंत्र स्थापित करके, पंचगव्य से पहले स्नान करावे, तब मूल मंत्र से उसे देखे और अस्त्र मंत्र (फट्) से पुष्पताडन करे। तत्पश्चात् मूलमंत्र से विन्दुओं का अभिसेचन करे और चन्दन-लेप करके गंध-पुष्प-अक्षत द्वारा यंत्र की पूजा करके उसे देखे। (तारा गायत्री का जप करे) ॥ १५६–१५८ ॥

ॐ यन्त्रराजाय विद्महे सर्वाधाराय धीमहि तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात्।

एतया वापि गायत्र्या शतैस्तमभिमन्त्रयेत्।
देवताभावमासाद्य मूलमन्त्रशतं जपेत् ॥ १५९ ॥

अथवा मूलोक्त गायत्री मंत्र को सौ बार जप कर उस मंत्र को अभिमंत्रित करे। इस प्रकार देवभाव की कल्पना करके मूलमंत्र का सौ बार जप करे ॥१५९॥

प्रतिष्ठोक्तक्रमेणापि प्रतिष्ठाप्य निरीक्षयेत्।
गायत्र्या देवतायास्तु शतं तमभिमन्त्रयेत् ॥ १६० ॥
देवीं तत्र समावाह्य दशमूलेन मन्त्रयेत्।
पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा चोपचारैश्च पूजयेत् ॥ १६१ ॥

तन्त्रोक्त प्रतिष्ठाक्रम से प्रतिष्ठा करके उसे भलीभाँति देखे। तत्पश्चात् गायत्री मंत्र से उस देवता के यंत्र को सौ बार अभिमंत्रित करे तब उसमें देवी का आवाहन करके दस बार मूल मंत्र से अभिमंत्रित करे और आठ पुष्पाञ्जलि चढ़ाकर पंचोपचार से पूजा करे ॥ १६०–१६१ ॥

कलाभिर्दशभिर्वापि पञ्चभिर्वाप्यशक्तितः।
तर्पणन्तु ततः कृत्वा शतमष्टोत्तरं हुनेत् ॥ १६२ ॥
होमकर्मण्यशक्तश्चेद् द्विगुणं जपमाचरेत्।
प्रणम्य धार्य्यं तद्यन्त्रं सदा सद्भावसिद्धये।
गुरुणा कारयेद्वापि स्वयं वापि विशोधयेत् ॥ १६३ ॥

तत्पश्चात् दस कलाओं से किंवा पंचकलाओं से यथाशक्ति [1]तर्पण करके १०८ वार हवन करे। यदि साधक होमकर्म में असमर्थ हो तो दुगुना जप कर लेवे। अन्त में प्रणामपूर्वक उस यंत्र को श्रद्धाभक्ति के साथ मनोरथसिद्धि के लिये धारण करे। यह कार्य किसी गुरु द्वारा अथवा स्वयं ही कर सकते हैं॥ १६२-१६३॥

ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां वैश्यानां हरसुन्दरि।
योषितामपि शूद्राणां चाधिकारोऽत्र सद्विधौ॥ १६४॥

हे त्रिपुरसुन्दरि! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र एवं स्त्रियों को भी इस सद्विधान में अधिकार है॥ १६४॥

सर्वत्र होमे पूजायां संस्कारे बालकस्य च।
प्रयोगे यत्र संशुद्धौ स्रजः संस्कारकर्मणि॥ १६५॥
शवानाञ्च चितानाञ्च लतानाञ्चापि साधने।
लज्जा तु प्रणवस्थाने ह्रीं बीजं वह्निवल्लभा॥ १६६॥
सेतुस्थाने कूर्चबीजं षोढायां कामबीजकम्।
स्वर्गमोक्षप्रदं विद्धि सर्वत्र शूद्रयोषितः॥ १६७॥

इति श्रीब्रह्मानन्दपरमहंसपरिव्राजकावधूतविरचिते
तारारहस्ये द्वितीय-पटले मन्त्रसंस्कारः।

सर्वत्र हवनकर्म में, पूजा में, बालक के संस्कारों में, प्रायश्चित्त एवं शुद्धि के प्रयोग में, माला के संस्कार में, शवों, चिताओं एवं लताओं के साधन कर्म में, प्रणवस्थान में लज्जाबीज 'ह्रीं स्वाहा' तथा सेतु स्थान में कूर्चबीज 'हूँ स्वाहा' और षोढा स्थान में कामबीज 'क्लीं स्वाहा' लगाने से शूद्र एवं स्त्रियों को भी स्वर्ग तथा मोक्ष देनेवाला है—ऐसा जानो॥ १६५-१६७॥

इति 'विद्याख्याव्याख्याविलसिते' तारारहस्ये मंत्रसंस्कार-नामकं
चतुर्थ-प्रकरणम्॥ ४॥

—:०:—

अथ मालाप्रकरणम्।

तारानिगमे—

नृकपालस्य खण्डेन रचिता जपमालिका।
महाशङ्खमयी माला अकस्मात् सिद्धिदा स्मृता॥ १६८॥

'तारानिगम' में लिखा है—

नरमुण्ड के खण्ड से बनी जपमाला तथा महाशंख की बनी हुई माला एकाएक (शीघ्र) सिद्धि देने वाली कही जाती है॥ १६८॥

---

१. 'तर्पण' से तात्पर्य है—जप-पूजन। हवनोतर तर्पण नहीं।

दन्तजैर्वा प्रकर्त्तव्या तथा चाङ्गुलिपर्वभिः।
काली तारा महाविद्या यन्त्रे तिष्ठत्यतन्द्रिता ॥ १६९ ॥
अभावे स्फाटिकी माला महाशङ्खस्य शङ्कर ! ।
शोधयित्वा जपेन्मन्त्रं सर्वकामार्थसिद्धये ॥ १७० ॥

अथवा दशनमाला[1] तथा अंगुलि पर्वों की माला काली, तारा एवं महाविद्या-यंत्र के कार्य में सफल होती हैं। इनके अभाव में स्फटिकमणि की अथवा महाशंख की माला शुद्ध करके (मंत्राभिषिक्त करके) सब कामनाओं की सिद्धि के लिये जपनी चाहिये ॥ १६९–१७० ॥

महाशङ्खजपाद्वत्स ! अकस्मात् सिद्धिभाग् भवेत् ।
मन्त्रसिद्धिः स्फाटिके स्याद्रुद्राक्षे सर्वसिद्धिभाक् ॥ १७१ ॥

पार्वती जी कहती हैं शिवजी से—'हे वत्स ! महाशंख की माला से जप करने पर एकाएक साधक सिद्धि प्राप्त करता है। हाँ ! स्फटिकाक्ष-माला से भी मंत्रसिद्धि तथा रुद्राक्ष-माला से भी सर्वसिद्धियाँ मिलती हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ १७१ ॥

कुशग्रन्थिः शान्तिके स्यात् खरदन्ता च मारणे ।
उच्चाटने चाश्वदन्ता वश्ये प्रवालमालिका ॥ १७२ ॥
विद्यायाञ्च धने चापि स्त्रियामाकर्षणे तथा ।
शत्रूणां स्तम्भने वापि माला रौप्यमयी तथा ॥ १७३ ॥

शान्ति-कार्य में कुशग्रंथि की माला तथा मारण में खर (गदहा) दन्त की माला एवं उच्चाटन कर्म में अश्व (घोड़ा) दन्त की माला और वशीकरण में मूंगे की माला प्रशस्त कही गयी है। इसी प्रकार विद्यार्जन एवं धनोपार्जन में तथा स्त्रियों के आकर्षण (वशीभूत) करने में और शत्रुओं के स्तम्भन (विजय) में चाँदी की माला उत्तम है ॥ १७२–१७३ ॥

संस्कारे नित्यतामाह—

यश्चासंस्कृतमालाभिर्मन्त्रं जपति मानवः ।
तस्मै दत्त्वा रुषा शापं देवी याति हरं प्रति ॥ १७४ ॥

---

१. तारानिगम में शिव से शिवा ने कहा है। तंत्र के प्रायः सभी ग्रंथों में भैरव-भैरवी (शिव-पार्वती) संवाद है। कहीं शिव ने पार्वती से कहीं पार्वती ने शिव से कहा है। यहाँ सम्बोधन में शंकर या 'वत्स' शब्द आया है इससे यह स्पष्ट है कि सदाशिव प्रभु और चिन्मयी शक्ति का ही यह संवाद है—जहाँ लिंग, वचन या काल का महत्त्व नहीं है। अथवा 'शंकरि ! वत्से !' सम्बोधन रूप जानना चाहिये। इसलिये दोनों में एक दूसरे को संबोधित करना समुचित ही है।

माला-संस्कार की नित्यता में प्रमाण यह है कि जो मनुष्य असंस्कृत मालाओं से मंत्रजप करता है, उस पर क्रोधित होकर वह देवी उसे शाप दे देती है और स्वयं शिव के पास लौट जाती है ॥ १७४ ॥

त्रिकोणं संलिखेद्भूमौ मालां तत्र निधापयेत्।
देवप्रतिष्ठामन्त्रेण तत्र देवीं प्रतिष्ठयेत् ॥ १७५ ॥
संस्कृत्य तत्त्वं तेनैव सहस्रबिन्दुकं क्षिपेत्।
सिन्दूरकरवीराद्यैः पूजयेत्तारिणीं पराम् ॥ १७६ ॥

जहाँ माला रखनी हो, वहाँ पहले त्रिकोण बनावे, उसी पर माला रखे, और देवप्रतिष्ठा वाले मंत्र से वहाँ देवी (या देव) की प्राणप्रतिष्ठा करे। फिर उसी मंत्र से तत्त्व (मदिरा) संस्कार करके सहस्र बिन्दु (मदिरा कण) छिरके तथा सिन्दूर एवं करवीर (दुपहरिया) आदि पुष्पों द्वारा तारिणी देवी की विधिवत् पूजा करे ॥ १७५-१७६ ॥

तुलसीगोमयास्पृष्टां गङ्गास्पृष्टाञ्च मालिकाम्।
गोपयेद्बहुयत्नेन गुरोरपि न दर्शयेत् ॥ १७७ ॥

तुलसी तथा गोमय से अस्पृष्ट एवं गंगा से भी अस्पृष्ट माला को यत्नपूर्वक गुप्त रखे। यहाँ तक कि उसे गुरु को भी न दिखाये ॥ १७७ ॥

अपमृत्युगतस्यापि चास्थि विप्रेतरस्य च।
स्त्रीकर्णवेधे देवेशि चास्थि चादाय यत्नतः।
धमन्या ग्रथयेन्मालां रक्तसूत्रेण वा पुनः ॥ १७८ ॥

हे देवेश ! स्त्री के कर्णवेध में बड़े यत्न से हड्डी लाकर धमनी (नस) से किंवा लाल डोरे से माला[1] गूँथनी चाहिये ॥ १७८ ॥

इति महाशंख-माला

अथ सामान्यमाला।

मारणे पञ्चदशकमष्टादश सदोच्चटे।
अष्टाविंशतिमालाभिर्वश्येऽप्याकर्षणे तथा ॥ १७९ ॥
धनार्थं त्रिंशता जप्यं सिद्धौ स्यात् पञ्चविंशतिः।
एकपञ्चाशन्मनुभिः सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ १८० ॥

मारण में १५, उच्चाटन में १८, वशीकरण तथा आकर्षण (मोहन) कर्म में २८, धनोपार्जन में ३०, सिद्धि में २५ तथा सब कार्यों की सिद्धि में ५१ बार मंत्र-माला जपनी चाहिए ॥ १७९-१८० ॥

---

१. यह माला आसुरीमाला कही गई है। वाम मार्ग महाचीन पद्धति के अनुसार चीन देश से आया हुआ है।

ब्राह्मणी कन्यका या तु अनूढा स्यात् कलेवरे।
कृतसूत्रैश्च कर्त्तव्यं स्रजं सर्वसुखावहम् ॥ १८१ ॥

ब्राह्मण की जो कन्या अनूढा हो, अर्थात् जिसे अभी रजोधर्म न हुआ हो, ऐसी कन्या द्वारा काते गये कपास के सूत्रों से गूँथी हुई माला सब प्रकार की सुखदायिनी होती है ॥ १८१ ॥

शान्तौ कार्पाससूत्रं स्यात् सिद्धौ स्याद्रक्तसूत्रकम्।
ज्ञानसूत्रं वर्णरूपे कृष्णसूत्रन्तु मारणे ॥ १८२ ॥
आकर्षणे नीलसूत्रं धमनी सर्वसिद्धिदा।

शान्ति कर्म में कपास का श्वेत सूत, सिद्धि में लाल सूत, वशीकरण में पीला सूत, तथा मारण में काला सूत होना चाहिये। आकर्षण में नीला सूत तथा धमनी (नस) सर्वसिद्धिप्रदा है ॥ १८२ ॥

त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य दृढरज्जु-समन्वितम् ॥ १८३ ॥
सार्द्धद्वयावेष्टनेन ग्रन्थिं कुर्य्याद् यथा दृढम्।
ब्रह्मग्रन्थियुतां कुर्य्याद् ग्रन्थिं वापि त्रिवेष्टिताम् ॥ १८४ ॥
अथवा ग्रन्थिकं तत्र दृढरज्जु-समन्वितम्।
एषा पुण्यमयी माला सर्वसिद्धिप्रदा मता । १८५ ॥

कच्चे सूत को त्रिसुत करके पुनः तीनगुना करे, फिर उससे दृढ़ रज्जु बना लेवे। तब उसमें मनिया गूँथते समय ढाई गुना गाँठ लगावे अर्थात् जैसे माला सुदृढ़ हो सके, वैसे उसे तैयार करना चाहिये, अन्त में तीन गुना वेष्टित करके ब्रह्मग्रंथि लगावे। अथवा जैसे जितने में मनियों के छेद परिपूर्ण हो सकें, उतनी मोटी ग्रंथि [डालनी चाहिये। इस प्रकार की शुद्ध तैयार माला सब प्रकार की सिद्धियों को देनेवाली कही गयी है ॥ १८३–१८५ ॥

अथ शोधनम्।

अश्वत्थपत्रनवकैः पद्माकारन्तु कारयेत्।
तन्मध्ये स्थापयेन्मालां मातृकामूलमुच्चरन्।
क्षालयेत् पञ्चगव्येन वामदेवेन घर्षयेत्। १८६ ॥

पीपल के नवीन पत्तों का पत्तल बनावे। उस पर माला रखकर मातृका-मूल मंत्र का उच्चारण करता हुआ पंचगव्य से उसे धोवे, तथा 'वामदेवेन' इस मंत्र से उसे मले। तत्पश्चात् शुद्धोदक से स्नान कराकर उस माला की पूजा करनी चाहिये ॥ १८६ ॥

वामदेवस्तु महाकुलार्णवे—ॐ वामदेवाय सर्वसिद्धीश्वराय सर्व-पापहराय सर्वमालिकेश्वराय ॐ हुँ ॐ ऐं क्लूँ फट् इत्यनेन चन्दन-कुङ्कुमगोरोचनादिभिर्घर्षयेत्।

वामदेव मन्त्र महाकुलार्णव में इस प्रकार है—"ॐ वामदेवाय सर्वसिद्धीश्वराय सर्वपापहराय सर्वमालिकेश्वराय ॐ हुँ, ॐ ऐं क्लूं फट्।" इसी मंत्र से चन्दन, कुंकुम, पुष्पादि से घर्पण करे।

तत्त्वाज्ञैर्न तु नेतव्यो वामदेवस्तु वैदिकः।
कुलाचारविहीनानां न वेदाः फलदायकाः॥ १८७॥

जो तत्त्व से अनभिज्ञ हैं, उसे न ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि 'वामदेव' मंत्र वैदिक है। जो कुलाचार-विहीन हैं उन्हें वैदिक मंत्र फलदायक नहीं होते॥ १८७॥

लज्जा तु सुभगा चैव वाग्भवा काम एव च।
एतेन वीत्तणं कुर्य्यात्तारामन्त्रसुसिद्धये॥ १८८।

इति वीत्तयेत्।

लज्जा वीज (ह्रीं) सुभग (सुन्दर) है और वाग्भवा (ऐं) वीज कामना है। इस मंत्र द्वारा तारामंत्र की सिद्धि के लिये उस माला का निरीक्षण करे॥ १८८॥

ततः शताभिमन्त्रितं मूलेन कुर्य्यात्। ततो मातृकावर्णैः प्रत्येकविन्दुं निक्षिपेत् प्रतिमासु मूलेन देवीं तर्पयेत्।

इसके वाद मूल मंत्र से सौ वार अभिमंत्रित करे तव मातृका-वर्णों द्वारा प्रत्येक विन्दु छोड़े। फिर प्रतिमाओं (मूर्त्तियों) में मूल मन्त्र द्वारा ही देवी की पूजा करके उन्हें सन्तुष्ट करे।

मूलेन स्नापयेन्मालां कुङ्कुमेनापि लेपयेत्।
घर्षयेद्विधिबोधेन कामबीजेन पूजयेत्॥ १८९॥
ततश्च मूलमन्त्रं हि मालोपरि शतं जपेत्।
तत्र देवीं प्रतिष्ठोक्तविधिना प्रतिष्ठापयेत्॥ १९०॥

मूल मन्त्र से माला को स्नान करावे तथा कुंकुम का लेपन करे। उपर्युक्त मन्त्र द्वारा घर्षण करे तथा कामबीज 'क्लीं' मन्त्र से पूजन करे। इसके वाद माला पर मूलमन्त्र सौ वार जपे। वहाँ पर प्रतिष्ठोक्तविधि[1] से देवी की प्रतिष्ठा करे॥ १८९–१९०॥

तत आवाहनमुद्राभिरावाहयेत्। ततः षोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा पूजयेत्। तत अष्टोत्तरशतं हुनेत्। तदशक्तौ द्विगुणजपः। ततः सप्तप्रदक्षिणं कृत्वा प्राणायामं कृत्वा कराङ्गषडङ्गन्यासौ विन्यस्य मालां शिरसि संवेष्ट्य गोपयेत्।

---

१. तान्त्रिक प्रतिष्ठाविधि से प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिये।

इसके बाद आवाहन[1]-मुद्रा-प्रदर्शनादि से इष्टदेवी का आवाहन करके षोडशोपचार किंवा पंचोपचार से पूजन करे। तत्पश्चात् १०८ वार होम करे। यदि हवन में असमर्थ हो तो द्विगुणित मन्त्र जप करे। इसके वाद सात वार प्रदक्षिणा करके प्राणायाम करे तथा करन्यास, अंगन्यासपूर्वक माला को सिर पर रखकर जपमाली में सुरक्षित रख देवे।

मुखे मुखन्तु संयोज्य पुच्छे पुच्छं नियोजयेत्।
मुखतः प्रजपेन्मन्त्री पुच्छतो न कदाचन ॥ १९१ ॥
पुच्छतः प्रजपित्वा तु शोकदुःखभयादिकम्।
कृताञ्जलिर्यस्य देवी तस्यापि नरकं किल ॥ १९२ ॥
न सद्गतिर्न वै सिद्धिर्विघ्नस्तस्य सदा भवेत्।
शब्दे जाते भवेद्रोगो धूननं वहुदुःखदम्।
हेलनात् सिद्धिहानिः स्यात्तस्माद् यत्नपरो भवेत् ॥ १९३ ॥

माला[2] के मुख में मुख को तथा पुच्छ में पुच्छ को लगा कर, मंत्र के साधक को चाहिये कि वह मुख से ही जपारम्भ करे, पुच्छ से कदापि नहीं, क्योंकि पुच्छ की ओर से जपने पर शोक, दुःख एवं भय उत्पन्न होता है। यहाँ तक कि जिस पर देवी प्रसन्न हों, वह भी नरकभागी वनता है, तव दूसरे की क्या वात है? अतः पुच्छ से जप करने वालों को न सिद्धि मिलती है, न सद्गति ही। अपितु सर्वदा उसके कार्य में विघ्न ही होता रहता है। जप-काल मे शब्द नहीं होना चाहिये, ध्वनि से भी दु:ख एवं रोग होता है और जप की अवहेलना से सिद्धि में हानि पहुँचती है। इसलिये साधक को बड़े यत्नपूर्वक विधिवत् जपानुष्ठान करना चाहिये ॥ १९१-१९३ ॥

इति मालासंस्कारः।

अथ होमः।

प्रागग्रा उदगग्राश्च तिस्रो रेखा विलेखयेत्।
तन्मध्ये च चतुःकोष्ठं लेपं कुर्याद्विधानतः ॥ १९४ ॥
त्रिकोणमादौ लिख्याथ मध्ये लज्जासमन्वितम्।
वृत्तं ततश्च षट्कोणं कोणवज्रचतुष्टयम् ॥ १९५ ॥
गजकुम्भं वाह्यकोणे द्वारे योनिद्वयं द्वयम्।
अष्टयोनियुतं चक्रं गजकुम्भचतुष्टयम् ॥ १९६ ॥

---

१. एतदर्थ मुद्रामयूख देखिये।

२. तात्पर्य यह कि १०८ मनिया की एक माला होती है। मध्य में सुमेरु होता है। जहाँ से जपारम्भ है, वह मुख तथा अन्त को 'पुच्छ' कहा गया है। "सुमेरुं नैव लंघयेत्" इति स्मृतेः।

पश्चिम से पूर्व को तीन रेखाएँ खींचे तथा उत्तर से दक्षिण को भी तीन रेखाएँ खींच कर चतुष्कोण (वर्गाकार) कुण्ड या वेदी बनावे और उसे गोमय से विधिवत् लीपे। इसके बाद उसी में त्रिकोण बनाकर बीच में[1] 'ह्रीं' बीज लिखे। तत्पश्चात् वृत्त, षट्कोण तथा वज्रचतुष्कोण क्रमशः बनावे। उसके बाह्य कोण में गजकुम्भ और द्वार पर दो-दो योनि निर्माण करे। इस प्रकार वह आठ योनि तथा चार गजकुम्भ से युक्त चक्र बन जायेगा ॥ १९४–१९६ ॥

एवं कुण्डं स्थण्डिलं वा कृत्वा देवीं विभावयेत्।
अग्नौ प्रपूजयेद्विष्णुमैशान्यां शूलधारिणम् ॥ १९७ ॥
वायव्यां चापि ब्रह्माणं नैर्ऋत्यामिन्द्रमेव च।
लक्ष्मीं सरस्वतीं पूर्वे द्वे त्रिकोणे प्रपूजयेत् ॥ १९८ ॥
शचीं कृष्णां चोत्तरस्यां छायां गङ्गाञ्च पश्चिमे।
दुर्गां देवीञ्च त्रिपुटां दक्षिणस्यां प्रपूजयेत् ॥ १९९ ॥

इस प्रकार 'कुण्ड' अथवा 'वेदी' निर्माण करके वहाँ देवी की भावना करे। साथ ही वहाँ चारों दिशाओं में और कोणों में निम्नलिखित देवताओं की पूजा भी करे ॥ यथा—अग्नि कोण में 'विष्णु', ईशान कोण में 'शिव', वायव्य में 'ब्रह्मा' तथा नैर्ऋत्य कोण में 'इन्द्र' की पूजा करे। इसी प्रकार पूर्व में लक्ष्मी तथा सरस्वती की पूजा त्रिकोण बनाकर करे। उत्तर में इन्द्राणी तथा कृष्णा की, पश्चिम में छाया तथा गंगा की और दक्षिण दिशा में त्रिपुरा तथा दुर्गा देवी की पूजा करे ॥ १९७–१९९ ॥

प्रागग्रेषु यजेद्देवान् मुकुन्देशपुरन्दरान्।
यजेद्वा चोत्तराग्रेषु ब्रह्मवैवस्वतेन्दुकान् ॥ २०० ॥
देवीं प्रपूजयेत् पश्चात् षट्कोणेषु सदाशिव !।
दुर्गां काञ्चीं तथा कालीं त्रिपुरां भैरवीं तथा ॥ २०१ ॥
असितां पूजयेत् कोणे तारिणीं मोक्षदायिनीम्।

पूर्वदिशा में विष्णु, शिव, इन्द्र देवता की, उत्तरादि में, ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्रमा की, पूजा करे। तत्पश्चात् हे सदाशिव ! छहों कोणों में देवी की विशेष पूजा करें। वे मोक्षदायिनी ६ देवियाँ इस प्रकार हैं—(१) दुर्गा, (२) काँची, (३) त्रिपुरा, (४) भैरवी, (५) असिता (कृष्णा) तथा तारिणी (तारा) ॥ २००–२०१ ॥

मध्ये प्रपूजयेद्वत्स ! यथाशक्त्युपचारकैः ॥ २०२ ॥

---

१. यह स्मरण रहे कि त्रिकोण कुण्ड में जैसे 'ह्रीं' है, वैसे ही चतुष्कोण वेदी पर अग्निबीज 'रँ' लिखना चाहिये—(आगमात्)

देव्या योनिं विभाव्याथ भावयेच्च रजोयुताम् ।
पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा काष्ठं तत्र निपातयेत् ॥ २०३ ॥

हे वत्स ! उसके बीच में रजोमयी देवीयोनि की भावना करे तथा विधिवत् यथासादित वस्तुओं द्वारा उसकी पूजा करनी चाहिये ॥ तत्पश्चात् तीन पुष्पाञ्जलि प्रदान कर उस कुण्ड में वेदी पर लकड़ी (समिधा) रखे ॥ २०२-२०३ ॥

ततो वह्निं समानीय कांस्यपात्रे स्थितं शुभम् ।
ॐ क्रव्यादेभ्यो हुं फट् स्वाहा इत्यनेन त्यजेद् बुधः ॥ २०४ ॥
पुनर्मूलेन चानीय योनिमध्ये निधापयेत् ।
योनिमुद्रां प्रदर्श्याथ मूलं तत्र जपेद्दश ॥ २०५ ॥
तत्र देवीं चिन्तयित्वा रजसा योनिमण्डलम् ।
गन्धपुष्पेण संपूज्य देवीं सर्वार्थसाधिनीम् ॥ २०६ ॥

इसके वाद कांस्य (फूल) के पात्र में शुभाग्नि लाकर "ॐ क्रव्यादिदिभ्यो हुँ फट् स्वाहा" इस मंत्र से योनि के मध्य में स्थापित करे और वहाँ 'योनिमुद्रा' का प्रदर्शन करके मूल मंत्र का जप करना चाहिये ॥ २०४-२०६ ॥

ॐ चित् पिङ्गल हन हन पच पच मथ मथ विध्वंसय विध्वंसय मम दुष्टान् पापान् सत्त्वान् शत्रून् ग्रस ग्रस पिब पिब अनेन होमेन सर्वाज्ञां ज्ञापय मम सर्वकार्य्याणि साधय स्वाहा इति पठित्वा वह्निं ध्मापयेत् ।

वहाँ पर देवी का ध्यान करके रजोमयी योनिमण्डल की पूजा-अर्चा करे, जो सब मनोरथों को देनेवाली है ।

इसके वाद 'ॐ चित् पिङ्गल हन-हन' इत्यादि से 'साधय स्वाहा' तक गद्यात्मक मंत्र पढ़कर अग्नि को प्रज्ज्वलित करे । तदनन्तर अग्निका ध्यान इस प्रकार करे ।

(ध्यानम्)

रजोगुणसमुद्भूतं रक्तवर्णं त्रिलोचनम् ।
द्विभुजं सर्वपापघ्नं समिद्धं विश्वतोमुखम् ।
नानालङ्कारसंयुक्तं बहुजिह्वासमन्वितम् ॥ २०७ ॥

अर्थात् रजोगुण से उत्पन्न, रक्तवर्ण, त्रिनेत्र, द्विभुज रूपधारी, सब पातकों को नष्ट करनेवाले उस अग्निदेव का हम ध्यान कर रहे हैं—जो सर्वतोभाव से प्रज्वलित हैं तथा अनेक भूषणों से विभूषित एवं अनेक जिह्वावाले[1] हैं ॥ २०७ ॥

---

१. सप्तजिह्वः । सप्तार्चिरिति शेषः ।

एवं ध्यात्वा अग्ने त्वं वरदनामासि इति नाम कृत्वा वरदनामाग्ने इहागच्छ इह तिष्ठ तिष्ठ मम सर्वकर्माणि साधय स्वाहा। इत्यावाहयेत्। ततो मूलेन नमस्कुर्य्यात्। एवम् आज्यस्यापि श्रुवस्य च। आज्यपात्रस्य दक्षिणभागादाज्यं गृहीत्वा मूलेन अग्नेर्दक्षिणनेत्रे जुहुयात्। तथा वामभागादाज्यं गृहीत्वा वामनेत्रे। मध्यतो मध्यनेत्रे। ततो महाव्याहृतिभिः ॐ भूः स्वाहा। ॐ भुवः स्वाहा। ॐ स्वः स्वाहा। ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा। इति स्त्रीशूद्रयोर्विना। ततो मूलेन एकादशाहुतीर्हुत्वा श्रीतारादेव्याः पीठदेवताभ्यः स्वाहा। ततः अक्षोभ्य ऋषये। ततः काम्यकर्म चेत् सङ्कल्प्य नित्यञ्चेन्न तथा। त्रिमध्वन्वितेन प्रकृतहोमं समाप्य स्त्रीशूद्रेतरो महाव्याहृतिभिर्हुत्वा आवरणदेवताभ्यः अष्टाहुतीर्हुत्वा वह्निं गन्धपुष्पमाल्यताम्बूलैरभ्यर्च्य श्रीसदाशिवं पूर्वंश्रुवाहुतित्रयं दत्त्वा मूलेन पूर्णाहुतिं दत्त्वा वह्निं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य काम्यदक्षिणादिः। तिलकन्तु मूलेन संहारमुद्रया क्षमस्वेति विसर्जयेत्। इति होमः॥

इस प्रकार ध्यान करके 'अग्ने! त्वं 'वरद' नामा असि' यह नामकरण करके "वरदनामाग्ने! इहागच्छ, इह तिष्ठ तिष्ठ मम सर्वकर्माणि साधय स्वाहा।" इस मंत्र से आवाहन करे, तत्पश्चात् मूल मंत्र से नमस्कार करे। इसी प्रकार घृत और श्रुव का भी आवाहन करे।

घृतपात्र के दक्षिणभाग से घृत लेकर मूल मंत्र से अग्नि के दक्षिण नेत्र में हवन करे तथा बाम भाग से घृत लेकर बाम नेत्र में हवन करे। इसी प्रकार मध्य भाग से घृत लेकर मध्यनेत्र में होम करे। तत्पश्चात् महाव्याहृतियों से ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा, ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा। केवल द्विजाति मात्र के लिये यह हवन है, स्त्री-शूद्र के लिये नहीं।

इसके बाद मूल मंत्र से ११ आहुति देकर श्री तारा देवी के पीठ-देवताओं के लिये भी होम करे, तत्पश्चात् 'अक्षोभ्य ऋषये' ऐसा कहे। यदि काम्य कर्म हो तो संकल्पपूर्वक तथोक्त होम करे। यदि नित्यहोम हो तो नहीं। 'त्रिमध्वन्वित' इस मंत्र से प्रकृत होम कर्म समाप्त करके स्त्री-शूद्रेतर जन को चाहिये कि वह महाव्याहृति-हवन करके आवरण-देवताओं के लिये आठ आहुति देकर अग्नि को गन्ध-पुष्प-माला-ताम्बूल से पूजा करे। तत्पश्चात् श्रीसदाशिव को पहले तीन श्रुवाहुति देकर मूलमंत्र द्वारा पूर्णाहुति देवे। अन्त में अग्नि की प्रदक्षिणा करके कामनानुसार दक्षिणा देकर मूलमंत्र से तिलक (त्र्यायुषं····) इस मंत्र से करे तथा संहार-मुद्रा दिखाकर 'क्षमस्व' कहते हुए विसर्जन करे।

यत्रास्ते कमला कृताञ्जलिपरा वीणाधरा सारदा
तारावाक्यमनुस्मरन् प्रियतमं वामावचः कारणम् ।
ब्रह्मानन्दकृतौ सुसाधनविधौ तारारहस्ये शुभे
दीक्षाद्यः पटलो द्वितीय इति संसिद्धिप्रदः सत्वरम् ।। २०९ ।।

इति द्वितीयः पटलः समाप्तः ।

जिसमें कृताञ्जलि-युक्त कमला 'लक्ष्मी' हैं, सार (तत्त्व) को देने वाली वीणाधरी 'सरस्वती' हैं। जिसमें तारादेवी के वाक्यों का स्मरण करते हुए वाममार्गानुयायी वचन कारण हैं। ऐसे स्वामी श्री ब्रह्मानन्दजी कृत सुन्दर साधन-विधि वाले "तारा-रहस्य" नामक इस शुभ ग्रन्थ में 'दीक्षा-पटल' नामक यह दूसरा पटल समाप्त हो रहा है, जो शीघ्रमेव सिद्धि प्रदान करता है ।। २०९ ।।

इस प्रकार 'विद्या'व्याख्या-विभूषित तारारहस्य के द्वितीय पटल में
होम प्रकरण समाप्त हुआ ।। २ ।।

—: ० :—

तृतीयः पटलः

(१) अथ मन्त्रविस्मरणप्रायश्चित्तम् ।

तारानिगमे तारार्णवे च । अन्यासां व्यवस्थाऽप्यत्रैव ।

'तारानिगम' तथा 'तारार्णव' ग्रन्थ में अन्य देवियों की पूजा व्यवस्था है । देखिये :—

तत्रादौ मन्त्रविस्मरणे, प्रायश्चित्तम् ।

कालीतारासु विद्यासु यदि स्यान्मन्त्रविभ्रमः ।
तारापूजां ततः कृत्वा चैकलिङ्गे शिवालये ॥ १ ॥
कुशासनस्थितो वीरो जपेत् पद्मावतीमनुम् ।
एकादशसहस्राणि ततो मन्त्रस्मृतिर्भवेत् ॥ २ ॥

काली, तारा आदि के मंत्रों में यदि कहीं भूल हो जाय, तो तारा देवी की पूजा करके किसी एक लिङ्ग शिवालय में कुशासन पर बैठकर वीर साधक 'पद्मावती' नामक मन्त्र का जप करे । एग्यारह हजार मंत्र जप करने से विस्मृत मन्त्र पुनः सुस्मृत हो जाता है ॥ १-२ ॥

कालीतारासु विद्यासु चक्रचिन्ता न विद्यते ।
अरिदोषादिदोषाद्यैर्न लोको लिप्यते क्वचित् ॥ ३ ॥

काली, तारा के मन्त्रों में 'चक्र-चिन्ता' नहीं रहती । वे सब मन्त्र बिना चक्र-सिद्धि के भी सिद्ध होते हैं । इस के उपासक शत्रु-दोषादि दोषों से भी कहीं लिप्त नहीं होते ॥ ३ ॥

यदि भाग्यवशाद्देवि ! तारामन्त्रं प्रलभ्यते ।
ऋणधन्यादिकं चक्रं न च तत्र परीक्षयेत् ॥ ४ ॥

इसलिये हे देवि ! सौभाग्यवश यदि कहीं तारा मंत्र प्राप्त हो जाय, तो वहाँ कभी 'ऋणी-धनी' आदिक चक्र की भी परीक्षा नहीं करनी चाहिये ॥ ४ ॥

ताराविद्या चक्रमध्ये न कदाचिद्धनी भवेत् ।
महाचीनक्रमं प्राप्य सर्वस्यैव ऋणी भवेत् ॥ ५ ॥
तस्माद्देव्याश्च तारायाः प्राणान्तेऽपि च साधकः ।
साधने पूजने वापि महाचीनं त्यजेन्न च ॥ ६ ॥

क्योंकि तारामन्त्र चक्रमध्य में पड़ने पर कभी धनी नहीं होता। हाँ! महाचीन-क्रम (चीन पद्धति) पाकर सबका ही वह ऋणी हो जाता है। इसलिये साधक को चाहिये कि प्राणान्त होते समय भी तारादेवी के साधन या पूजन में कभी महाचीन का परित्याग न करे ॥ ५-६ ॥

महाचीनं महानीलं न साधयति यो नरः।
न तस्य साधने शक्तिः कुम्भीपाके महीयते ॥ ७ ॥
वामाचारं परित्यज्य पूजनं वा जपं चरेत्।
स गच्छेन्नरकं घोरं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ८ ॥

क्योंकि जो मनुष्य 'महाचीन' और 'महानील' मन्त्र का साधन नहीं करता, उसके किसी मंत्र के साधन में शक्ति प्राप्त नहीं होती. अपितु ऐसे साधक कुम्भीपाक नरक में पड़ते हैं। सुतराम् वामचार को त्याग कर जो कोई साधक जप-पूजन करता है, वह भयंकर नरक-कुण्ड में तब तक रहता है, जब तक चौदहों इन्द्र का राज्य रहता है ॥ ७-८ ॥

वामाचारं विना देवि! तारायाः परिपूजनम्।
शोकाय मरणायेह परे च नरकाय च ॥ ९ ॥

यहाँ तक कि हे देवि! वाममार्ग के विना तारादेवी का जो पूजन करता है, उसे यहाँ शोक, एवं मरण प्राप्त होता है और मरने पर नरक मिलता है ॥ ९ ॥

न पूजा न जपो यस्य न सन्ध्या न च तर्पणम्।
महाचीनक्रमं कृत्वा स गच्छेत्तारकापदम् ॥ १० ॥

यदि कदाचित् कोई पुरुष न जप करता है, न पूजा ही करता है, जो न सन्ध्या करता है न तर्पण। यह भी केवल महाचीन[1] पद्धति का अनुसरण करके सर्वोत्तम तारा-धाम को प्राप्त करता है ॥ १० ॥

पञ्चतत्त्वं विना देवि! ब्राह्मणः शूद्रतामियात्।
पञ्चतत्त्वयुतो देवि! शूद्रोऽपि विप्रतां व्रजेत् ॥ ११ ॥

हे देवि! पञ्चतत्त्व[2] के मर्म को जाने विना ब्राह्मण भी शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है। इसके विपरीत शूद्र भी यदि पञ्चतत्त्व-मर्मज्ञ हो जाय तो वह भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

---

१. महाचीन पद्धति—यह चीन देशीय किंवा तिब्बती प्रदेशीय पद्धति है—बुद्ध ने इसका खण्डन किया है, क्योंकि यह अवैदिक पद्धति है।

२. 'पञ्चमकार' से तात्पर्य है।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैवान्त्यजास्तथा ।
महाचीनक्रमं कृत्वा शिवः साक्षाद्भवेत् स्वयम् ॥ १२ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्त्यज (हरिजन) भी महाचीनक्रम को करके स्वयं साक्षात् 'शिव' बन जाता है ॥ १२ ॥

कौलं दृष्ट्वा यदा कौलस्तस्य पूजां न कारयेत् ।
चक्रे स्थित्वाऽथवा मन्त्री लतायोगं समाचरेत् ॥ १३ ॥
मध्ये चक्रे स्थितः कौलः शक्तिभ्यः साधकाय च ।
दातुं नैव मनश्चक्रे स्वयं नेतुं प्रवर्त्तते ॥ १४ ॥
अथवा दिवसं प्राप्य कुलपूजां चरेन्न च ।
साधकानपि शक्तिश्च स्वेच्छाचारैर्न तोषयेत् ॥ १५ ॥
प्रसन्नमनसा वापि सत्कौलाय प्रदीयते ।
स्वयं स्वीयकुलैः सार्द्धं क्रियते च कुलक्रिया ॥ १६ ॥
तस्य यन्त्रश्च माला च पूजापद्धतिरेव च ।
धारितं कवचं तस्य ह्रीयते योगिनीगणैः ॥ १७ ॥

कौल[1] को देखकर जब कोई कौल उसकी पूजा न करे । अथवा चक्र में स्थित होकर कोई मंत्रज्ञ साधक लतायोग का आचरण करे । किंवा चक्र-मध्य में स्थित कौल शक्तियों तथा साधकों के लिये कुछ देने की इच्छा न करे, अपितु स्वयं लेने की ही कामना करे । अथवा समय पाकर भी कुल-पूजा न करे तथा शक्ति भी साधकों के प्रति स्वेच्छाचार से न सन्तुष्ट करे । अथवा प्रसन्नचित्त होकर भी सत्कौल को यदि कुछ नहीं देता, और अपने ही कुलों के साथ कुलक्रिया यदि वह स्वयं ही करता है, तो उसका यन्त्र, माला और पूजापद्धति भी तथा उसके धारण किये कवच (मंत्र-स्तोत्र) भी योगिनीगण अपहृत कर लेते हैं; क्योंकि उस साधक ने साधकोचित काम नहीं किया ॥ १३–१७ ॥

वह्निना दह्यते वापि जले वापि प्रलीयते ।
चौरैर्वा नीयते किञ्चित् किञ्चिद्वा योगिनीगणैः ॥ १८ ॥

यही नहीं, यदि कौल साधक चक्र-पद्धति के विरुद्ध आचरण करता है, तो उसकी सारी सामग्री (सारे साधन) अग्नि में जल जाते हैं, अथवा जल में लीन हो जाते हैं । अथवा कुछ चोर ले भागते हैं, किंवा योगिनीगणों द्वारा अपहृत हो जाते हैं ॥ १८ ॥

---

१. कौलः = ब्रह्मज्ञानी, तथाहि—
'दिव्यभावरत. कौलः सर्वत्र समदर्शनः ।' —कुलार्णवतन्त्रम्

एवञ्चेञ्जायते वत्स ! यन्त्रादिह्हरणं शिव ! ।
पञ्च कौलान् समानीय कुमारीञ्च विशेषतः ॥ १९ ॥
गन्धाक्षतैश्च संपूज्य वन्दयेच्छिरसा नतः ।
होमं कुर्य्यात् सहस्रन्तु चक्रमध्ये सुसाधकः ॥ २० ॥
अष्टोत्तरशतं कुर्य्यात्तर्पणं साधकोत्तमः ।
दग्धमीनासवेनापि सर्वदोषैर्न लिप्यते ॥ २१ ॥
यन्त्रादिनाशे चैतत्तु प्रायश्चित्तं शिवोक्तितः ।
प्रजपेद् वर्णमालाभिरष्टोत्तरशतं मतम् ॥ २२ ॥

हे वत्स ! शिव ! इस प्रकार अनधिकारी साधक के यंत्रादि सभी साधन नष्ट हो जाते हैं—असिद्ध हो जाते हैं। उस समय साधक को चाहिये कि प्रायश्चित्त के रूप में पाँच कौलों किंवा विशेषकर कुमारियों को सादर बुलाकर गन्धाक्षत द्वारा उनकी पूजा करके सिर से नत होकर उन्हें प्रणाम करे। अच्छे साधक चक्र के मध्य में ही सहस्र होम करें तथा १०८ बार विधिवत् तर्पण करें। अर्थात् सिद्ध मीनासव से तर्पण करने पर सब दोषों से वह रहित हो जाता है। यंत्रादि नष्ट होने पर यह प्रायश्चित्त-विधान शिवजी ने स्वयं कहा है कि वर्णमात्रिका की माला से १०८ बार जप करने से सब पातक दूर हो जाते हैं, यह शैव मत है ॥ १९–२२ ॥

इति 'विद्या'व्याख्याविलसिते तारारहस्ये प्रायश्चित्त-नामकं
प्रथमं प्रकरणम् ॥ १ ॥

—: ० :—

(२) अथ पञ्चतत्त्वसंस्कारः ।

लाक्षारुणगृहे वापि कामाख्यावदने जनः ।
सर्वं शृङ्गारवेशञ्च कुर्य्यात् साधकसत्तमः ॥ २३ ॥
सिन्दूरं कुङ्कुमं वापि धारणं कुलचन्दनम् ।
वामभागकृता शक्तिः सर्वाभरणशोभना ॥ २४ ॥

साधकोत्तम जन को चाहिये कि लाक्षारस के समान लाल गृह में अथवा कामाख्यादेवी[1] के मुख में (योनिस्वरूपा देवी को) सब प्रकार का शृंगार करे। अर्थात् सिन्दूर, कुंकुम, रक्तचन्दन लगाकर सजावे। तब सब प्रकार के भूषणों से सुशोभित शक्ति को अपने वाम भाग में रखे ॥ २३–२४ ॥

---

१. 'कामाख्या' देवी (आसाम में है) की महाचीन पद्धति के अनुसार उपासना विहित है।

गन्धपुष्पाक्षतैस्तान्तु पूजयित्वा तु साधकः।
षट्कोणं बिन्दुसंयुक्तं वृत्तञ्चापि त्रिकोणकम् ॥ २५ ॥
पुनर्वृत्तं चतुष्कोणं कुङ्कुमेन विलेखयेत्।
रक्तचन्दनसंलिप्तं रक्तवस्त्रेण वेष्टयेत् ॥ २६ ॥
मूलमन्त्रेण संवीक्ष्य योनिमुद्रां प्रदर्शयेत्।
देवतां भावयेत्तत्र परमानन्दरूपिणीम् ॥ २७ ॥

तत्पश्चात् साधक उस शक्ति की गन्ध-पुष्पाक्षतों से पूजा करके बिन्दुयुक्त षट्कोण लिखे, उसके भीतर वृत्त और त्रिकोण यंत्र लिखे। फिर उसके वाहर भी वृत्त वनाकर चतुष्कोण (वर्गाकार) वनावे। मह यंत्र कुंकुम से क़ागज या भोजपत्र पर लिखे। फिर रक्त चन्दन-चर्चित उस यंत्र को लाल कपड़े में बांध देवे। तव मूल मंत्र पढ़कर उसे देख लेवे। यहाँ योनिमुद्रा प्रदर्शन करे। तत्पश्चात् परमानन्दरूपिणी देवी (इष्टदेवता) की भावना करे ॥ २५–२७ ॥

प्रणमेत् पञ्चमुद्राभिः कारणाधारमुत्तमम्।
ह्रीं नमो योनिमुद्रादौ क्षं नमश्च कृताञ्जलौ ॥ २८ ॥
ब्लुं नमः कुलमुद्रायां ग्लौं नमो मत्स्यरूपके।
ह्रौं नमः संपुटाकारे पञ्च मुद्राः समीरिताः ॥ २९ ॥

साथ ही उस उत्तम कारणाधार (यंत्र) को पाँच मुद्राएँ दिखाकर प्रणाम करे। यथा—(१) योनिमुद्रा में 'ह्रीं नमः', (२) कृताञ्जलि मुद्रा में 'क्षं नमः', (३) कुलमुद्रा में 'ब्लुं नमः', (४) मत्स्यमुद्रा मे 'ग्लौं नमः' तथा (५) सम्पुटाकार मुद्रा में 'ह्रौं नमः' कहे। ये पाँच मुद्राएँ कही गई हैं ॥ २८–२९ ॥

प्रोक्षयेन्मूलमन्त्रेण धूपयेत्तेन कारणम्।
गन्धपुष्पं ततो दत्त्वा प्राणायामं समाचरेत् ॥ ३० ॥

इसके वाद मूलमंत्र से प्रोक्षण तथा उसी मंत्र से कारणस्वरूप यंत्र को धूप दिखावे। तदनन्तर गन्ध-पुष्प दिखाकर प्राणायाम करना चाहिये ॥ ३० ॥

ऋष्यादिन्यासं कृत्वा तु कराङ्गञ्च षडङ्गकम्।
वर्णन्यासं ततः कृत्वा पञ्चमुद्राः प्रदर्शयेत् ॥ ३१ ॥
धेनुं योनिञ्च मत्स्यञ्च शङ्खं खड्गमतः परम्।
हस्तं दत्त्वा ततः पात्रे पठेन्मन्त्रमनुत्तमम् ॥ ३२ ॥

इसके वाद ऋष्यादि न्यास और कराङ्ग न्यास तथा षडङ्ग न्यास एवं वर्ण-न्यास करके पुनः पंचमुद्रा प्रदर्शन करे। अर्थात्—(१) धेनु, (२) योनि,

(३) मत्स्य, (४) शङ्ख तथा (५) खड्ग मुद्राएँ दिखाकर उस पात्र पर हाथ रखकर यह उत्तम मंत्र पढ़े ॥ ३१-३२ ॥

ॐ एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् ।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम् ॥ ३३ ॥
ॐ सूर्यमण्डलसम्भूते ! वरुणालयसम्भवे ! ।
अमाबीजमयि ! देवि ! शुक्रशापाद्विमुच्यताम् ॥ ३४ ॥

मंत्रार्थ—वह ॐ स्वरूप एक ही परब्रह्म है—जो स्थूल-सूक्ष्म दोनों है, और अटल है, उसी मंत्र से मैं तेरी कचोत्पन्न[1] ब्रह्महत्या का नाश कर रहा हूँ ।

तू ॐ स्वरूप सूर्यमण्डल से उत्पन्न तथा सागर-सम्भवा है । इसलिये हे अमाबीजमयी देवि ! मुझे तुम शुक्र-शाप से मुक्त करो ॥ ३३-३४ ॥

ॐ देवानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि ।
तेन सत्येन देवेशि ! ब्रह्महत्यां व्यपोहतु ॥ ३५ ॥

यदि 'ॐ' देवताओं का प्रणव एवं आनन्दमय बीज है तो हे सुरेश्वरि ! उसी सत्य के प्रताप से मेरी ब्रह्महत्या को नष्ट करो—दूर करो ॥ ३५ ॥

ॐ वां वीं वूं वैं वौं वः ब्रह्मशापविमोचितायै सुधादेव्यै नमः । इति दशधा जपेत् ।

इस के बाद "ॐ वां वीं वूं वैं वौं वः ब्रह्मशापविमोचितायै सुधादेव्यै नमः ।" इस मंत्र को १० बार जपना चाहिये ।

ॐ क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः । सुधादेव्याः कृष्णशापं मोचय मोचय अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा । इति दशधा जपेत् ॥ ॐ छ्रां छ्रीं छ्रूं छ्रैं छ्रौं छ्रः छुरिका भवशांभिनि सर्वपशुजनमनश्चक्षुरिन्द्रियाणि स्तम्भय स्तम्भय नाशय नाशय घातय घातय इति त्रिः ॥ ॐ परमस्वामिनि ! परमाकाशशून्यवाहिनि ! चन्द्रसूर्याग्निभक्षिणि ! पात्रं विश विश स्वाहा । इति त्रिः ।

"ॐ क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः" इत्यादि[2] मंत्र को १० बार जपे । "ॐ छ्रां छ्रीं छ्रूं छ्रैं छ्रौं छ्रः"—इस मन्त्र का तीन बार उच्चारण करे । अन्त में "ॐ परमस्वामिनि ! परमाकाशशून्यवाहिनि ! चन्द्रसूर्याग्निभक्षिणि ! पात्रं विश विश स्वाहा ।" इसे भी तीन बार पढ़े ॥

---

१. 'कचोद्भव' इत्यादि पाठान्तरम् ।
२. 'ककारो रेफसंयुक्तः षड्दीर्घेन्दुचन्द्रसंयुतः ।' इत्युक्तेः ।

अथ ध्यानम्

तन्मध्ये भावयेद्देवीममृतानन्दरूपिणीम् ।
सूर्य्यकोटिप्रतीकाशां चन्द्रकोटिसुशीतलाम् ॥ ३६ ॥
रक्तवस्त्रपरीधानां सर्वालङ्कारभूषिताम् ।
रत्नकेयूराङ्गदाद्यैः शोभितां सर्वरूपिणीम् ॥ ३७ ॥

इति ध्यानम् ।

उस यंत्र के मध्य में अमृतानन्द-स्वरूपिणी उस देवी की भावना इस प्रकार करे—जो करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशवाली तथा करोड़ों चन्द्रमा के समान शीतल कान्ति युक्त हैं, जो लाल वस्त्र धारण कर रही हैं और सब प्रकार के भूषणों से विभूषित हैं, जिनकी भुजाओं में रत्नजटित केयूर एवं बाजूबन्द शोभा पा रहे हैं, जो सर्व-स्वरूपिणी हैं ॥ ३६-३७ ॥

विधातव्यं सुधामध्ये साधनञ्च सुसाधकैः ।
पूजयेद्बिल्वपत्राद्यैरमृतानन्दनन्दिनीम् ॥ ३८ ॥

अच्छे साधकों को सुधा-मध्य में ही साधना करनी चाहिये । साथ ही बिल्वपत्रादिकों[1] से उस अमृतानन्ददायिनी देवी की पूजा करनी चाहिये ॥ ३८ ॥

तन्मध्ये भावयेद्देवं भैरवं भैरवीप्रियम् ।
अमृतार्णवमध्यस्थं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ॥ ३९ ॥
वृषारूढं नीलकण्ठं सर्वाभरणभूषितम् ।
अष्टादशभुजैर्युक्तं [2]गदामुषलधारिणम् ॥ ४० ॥
खड्गखेटकपट्टीशमुद्गरं शूलदण्डकम् ।
पाशाङ्कुशशरं चापं मुद्रां विद्याञ्च मालिकाम् ॥ ४१ ॥
मृगं कपालं नागञ्च विधृतं सर्वरूपिणम् ।
जटामण्डलमध्यस्थं सुधामध्ये विभावयेत् ॥ ४२ ॥

---

१. 'पत्रेषु बिल्वपत्रं तु देव्याः प्रीतिकरं परम्' इत्युक्तेः ।

२. सुधा-सिन्धु-मध्य दिव्य, पञ्चमुखी नेत्रत्रयी,
वृषारूढ नीलकण्ठ सदाशि रूप हैं ।
अष्टादश बाहुओं में [1]पाशां[2]कुश-चाप[3]शर[4]
मुद्गर[5] त्रिशूल[6] दण्ड[7] पट्टी[8] अनुरूप हैं ॥
गदा[9] पद्म[10] मूसल[11] सुखड्ग[12] खेटकादि[13] लिये,
विद्या[14] मृग[15] मुद्रा[16] नाग[17] मालिका अनूप हैं ।
विविध विभूषण विभूषित 'द्विजेन्द्र' कहैं,
जटा जूटधारी शिव 'भैरव' स्वरूप हैं ॥

उसी सुधासागर में भैरवीप्रिय भैरव देव का भी ध्यान करे और मन में ऐसी भावना करे कि सुधासागर के बीच में पञ्चवदन, त्रिनयन शिव विराजमान हैं, जो वृषारूढ, नीलकण्ठ एवं सब भूषणों से विभूषित हैं। जिनके अठारह भुजाएं हैं, जो गदा-मुसल धारी हैं, जो अपनी भुजाओं में खड्ग, खेटक, पट्टीश, मुद्गर, शूल, दण्ड, पाश, अंकुश, धनुष, बाण, मुद्रा, विद्या, मालाएँ, मृग, कपाल, सर्प, धारण किये हैं। जिनका सिर जटामण्डल-विमण्डित है—ऐसे देवदेव महेश्वर का सुधासागर में ध्यान करे तथा गन्ध-पुष्पादि से विधिवत् पूजन करे ॥ ३९-४२ ॥

ॐ आनन्देश्वराय विद्महे सुधादेव्यै धीमहि तन्नोऽर्द्धनारीश्वरः प्रचोदयात् ॥ इति दशधा जपेत्। तदुपरि मूलं एकविंशतिवारं वं इति सुधाबीजं एकविंशतिवारं च जपेत्। मूलेन त्रिगन्धं गृह्णीयात्।

"ॐ आनन्देश्वराय विद्महे, सुधाब्धये धीमहि तन्नोऽर्द्धनारीश्वरः प्रचोदयात्।" इस मन्त्र को १० बार जपे। तत्पश्चात् मूलमंत्र को २१ बार तथा 'वं' इस सुधा बीज को २१ बार जपे। साथ ही मूल मन्त्र से त्रिगन्ध को ग्रहण करे।

सुधामध्ये लिखेद् योनिं योनिमध्ये ह्लीं ततः।
तन्मध्ये भावयेद्देवीं तारिणीं सिद्धिदायिनीम् ॥ ४३ ॥

सुधा-मध्य में योनि 'त्रिकोण' तथा योनि के मध्य में हली ह्लीं और उसके बीच में सिद्धिदायिनी तारा देवी का ध्यान करे ॥ ४३ ॥

स्ववामे लेखयेद् विद्वान् बिन्दुयुक्तं मनोहरम्।
त्रिकोणं बाह्यवृत्तञ्च षट्कोणं वृत्तमेव च ॥ ४४ ॥
अष्टकोणं लिखेद्भद्रं मूलेन परिपूज्य च।
श्रीपात्रं तत्र संस्थाप्य सुधां तत्र समानयेत् ॥ ४५ ॥
स्वल्पपात्रे ततो नीत्वा सुधां किञ्चित् समानयेत्।
पात्रान्तरगृहीतञ्च शुद्धञ्चापि निवेदयेत् ॥ ४६ ॥

चतुर साधक अपने बाम भाग में एक बिन्दुयुक्त सुन्दर त्रिकोण लिखे। उसके बाहर वृत्त तथा षट्कोण बनावे। तत्पश्चात् पुनः वृत्त तथा अष्टकोण लिखे, जो सुन्दर और शुद्ध हो। फिर मूलमंत्र से उस को पूजा कर वहाँ श्रीपात्र रखे, उसमें सुधा भर देवे, उसमें से किसी छोटे पात्र (प्याले) में कुछ सुधा रखकर अन्यपात्र ग्रहण करके उस विशुद्ध सुधा को अर्पण करे—भोग लगावे ॥ ४४-४६ ॥

ॐ सर्वपथिकदेवता मम कल्याणं कुर्वन्तु ह्रौं च्रौं स्वाहा ॥ इति पठित्वा बृहत्पात्रोपरि त्रिः परिभ्रामयित्वा श्रीपात्रे भ्रामयित्वा बिल्वमूले

चतुष्पथे नद्यां तडागे वेश्यागारे वा क्षिपेत् ॥ ततस्तत्र देवीं समावाह्य स्वकल्पोक्तविधिना परदेवतां संपूज्य सामान्यार्घ्यं विशेषार्घ्याद्यैः ।

"ॐ सर्वपथिकदेवता मम कल्याणं कुर्वन्तु ह्रीं क्षौं स्वाहा" मह मन्त्र पढ़कर बृहत्पात्र में तीन बार घुमाकर—श्री पात्र में भी—घूमाकर उसे विल्वमूल में, चौराहे पर, नदी, तालाब या वेश्यागृह में छोड़ देवे। उसके बाद देवी का आवाहन करके अपने कल्पोक्त विधि से परदेवता की पूजा कर, सामान्य तथा विशेष अर्घ्य प्रदान करे।

ततो भावयेच्च देवीममृतानन्दनन्दिनीम् ।
सदा षोडशवर्षीयां प्रसन्नास्यां त्रिलोचनाम् ॥ ४७ ॥

रक्ताभरणशोभाढ्यां नानालङ्कारभूषिताम् ।
कामदेवेन चोन्मत्तां कन्यकारूपधारिणीम् ॥ ४८ ॥

सदाशिवमयीं देवीं रत्युल्लासहृदान्विताम् ।
महामोदप्रदां देवीं भावयेत् साधकाग्रणीः ॥ ४९ ॥

इसके बाद अमृतानन्दवर्षिणी देवी की भावना करे। अर्थात् उस समय देवी को सर्वदा षोडशवर्षीया, प्रसन्नवदना एवं त्रिनयनाके रूपमें, लाल वस्त्र पहने, अनेक भूषणों से विभूषित, समझे, साथ ही कामदेव द्वारा उन्मत्त एवं कन्यारूपधारिणी सदाशिवमयी हैं तथा रति-विलासयुक्त हृदयवाली, महामोद-प्रदायिनी उस भगवती चक्रस्थ देवी[1] का साधकोत्तम सदा ध्यान करे ॥ ४७-४९ ॥

ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा तत्तत्कल्पोक्तन्यासादिकं कृत्वा कुङ्कुम-कर्पूरगन्धचन्दनैर्नानानन्दजनकपरदेवताया मन्त्रं तत्र श्रावयेत् । द्रव्याणि दापयेत् । ततः कृताञ्जलिः ।

ध्यान-पूजन के बाद पुष्पाञ्जलि देकर अपने-अपने सम्प्रदायानुसार कल्पोक्त विधि से अङ्गन्यास आदि भी करें। तत्पश्चात् कुंकुम-कपूर सहित गंधचन्दनादि से पूजा करके अनेक प्रकार के आनन्ददायक परदेवता का मंत्र वहाँ सुनावे। दक्षिणा द्रव्य भी दिलावे, तब हाथ जोड़कर साधक भावना करे—

ॐ नमस्तस्यै सुधादेव्यै तारकासिद्धिदायिनम् ।
मात्रे पुण्यप्रदायै च भुक्त्यै मुक्त्यै महेश्वरीम् ॥ ५० ॥
भावयित्वा महादेवं कामेश्वरीं विशेषतः ।

---

१. श्रेष्ठ साधक बड़ी सावधानी से चक्रस्थ देवता का ध्यान एवं सम्मान करें। तथा 'देवीं भूत्वा देवीं यजेत्' का स्मरण रखें।

माता कामेश्वरी देवी पिता कामेश्वरश्च सः ॥ ५१ ॥

उस सुधा देवी को प्रणाम है—ऐसा कहकर तारा मन्त्र में सिद्धि देने वाले महादेव की तथा भुक्ति-मुक्ति स्वरूपिणी पुण्यप्रदा जननी को प्रणाम करके महेश्वरी देवी की भावना करके यह समझे कि कामेश्वरी देवी माता हैं और कामेश्वर देव पिता हैं ॥ ५०-५१ ॥

द्वयोर्योगं विभाव्याथ पूजयेत् परदेवताम् ।
कालिकां तारकां वापि योऽर्चयेत् स नरोत्तमः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार दोनों में एकता की भावना करके परदेवता की पूजा करे अथवा जो साधक उक्त रीति से कालिका या तारा देवी की अर्चना करता है, वह श्रेष्ठ मनुष्य है ॥ ५२ ॥

महाचीनक्रमेणैव एतदेव हि शोधनम् ।
ये च मूढाश्चरन्त्यन्यां तेषां सर्वं वृथा भवेत् ॥ ५३ ॥

इति तत्त्वसंस्कारः ।

महाचीन-पद्धति के अनुसार यही शोधन प्रकार है । अतः जो मूढ अन्य पद्धति का आचरण करते हैं, उनकी सभी क्रियाएँ व्यर्थ होती हैं ॥ ५३ ॥

इति 'विद्या'व्याख्याविलसिते तारारहस्ये पञ्चतत्त्वसंस्कार-नामकं
द्वितीय-प्रकरणम् ॥ २ ॥

—: ० :—

(३) अथ शक्तिसाधनं तृतीय-प्रकरणम्

मांसं तत्र समानीय शोधयेन्मूलमन्त्रतः ।
साधयेत् परया भक्त्या मन्त्रमेतत् समुच्चरन् ॥ ५४ ॥

वहाँ पर मांस लाकर मूल मन्त्र से शुद्ध करे । तब परम भक्ति के साथ उसे सिद्ध करे । उस समय यह मन्त्र उच्चारण करे ॥ ५४ ॥

ॐ तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥

मायारहित जागरणशील ब्राह्मण उस पद को प्राप्त करता है, जो विष्णु का परम पद कहलाता है ।

ॐ कोलमांसं महामांसं मांसं छागादिकस्य च ।
योषावर्जं सर्वमांसं तारायाः शुद्धिहेतवे ॥ ५५ ॥

जङ्गली सूअर का मांस 'महामांस' है और छागादि का मांस लघुमांस' है। तारा देवी के लिये योषा को छोड़कर सभी मांस ग्राह्य है ॥ ५५ ॥

परमानन्दद‌ञ्चैव मांसं परमकारणम् ।
तारायाश्च प्रियं द्रव्यं सर्वदोषविवर्जितम् ॥ ५६ ॥

परम आनन्द देने वाला मांस ही तारा देवी का परम प्रिय एवं दोषरहित पूजा द्रव्य है ॥ ५६ ॥

ॐ ह्रौं त्रौं मांसं महामांसं शोधय शोधय ॐ ह्रौं त्रौं स्वाहा ॥

इति मांसशुद्धिः ।

तथा हिरण्यरूपं च विष्णुरूपिणमण्डजम् ।
महाहिवलयं देवं मत्स्यरूपिणमव्ययम् ।
महामहेति विख्यातं मीनं ताराप्रियं सदा ॥ ५७ ॥

हिरण्यरूप, विष्णुरूपी, अण्डज, महासर्प-बलयवाले एवं अव्यय मत्स्यरूपी देव—जो 'महामहा' इस नाम से विख्यात हैं—ऐसा मीन सर्वदा ताराप्रिय होता है ॥ ५७ ॥

ॐ ह्रीं क्लीं मौं व्लं सः सः सः इमं मीनं शोधय शोधय स्वाहा ॥

इति मीनशुद्धिः ।

योनिमुद्रां ततो बद्ध्वा दृष्ट्वा च योनिमुद्रिकाम् ।
पठेदिमं मनुं वत्स ! सर्वकर्मसुसिद्धये ॥ ५८ ॥

इसके बाद योनिमुद्रा बाँध और योनिमुद्रिका को दिखाकर हे वत्स ! सव कार्यों की सिद्धि के लिये इस मन्त्र को पढ़े ॥ ५८ ॥

योनिविद्यां महाविद्यां कामाख्यां कामदायिनीम् ।
कामसिद्धिप्रदां देवीं कामबीजादिकां पराम् ॥ ५९ ॥

योनि विद्या महामंत्र स्वरूप है, वही काम देने वाली 'कामाख्या' नाम से प्रसिद्ध है—ऐसी कामबीजस्वरूप कामसिद्धिप्रदा उस परादेवी को प्रणाम है—ऐसा ध्यान करे ॥ ५९ ॥

ॐ क्लीं कामेश्वरि ! महामाये क्लीं कालिकायै नमः ॥
ॐ योनिविद्यां महाविद्यां चतुर्वर्गप्रदायिनीम् ।
कलाकलासु विज्ञानं तारानामतरोर्मते ॥ ६० ॥

योनिविद्या महाविद्या है—यह चारों पदार्थों को देनेवाली है, प्रत्येक कलाओं की विज्ञानरूपा है—यह तारानाम कल्पतरु है—ऐसा माना गया है ॥ ६० ॥

ॐ त्रौं व्लुं ह्रौं ह्रः ।

योनिविद्ये योनिसिद्धे योनिकारणकारिके ! ।
कामदाकामदा ज्ञेया तत्त्वमध्ये महामहा ॥ ६१ ॥

हे योनिविद्ये ! हे योनिसिद्धे !! हे योनिकारणस्वरूपे !!! आप ही तत्त्वों में सबसे श्रेष्ठ हैं। इस प्रकार कामदा देवी को 'कामदा' यथार्थनाम जानना चाहिये ॥ ६१ ॥

ॐ सौं बाले बाले त्रिपुरसुन्दरि योनिरूपे ! मम सर्वसिद्धिं देहि देहि योनिमुद्रां कुरु कुरु स्वाहा। इति मुद्राशुद्धिः।

ततः शक्तिशोधनम्। ॐ ऐं क्लीं त्रिपुरदेवि ! सर्वशक्तिके ! शिवत्वं देहि देहि ॐ औं इति तस्याः शीर्षे दशधा जप्त्वा तस्या देहे मातृकान्यासं कृत्वा ऋष्यादिन्यासं कराङ्गन्यासौ च विन्यसेत्। मूलं तद्धृदये शतं जपेत्।

इति शक्तिसंस्कारः।

उपर्युक्त मन्त्र को उस देवी के सिर पर दस बार जप कर उसके शरीर में मातृकान्यास करके ऋष्यादि-न्यासपूर्वक करन्याम-अंगन्यास भी करे। साथ ही उसके हृदय में मूलमंत्र सौ बार जपे।

मूलं चोक्त्वा स्ववामे तु त्रिकोणं विलिखेद् बुधः।
तत्र मध्ये लिखेल्लज्जां कामतत्त्वस्वरूपिणीम् ॥ ६२ ॥
तत्र पूजा विधातव्या गन्धपुष्पाक्षतैरपि।
साधकांश्चापि शक्तींश्च प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ ६३ ॥
लज्जापूर्वं जलं दत्त्वा चाज्ञां नीत्वा तु साधकात्।
तर्पयामीति चोक्त्वा तु तर्पयस्व समानयन् ॥
वामहस्तानामिकयाऽप्यङ्गुष्ठयोगमाश्रयेत् ॥ ६४ ॥

स्ववाम भाग में जो मूल मंत्र कहा गया है, चतुर साधक वही त्रिकोण पुनः लिखे। उसके बीच में लज्जा बीज 'ह्रीं' लिखे—जो कामतत्त्व-स्वरूपिणी है। उसमें गन्ध, पुष्पाक्षत से पूजन करे। तब साधकों और शक्ति को भी बार-बार प्रणाम करके ह्रीं पूर्वक जल देकर तथा साधक से आदेश लेकर 'तर्पयामि' यह कहकर आदरपूर्वक तुम भी 'तर्पण करो'—ऐसा कहते हुए बाएँ हाथ की आनामिका अंगुली को अँगूठे में जुटा कर मुद्रा प्रदर्शन करे ।।६२-६४।।

ह स क्ष म ल व र यूं आनन्दभैरवीं तर्पयामि स्वाहा इति शुद्धयुक्तासवेन ब्रह्मरन्ध्रे त्रिस्तर्पयेत्। एवं गुरुं परमगुरुं परापरगुरुं ह स क्ष म ल व र यूं आनन्दभैरवं स्वाहा इति त्रिः। ततो हृदये तद्रूपेण मूलमुच्चार्य्य भीमामेकजटां परमपददात्रीं तारादेवीं तर्पयामि स्वाहा। एवं सर्वत्र देवीविषये। तथा च तारानिगमे—

वहाँ "ह स क्ष म ल व र यूं" आनन्दभैरवीं तर्पयामि स्वाहा।" ऐसा कहकर शुद्धासव से ब्रह्मरन्ध्र में तीन बार तर्पण करे। इसी प्रकार 'गुरु', 'परमगुरु', 'परापरगुरु' तथा 'परमेष्ठिगुरु' को भी 'ह स क्ष म ल व र यूं" आनन्दभैरवीं तर्पयामि स्वाहा" कह कर तीन बार तर्पण करे। तत्पश्चात् हृदय में पूर्ववत् मूल मंत्र का उच्चारण करके "भीमामेकजटां परमपददात्रीं तारादेवीं तर्पयामि स्वाहा" कहे। इसी प्रकार सर्वत्र देवी के विषय में जानना चाहिये। तथापि तारा निगम में—

तर्पयेत्तु यदा तारां तर्पयेत् कालिकां पराम्।
तर्पयेत् षोडशीं देवीं ह्यन्यथा निष्फला क्रिया॥ ६५॥

जब तारा, कालिका, परा एवं षोडशी देवी का तर्पण करे तभी सफलता मिलती है अन्यथा सभी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं॥ ६५॥

यत्ते काली परा प्रोक्ता सा तारा परिकीर्त्तिता।
सैव श्रीषोडशी देवी महात्रिपुरसुन्दरी॥ ६६॥
अभेदं भावयेद् यस्तु स एव श्रीसदाशिवः।
अन्यथा भावयेद् यस्तु स मूढोऽभून्महेश्वर!॥ ६७॥
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले यः पादयुगमाश्रयेत्।
स भवेत् कल्पवृक्षश्च महामोक्षानुकूलकः॥ ६८॥

यह जो काली, परा, तारा तथा षोडशी देवी कही गयी है। उनमें कोई भेद नहीं है। वे ही 'महात्रिपुरसुन्दरी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसलिये इन्हें जो अभेद बुद्धि से ध्यान-पूजन करता है, वही साक्षात् सदाशिव स्वरूप है। हे महेश्वर! जो साधक भेदबुद्धया एक दूसरे को भिन्न समझता है वह महामूढ है। सुतराम् जो साधक स्वर्ग, पाताल या भूतल पर ही उनके दोनों चरणों की शरण गहता है वह पुरुष महामुक्ति का पात्र बन कर संसार में कल्पवृक्ष के समान हो जाता है॥ ६६–६८॥

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीतर्पणतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥ ६९॥

क्योंकि अन्यत्र जहाँ भोग है, वहाँ मोक्ष नहीं और जहाँ मोक्ष है, वहाँ भोग नहीं, परन्तु श्री सुन्दरी देवी के पूजन में जो निरन्तर तत्पर रहता है— ऐसे साधकों के करतलगत ही भोग और मोक्ष रहा करते हैं। अर्थात् देवीभक्त साधक जीवन्मुक्त हो जाता है॥ ६९॥

ततः स्वदक्षिणकरतले त्रिकोणं विलिख्य शुद्धियुक्तासवं त्रिकोणमध्ये संस्थाप्य लज्जावीजं दशधा जप्त्वा ॐ ह्रीं ह्रौं ह्रां ह्रीं अं आं इं

ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः। बीजतत्त्वम् अधःकोणस्थपरमतत्त्वेन शोधयामि स्वाहा। इति शुद्धिखण्डं वामहस्ते नीत्वा गृह्णीयात्। वामखण्डं नीत्वा ॐ ह्रीं ह्रौं ह्रां ह्रीं कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं वामतत्त्वस्थं परमतत्त्वेन शोधयामि स्वाहा। इति पूर्ववत्। ततो दक्षिणखण्डं नीत्वा ॐ ह्रीं ह्रौं ह्रां ह्रीं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं दक्षकोणस्थतत्त्वेन शक्तितत्त्वं शोधयामि स्वाहा। इति पूर्ववत्। ततो मध्यखण्डं नीत्वा ॐ ह्रीं ह्रौं ह्रां ह्रीं लं क्षं मायातत्त्वेन मायातत्त्वं शोधयामि स्वाहा। इति पूर्ववत्। ततश्च साधकेभ्यः शक्तिभ्यश्च पात्रं शुद्धिश्च दद्यात्। सर्वे यथाविधि कर्म कुर्वन्ति। ततः कुण्डलिनीमुखे पात्रं ग्रहीतव्यम्।

इसके बाद अपने दायें हाथ के पास त्रिकोण यंत्र लिखकर उस त्रिकोण में शुद्धासव (मदिरा) स्थापित करे। उस त्रिकोण में लज्जाबीज ह्रीं लिखकर दस बार उसका जप करे। तदनन्तर "ॐ ह्रीं ह्रौं ह्रां ह्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः। बीजतत्त्वमधः कोणस्थ परमतत्त्वेन शोधयामि स्वाहा।" इस मंत्र से शुद्ध किया हुआ सुधासव को बायें हाथ में लेकर ग्रहण करे। पुनः वामखण्ड लेकर—"ॐ ह्रीं ह्रौं ह्रां ह्रीं कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं वामतत्त्वस्थं परतत्त्वेन शोधयामि स्वाहा।" इति पूर्ववत्॥

इसके बाद दक्षिणखण्ड लेकर पुनः "ॐ ह्रीं ह्रौं ह्रां ह्रीं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं दक्षिण कोणस्थतत्त्वेन शक्तितत्त्वं शोधयामि स्वाहा।" इति पूर्ववत्॥

तदनन्तर मध्य खण्ड लेकर "ॐ ह्रीं ह्रौं ह्रां ह्रीं लं क्षं मायातत्त्वेन मायातत्त्वं शोधयामि स्वाहा।" इति पूर्ववत्।

इसके बाद साधकों एवं शक्तियों को पात्र एवं शुद्धि भी देवे। 'सभी विधिवत् कर्म करें' कहकर कुण्डलिनी के मुख में पात्र ग्रहण कराना चाहिये॥ इसके बाद—

पात्रोपरि जपेन्मन्त्रं सप्तधा साधकोत्तमः।
गुरुं स्मृत्वा पिबेन्मद्यं सर्वकामार्थसिद्धिदम्॥ ७०॥

पात्र के ऊपर श्रेष्ठ साधक को चाहिये कि तथोक्त मंत्र को जप करे और गुरु को स्मरण करके मद्यपान करे। ऐसा करने से सब कार्य सिद्ध होता है॥७०॥

ततः कुण्डलीनीमुखे मन्त्रपूर्वकं जुहुयात्। प्रथमपात्रं नीत्वा द्वितीयपात्रे शक्त्युच्छिष्टं नीत्वा च पिबेत्। तथा च—

इसके बाद कुण्डलिनीमुख में मंत्रपूर्वक होम करे। यहाँ प्रथम पात्र लेकर

द्वितीय पात्र में शक्ति के उच्छिष्ट मद्य को लेकर स्वयं पी जाय। कहा भी है—

शक्त्युच्छिष्टं पिबेन्मद्यं वीरोच्छिष्टन्तु चर्वणम्।
वीरोच्छिष्टात् पृथक् पाने पशुपानं प्रकीर्तितम्॥ ७१॥

शक्ति का जूठा मद्य पीना चाहिये। तथा वीरोच्छिष्ट को खाना चाहिए। इसके विना पृथक् पान करने पर वह 'पशुपान' कहा जाता है॥ ७१॥

निन्दा श्रुतिः साधकानां हिंसाज्ञानं कुले यतः।
निन्दा वा शाक्तकौलानां साधकानां न पूजनम्॥ ७२॥

श्रुति कहती है कि (शाक्त) साधकों के कुल में हिंसा का ज्ञान निन्दा है (वेद में वलि प्रदानादि को हिंसा नहीं कही गयी है) अथवा शाक्त कौल साधकों की पूजा नहीं करना निन्दा है (शाक्त साधक कौल को पूज्य मानते हैं)॥ ७२॥

अनिच्छया शक्तियोगं चक्रे वापि च मैथुनम्।
कामतः शक्तियोगं वा न ध्यानं दैवते न वा॥ ७३॥

भैरवी चक्र उपस्थित होने पर अनिच्छा से (वासनारहित होकर) शक्तियोग (स्त्रीप्रसंग) किंवा मैथुन विहित है, किन्तु काम से (कामुक होकर) शक्तियोग अथवा देवताविषयक ध्यान न करना निषिद्ध है॥ ७३॥

जपहोमविहीनं यद् भक्तिहीनं कुलार्चनम्।
प्रकटं साधकानाञ्च असन्तुष्टश्च साधकः॥ ७४॥
एवं धर्मयुतः कौलो भ्रष्टः कौलः प्रकीर्त्तितः।
पञ्चमं पुरतः कृत्वा चतुर्थे जपमाचरेत्।
जपपूजां विना पानं पशुपानं प्रकीर्त्तितम्॥ ७५॥

जप, होमरहित तथा श्रद्धा, भक्ति विहीन कुलार्चन धर्म साधकों के लिये प्रत्यक्ष मना है। इससे साधक असन्तुष्ट रहता है। इसीलिये लिखा है कि ऐसे कपोलकल्पित धर्मविहीन कौल भ्रष्ट (नीच) कौल माना गया है। अतएव पंचम[1] (मैथुन) को आगे करके चतुर्थ मुद्रावस्था में जप करना चाहिये। क्योंकि जपपूजा के विना मद्यपान करना 'पशुपान' कहलाता है॥ ७४–७५॥

अथ पात्रवन्धनमन्त्राः

श्रीमद्भैरवशेखरप्रविलसच्चन्द्रामृतप्लावितं
क्षेत्राधिष्ठितयोगिभिर्जनगणैः सिद्धैः समाराधितम्।

---

१. मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन—ये पंच मकार वाममार्ग में प्रसिद्ध हैं।

आनन्दार्णवकं महात्मकमिदं साक्षात्त्रिखण्डामृतं
वन्दे श्रीप्रथमं कराम्बुजगतं पात्रं विशुद्धिप्रदम् ॥ ७६ ॥

मैं उस भैरव[1] के भाल में सुशोभित चन्द्रकला के अमृत से सिंचित एवं क्षेत्राधिष्ठित चक्रस्थित योगिजनों तथा सिद्ध साधकों द्वारा पूजित आनन्द-सागर साक्षात् त्रिखण्डामृत (त्रिभुजाकार) उस श्रेष्ठतम प्रथम पात्र को—जो अत्यन्त शुद्ध और अपने ही कर-कमल में स्थित है—आदरपूर्वक प्रणाम करता हूँ ॥ ७६ ॥

हैमं नीलकलान्वितं सुमहिमायोगं महामांसकं
किञ्चिन्नेत्रविचञ्चलं रविवरच्छायाप्रदं शाश्वतम् ।
आनन्दादिमहार्णवे विगलितं ज्ञानं महामोक्षदं
वन्दे पात्रमहं द्वितीयमधुना स्वात्मावबोधक्षमम् ॥ ७७ ॥

हिरण्यमय उस द्वितीय महामांस पात्र को—जो नील रंगयुक्त है, जो महामहिमशाली है, जो थोड़ी देर के लिये नेत्र को चलायमान करने वाला है, जो सूर्य की श्रेष्ठ छाया को देनेवाला है, जो सनातन है तथा जो सर्वदा आनन्द सागर में विलीन रहता है, जो ज्ञानस्वरूप महामोक्ष को देनेवाला है—ऐसे स्वात्माबोध प्रदायक द्वितीय पात्र को मैं इस समय प्रणाम करता हूँ ॥ ७७ ।

महापद्मे करे पद्मे योनिमालोकयन् धिया ।
दग्धमीनसमोपेतं वन्दे पात्रं तृतीयकम् ॥ ७८ ॥

उस महापद्म में बुद्धि द्वारा अक्षय योनि का ध्यान करते हुए अपने कर-कमल में स्थित सिद्ध मत्स्यखण्डयुक्त उस तृतीय पात्र को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ७८ ॥

मुद्रारूपां योनिमुद्रां सिद्धिदां सिद्धिरूपिणीम् ।
भजामि परया भक्त्या चतुर्थं पात्र्याम्यहम् ॥ ७९ ॥

उस मुद्रामयी योनिमुद्रा को—जो स्वयं सिद्धिस्वरूपा होती हुई साधकों को सिद्धि देती है—ऐसी चतुर्थ पात्रमयी मुद्रा को मैं परम श्रद्धाभक्ति से भजता हूँ ॥ ७९ ॥

योनिना लिङ्गमाप्नोतं पञ्चमं परिकीर्त्तितम् ।
तत्तद्भूतेनामृतेन कल्पयामीह पञ्चमम् ॥ ८० ॥

योगी साधकों द्वारा भग-लिङ्गमयी उस पञ्चम पात्र को—जिसके सेवन से परमानन्द प्राप्त होता है—मैं ध्यान करता हूँ । इस प्रकार तथाकथित उन-उन पत्रों में संचित सुधा-रस से मैं पाँचों पात्रों की यहाँ पर कल्पना करता हूँ ॥ ८० ॥

---

१. भैरव ध्यान आगे देखिये ।

सदानन्दप्रदं द्रव्यं महानन्दप्रदायकम् ।
गुरुपादगते दाने षष्ठे पात्रं नमाम्यहम् ॥ ८१ ॥

सर्वदा आनन्द देनेवाला महामद्यमय षष्ठ पात्र को--जो गुरु के पादारविन्द में निहित है—मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८१ ॥

समुद्रसप्तसम्भूतं समुद्रवारिजं शुभम् ।
समुद्रे निगमे प्राप्ते गृह्णामि सप्तमीं सुधाम् ॥ ८२ ॥

सातों सागर से उत्पन्न तथा समुद्रजलमय उस सातवें सुधा को मैं ग्रहण करता हूँ--जो वेद तन्त्रशास्त्ररूपी समुद्र में पाया जाता है ॥ ८२ ॥

अष्टदुर्गा शक्तिरूपा महिषासुरनाशिनी ।
पुनाति सा जगद्धात्री नवमे शङ्करप्रिया ॥ ८३ ॥

महिषासुरमर्दिनी अष्ट दुर्गारूपी उस आठवीं सुधा का ध्यान करके पुनः उस जगज्जननी नौवीं शिवप्रिया का ध्यान करता हूँ, वह देवी सबको पवित्र करें ॥८३॥

महाविद्या दश प्रोक्ता महासिद्धिप्रदायिनी ।
महामोहविनाशञ्च मोहिनी दशमे करे ॥ ८४ ॥

महासिद्धियों को देनेवाली 'दश महाविद्या' कही गयी है । इसलिये महामोह को नष्ट करनेवाली उस मोहिनी भगवती को मैं दसवें पात्र में स्मरण करता हूँ ॥ ८४ ॥

एकादश महारुद्रा वसुसिद्धिप्रदायकाः ।
चतुःषष्टिसिद्धिदांस्तान् वन्दे चैकादशे करे ॥ ८५ ॥

आठों वसुओं तथा अष्टमहासिद्धियों को देनेवाली उस एकादश महारुद्र-रूपिणी भगवती को मैं ध्यान करता हूँ । साथ ही अपने करस्थित एग्यारहवें पात्र में उन चौसठ कलाओं की सिद्धि देनेवाले तत्तत् देवताओं को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८५ ॥

द्वादशे द्वादशादित्याः सदा तर्पणतत्पराः ।
वामनेत्रस्वरूपेण द्वादशं वन्दयाम्यहम् ॥ ८६ ॥

अपने करतलगत बारहवें पात्र में उन बारहों आदित्यों को—जो सदा आनन्ददायक हैं—अपने वाम नेत्र द्वारा अर्थात् वाममार्ग-पद्धति द्वारा वन्दन करता हूँ ॥ ८६ ॥

त्रयोदशे महाविद्या शारदा परिभूयते ।
वाचां सिद्धिप्रदां देवीं वन्दे पात्रत्रयोदशे ॥ ८७ ॥

इस प्रकार तेरहवें पात्र में महाविद्या श्री शारदा देवी का अनुभव किया जाता है । इसलिये वाणियों में सिद्धि प्रदान करनेवाली शारदा देवी को त्रयोदश पात्र में मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८७ ॥

इति त्रयोदशपात्रवन्दनं सदा सुखप्रदम्। अन्यद् यत्प्रकारान्तरं पात्रवन्दनं ग्रन्थान्तरे दृश्यते तत् कालीतारासुन्दरीत्रिपुरेतरविषयम्।

यह 'त्रयोदश पात्र वन्दना' सदा सुखदायिनी है। अन्य जो प्रकारान्तर से दूसरे-दूसरे ग्रंथों में पात्रवन्दना देखी जाती है, वह काली, तारा, त्रिपुरसुन्दरी आदि देवियों के विषय से भिन्न है। इस विषय में किसी ने ठीक कहा है—

यावन्न चलते चक्षुर्यावन्न चलते मनः।
तावत् पानं प्रकर्त्तव्यं मन्त्रसिद्धिप्रदायकम्॥ ८८॥

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा पुनः पतति भूतले।
उत्थाय च पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥ ८९॥

जब तक नेत्र बन्द रहे, जब तक मन चलायमान न हो, तब तक मंत्रसिद्धि-प्रदायक वह पान (विहित सुरापान) करते रहना चाहिये। सुतराम् बार-बार सुरापान करके भूतल पर गिरे और बार-बार उठकर पुनः यदि (सावधान होकर साधकोक्त) पान करता रहे तो उस साधक का पुनर्जन्म नहीं होता अर्थात् वह मुक्त हो जाता है॥ ८८-८९॥

अथ तारानिगमोक्तकेवल-श्रीताराविषये सर्वपात्रवन्दनमन्त्रश्चैकत्रैव—

अब यहाँ ताराविषयक 'सर्वपात्रवन्दना' का मंत्र एक ही जगह 'तारानिगम' तंत्र में देखिये :—

नाहं कर्त्ता कारयिता न च मे कार्यं, नाहं भोक्ता भोजयिता वा न च भोज्यम्। अहं चिदात्मा स्वयमेव तेजः, स्वयं गुरुर्विष्णुरहं सरूपः॥

न मैं कर्ता हूँ, न करवाता हूँ और न मेरा कोई कार्य ही है। न मैं भोक्ता हूँ, न भोजन कराता हूँ, न भोज्य पदार्थ ही हूँ। क्योंकि मैं केवल चिदात्मा (पुरुष) हूँ, मेरा तेज स्वकीय तेज है। मैं ही स्वयं गुरु हूँ, विष्णु हूँ, मैं ही वह शिव-रूप हूँ।

नान्यं स्मरेन्न च भजेत् परिहाय चाद्यां, नान्या तपो न च गतिः परिहाय चाद्याम्॥

इसलिये मेरे अतिरिक्त किसी दूसरे को न भजो। अर्थात् आद्या परा-भगवती को छोड़कर अन्य की उपासना व्यर्थ है, क्योंकि आद्या देवी को त्याग कर जो अन्य की उपासना करता है, उसे गति नहीं होती और न वह तप ही कहलाता है॥

इति पानं सर्वत्र शुद्धियुक्तेन। प्रथमं यथाशक्ति पिवेत्। ततः पञ्चतत्त्वक्रमः।

इस प्रकार सर्वत्र शुद्धिपूर्वक पान करना चाहिये, साधक को चाहिये कि वह प्रथम पात्र (मद्य) यथाशक्ति सेवन करे। उसके बाद पंचतत्त्व का इस प्रकार विचार करे—

प्रथमं वामहस्ते त्रिकोणाकारपानमुद्रया द्रव्यं नीत्वा दक्षिणहस्ते शुद्धिं नीत्वा मूलमुच्चार्य्य—इदं शुद्धियुक्तासवं श्रीमत्तारा एकजटा-महादेव्यै नमः। सर्वत्र शुद्धिसंस्कारे मूलमन्त्रजपः इति।

प्रथम पात्र को बायें हाथ में लेकर त्रिकोणाकार पानमुद्रा दिखाकर उसमें द्रव्य (मद्य) डाले तथा दाहिने हाथ में शुद्धि लेकर, मूल मंत्र का उच्चारण करे। यथा—"इदं शुद्धियुक्तासवं श्रीमत्तारा एकजटामहादेव्यै नमः।" इस प्रकार सर्वत्र शुद्धिसंस्कार में मूलमंत्र जपने का विधान है।

ततः वामहस्ते मांसं धृत्वा मूलं सप्तधा जप्त्वा—एषा मांसशुद्धिः श्रीमत्तारा एकजटादेव्यै नमः। ततो मीनं वामहस्ते नीत्वा—एषा मीन-शुद्धिः श्रीमत्तारा एकजटादेव्यै नमः। ततः शक्तिलिङ्गमुद्रां प्रदर्श्य—"एषा शक्तिः श्रीमत्तारा एकजटादेवी महानन्दकल्पनाय रक्ष रक्ष पश्य पश्य प्रसीद प्रसीद अस्या योनौ मम सिद्धिं देहि देहि ओं ओं ओं स्वाहा" इति निवेद्य यथायोग्यमानन्दं कृत्वा चक्रादितरस्थाने शक्तिं नीत्वा स्वपुरतः पुरोमुखीं संस्थाप्य तदुपरि विन्दुविनिक्षेपं कृत्वा योनिलिङ्ग-मुद्रां प्रदर्श्य अदीक्षितश्चेत् कर्णे लज्जाबीजमुक्त्वा कृताञ्जलिः—

इसके बाद बायें हाथ में मांस लेकर अग्रिम मूल मंत्र को सात बार जपे—"एषा मांसशुद्धिः श्रीमत्तारा एकजटादेव्यै नमः।" इसके बाद बायें हाथ में मीन (मछली) रखकर—"एषा मीनशुद्धिः श्रीमत्तारा एकजटादेव्यै नमः।" ऐसा निवेदन कर इसके बाद शक्तिमुद्रा तथा लिङ्गमुद्रा दिखाकर—"एषा शक्तिः श्रीमत्तारा एकजटादेव्यै महानन्दकल्पनाय रक्ष-रक्ष, पश्य-पश्य, प्रसीद-प्रसीद, अस्या योनौ मम सिद्धिं देहि देहि, ॐ ॐ ॐ स्वाहा।" ऐसा निवेदन करके यथायोग्य आनन्द करे। तत्पश्चात् चक्र से बाहर शक्ति को ले जाकर अपने आगे पूर्वाभिमुख करके उसके ऊपर विन्दु रखकर योनि-लिंग मुद्रा पूर्ववत् दिखावे। यदि साधक अदीक्षित हो तो कान में लज्जाबीज 'ह्रीं' कहकर हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना करे—

शक्तिरूपे! महादेवि! योनिसिद्धिस्वरूपिणि!।
प्रसीद जगतां सृष्टिकारिणि! ब्रह्मरूपिणि!॥ ६०॥

हे योनिसिद्धिस्वरूपिणि, महादेवि ! हे संसार की सृष्टि करनेवाली ब्रह्मात्मिका शक्ति देवि ! आप मुझ पर प्रसन्न होवें ॥ ९० ॥

योनिरूपा महाविद्या योनिसिद्धिप्रदायिनी ।
सृष्टिः प्रजायते यस्मात् पुत्रत्वेनापि पाल्यते ॥ ९१ ॥

पुनः प्रलीयते योनौ सृष्टिस्थितिलयालये ।
साधयामि महामन्त्रं तेन सिद्धिं विधेहि मे ॥ ९२ ॥

क्योंकि आप ही जगद्योनि हैं, महाविद्या एवं योनिसिद्धि देनेवाली हैं । आप ही से यह सृष्टि उत्पन्न होती है इस कारण हम सभी साधकों को आप पुत्र-सरीखे पालती हैं । फिर यथा समय सृष्टि-स्थिति एवं लय के आलय (स्थान) स्वरूप योनि में उनका विलयन कर देती हैं । अत एव यहाँ मैं जिस महामंत्र की साधना करता हूँ उसमें आप सिद्धि देवें ॥ ९१-९२ ॥

ॐ ह्रौं ह्रौं क्लीं कामेश्वरि महात्रिपुरे त्रिपुरालये ! ममैवं सिद्धिं देहि देहि स्वाहा । इति पठित्वा लिङ्गे शापमन्त्रं सप्तधा जप्त्वा दिगम्बरो भूत्वा तां दिगम्बरीं कृत्वा पद्मं दृष्ट्वा तत्र विम्बं रविविम्बं चामरं सफरीञ्चापि शिखरं तथा नाभौ शतं जपेत् ।

इस प्रकार प्रार्थना करके "ॐ ह्रौं ह्रौं क्लीं कामेश्वरि ! महात्रिपुरे ! त्रिपुरालये ! ममैवं सिद्धि देहि देहि स्वाहा ।" यह मंत्र पढ़कर लिङ्ग के ऊपर वाम मंत्र को सात बार जप करे, तत्पश्चात् दिगम्बर (मुद्रा) योग करके पद्म-दर्शन करके विम्ब, सर्प, दिया, चामर तथा मत्स्य को भी उसमें शिखर या नाभि का स्थान देखकर सौ बार जप करना चाहिये ॥

योनिमध्ये शतं जप्त्वा प्रवेशं कारयेद् बुधः ।
महायोनिमयीं देवीं पार्वतीं परिभावयेत् ॥ ९३ ॥

योनि में सौ बार मंत्र जप कर चतुर साधक लिङ्ग का प्रवेश करावे और उस समय महायोनिमयी पार्वती देवी की भावना करे ॥ ९३ ॥

स्वयं शिवस्वरूपः स्यादात्मानं शिवरूपिणम् ।
भावयित्वा निर्विकारं स्वयभाद्यं विघातयेत् ॥ ९४ ॥

साथ ही अपने को विश्वरूप एवं अपनी आत्मा को शिवस्वरूप समझता हुआ समस्त जगत् रूप में निर्विकार हूँ—ऐसी भावना करे, ऐसा अनुभव करे—इसी का नाम वास्तविक आत्मचिन्तन है ॥ ९४ ॥

साधको भावयेद् यस्तु कामुको वा प्रजायते ।
पच्यते नरके घोरे न मोक्षः कोटिजन्मतः ॥ ९५ ॥

अन्यथा यदि साधक तथोक्त विचार न करके कामासक्त हो जाय, किंवा विषय-भोग में लिपट जाय, तो वह घोर नरक में जाता है। फलतः करोड़ों जन्म तक भी वह मुक्त नहीं हो पाता ॥ ९५ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन निर्विकारो भवेत् स्वयम्।
अन्यथा सिद्धिहानिः स्यात् पतते नरके स्वयम् ॥ ९६ ॥

इस कारण साधक को चाहिये कि वह सर्वतोभावेन निर्विकार हो, स्वयं अपने आपकी (ब्रह्ममयता की) अनुभूति करे, नहीं तो उसको सिद्धि हानि होगी और स्वयं नरकगामी होगा ॥ ९६ ॥

ओं नाभिचैतन्यरूपाग्नौ हविषा मनसा स्रुचा।
ज्ञानं प्रदीप्यते नित्यमक्षवृत्तिर्जुहोम्यहम् ॥ ९७ ॥

इसलिये साधक को यह सर्वदा अनुभव करना चाहिये कि मैं नाभिचक्र ॐ स्वरूप चैतन्यरूपी अग्निज्वाला में मनरूपी स्रुवा से कामनारूपी हवि का हवन करता हूँ। और यह भी सोचे कि ज्ञान प्रज्ज्वलित हो रहा है, उसमें सर्वदा मैं अक्ष-वृत्ति[1] वर्णमातृका का होम कर रहा हूँ ॥ ९७ ॥

ओं धर्माधर्महरैर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्नावर्त्तना नित्यमक्षवृत्तिर्जुहोम्यहम् ॥ ९८ ॥

इति त्यजेत्।

धर्म-अधर्मरूपी इंधन से प्रज्ज्वलित आत्मारूपी अग्नि में मनरूपी स्रुवा से सुषुम्ना मार्ग द्वारा नित्यमेव अक्षवृत्ति का मैं हवन कर रहा हूँ—ऐसा अनुभव सत्साधक किया करें ॥ ९८ ॥

ततस्तत्रासने स्थित्वा सहस्रं जपेत्। ततः पात्रं प्रक्षाल्य ऊर्ध्वे च जले मायाबीजं विलिख्य तत्रस्थेन मृदा—

तत्पश्चात् उसी आसन पर बैठ कर महामंत्रों का १००० जप करे। उसके बाद पात्र-प्रक्षालन करके ऊपर को जल छिड़के। तदनन्तर मायाबीज लिखकर तत्स्थानीय मृत्तिका से नीचे का अर्थ हृदयङ्गम करते हुये—

ओं यं यं स्पृशामि पादेन यो मां पश्यति चक्षुषा।
स एव दासतां याति यदि शक्रसमो भवेत् ॥ ९९ ॥

जिसको-जिसको मैं अपने पैर से छूता हूँ और जो मुझे अपने नेत्र से

---

१. 'अ' से 'क्ष' अक्षर तक ५० वर्णों को 'अक्षवृत्ति' कहते हैं—जो समस्त देह के प्रसंगों में निहित हैं।

देखता है, वही मेरा दास (सेवक) बन जाता है। यदि वह इन्द्र के समान भी क्यों न हो वशीभूत हो जाता है ॥ ९९ ॥

इति ललाटे टीकां नीत्वा विहरेत्। द्रव्यं वारणाञ्चितोलकमितं पात्रे सदावेशयेत्।

यह मंत्र पढ़कर अपने भाल पर उस मृत्तिका का तिलक लगावे और सर्वत्र स्वेच्छया विचरण करे। उस दिन से साधक के पात्र में प्रतिदिन तोला भर सुवर्ण आ जाया करेगा।

साधकेभ्यश्च शक्तिभ्यो दत्त्वा पात्रं समानयेत्।
साधयेत् त्रिविधैर्भावैर्दिव्यवीरपशुक्रमैः ॥ १०० ॥

उत्तम साधक को चाहिये कि वह साधकों एवं शक्तियों की यथाशक्ति पूजा देकर पात्र मँगावे और (१) दिव्यभाव, (२) वीरभाव और (३) पशुभाव त्रिविध भावों से साधना करे ॥ १०० ॥

दिव्यास्तु देववत् प्रायाः सदाचारपरायणाः।
ऋणाधानं तथा पाठ्यं हिंसाञ्चैव विशेषतः ॥ १०१ ॥
स्नानं सन्ध्याञ्च पूजाञ्च दिवा कुर्यात् त्रयं त्रयम्।
[1]पुरस्त्रीमाहरेद्वोध्याऽपरं पुत्रवदिष्यते।
सदा सत्त्वगुणं स्मृत्वा ब्रह्मचारी भवेद् ध्रुवम् ॥ १०२ ॥

दिव्यभाव वाले प्रायः देवतुल्य, सदाचारी तथा दयालु होते हैं। ऋणाधान, पाठ्य, विशेष कर हिंसा, स्नान, संध्या एवं पूजा (प्रातः, मध्याह्न, सायंकाल) दिन में तीन बार करते हैं। परस्त्री का अपहरण, लड़ाकू तथा अपने सेवकों को पुत्रवत् मानने वाले होते हैं। वे सर्वदा सतोगुणी एवं ब्रह्मचारी होते हैं ॥ १०१–१०२ ॥

योषावक्त्रं कुचौ वापि ऊरुञ्च साधकोत्तमः।
दृष्ट्वा मन्त्रं जपेल्लक्षं द्वादशस्वर्णमुत्सृजेत् ॥ १०३ ॥

उत्तम साधक स्त्री के मुख, कुच, किंवा जंघे को देख कर लाख बार मंत्र जपे और द्वादश पल (१२ भर) सुवर्ण का दान करे ॥ १०३ ॥

तर्पयेत् सुधया देवीं तारां तारकदायिनीम्।
साक्षादिन्द्रो भवेत् सोऽपि यदि योषां न च स्पृशेत् ॥ १०४ ॥

---

१. 'परस्त्रीं नाहरेद् बुध्या' इति समीचीनः पाठः।

योषास्पर्शनमात्रेण दिव्यभावो वृथा भवेत् ।
यावत्तपस्या कर्त्तव्या तावद् योषां विवर्जयेत् ॥ १०५ ॥

तारक मंत्र-प्रदायिनी किंवा मुक्तिदायिनी तारादेवी का सुन्दर बुद्धि (विश साधक) द्वारा पूजन करना चाहिये । इस प्रकार यदि स्त्री का स्पर्श न करके ब्रह्मचारी साधक साधना करे तो वह साक्षात् इन्द्र बन जाता है । किन्तु स्त्री के स्पर्शमात्र से वह दिव्यभाव व्यर्थ हो जाता है । इसलिये जब तक उस चक्र में स्थित होकर तपस्या करे, तब तक स्त्री का परित्याग करना चाहिये ॥ १०४-१०५ ॥

मत्स्यं मासं तथा तैलं स्निग्धान्नं मोदकं तथा ।
स्त्रीशूद्रौ नैव द्रष्टव्यौ चान्यथा पतनं भवेत् ॥ १०६ ॥

यहाँ तक कि मत्स्य, मांस, तैल, स्निधान्न तथा मोदक भी विवर्जित है । स्त्री और शूद्र को तो देखना भी दोष है । यदि उपर्युक्त बातें न मानें तो अवश्य उसका पतन होता है ॥ १०६ ॥

जाते सिद्धे च तपसि ऋतुकाले व्रजेत् स्त्रियम् ।
पञ्चपर्व वर्जयित्वा न चेद् भ्रष्टो भविष्यति ॥ १०७ ॥

इस प्रकार तपस्या सिद्ध होने पर पाँच पर्व त्याग कर ऋतुकाल में (पूर्वोक्त विधि) से स्त्री के पास जाय । नहीं तो वह साधक नष्ट (पतित) हो जाता है ॥ १०७ ॥

अत्रायं संक्षेपः भावसारावल्यां व्याख्यातो वीराचारोऽपि संक्षेपतः कामाख्यामूले व्याख्यातः पश्वाचारस्तु—

यहाँ पर यह विषय संक्षेप में लिखा गया है—विशेष रूप में 'भावसारावली' में देखिये । वीराचार भी संक्षेप में कहा गया है, विशेष 'कामाख्यामूल' में देखिये और पश्वाचार के विषय में नीचे की व्याख्या देखिये—

चितीं वा कामिनीं वापि शवं वा न च साधयेत् ।
कालीतारासु विद्यासु नैवान्तर्यजनञ्चरेत् ॥ १०८ ॥
पीठस्थानं भावयेन्न परयोषां न दर्शयेत् ।
वीरभावकुलो दिव्यस्तस्माद्दिव्यं प्रशस्यते ॥ १०९ ॥

साधक को चाहिये कि चिती या कामिनी अथवा शवसाधन की सिद्धि न करे तथा काली, तारा आदि दशमहाविद्याओं में भी 'अन्तर्यजन'[1] न करे । साथ ही पीठस्थान की भावना तथा परस्त्री दर्शन न करे । दिव्य वीरभाव कुलोचित है । इस कारण दिव्यभाव श्रेष्ठ कहा गया है ॥ १०८-१०९ ॥

---

१. अन्तर्यजन (आध्यात्मिक पूजन) दिव्यभाव कहलाता है । यह सब कार्य बिना अन्तर्मुखी प्रवृत्ति हुए होना असम्भव है ।

अशक्तत्वाद् भवेद् वीरो न पशुश्च कलौ क्वचित् ।
येन तेन प्रकारेण पशुभावं विवर्जयेत् ॥
स्वेच्छा यद्भक्षणे चास्ति का सिद्धिस्तेन भारते ॥ ११०॥

यदि दिव्यभाव के पालन में असमर्थ हो तो वीरभाव का आचरण करे, किन्तु कलियुग में भूलकर भी पशुभाव का आचरण न करे। इसलिये जैसे हो, वैसे साधक को पशुभाव का परित्याग कर देना चाहिये। यदि स्वेच्छा से (अशास्त्रीय) अभक्ष्य भक्षण करने की इच्छा करे तो उसे विशेषकर भारत में सिद्धि ही कैसे मिलेगी ? ॥ ११० ॥

अथ तारानिगमोक्तश्लोकमेकं शान्तिस्तोत्रम्—

ॐ पाहि त्वं करुणामयि ! प्रियतमं सत्साधकं रक्ष मां
भ्रष्टान्नाशय नाशय प्रियतमं वक्त्रारविन्दं मम ।
नित्यं देहि सुधासुधाचयमयीं सिद्धिं शिवे ! सिद्धिदाम् ।
ज्ञानं मोक्षविधायकं कुरु शिवे ! संहारिणि ! पाशवे ॥ १११ ॥

अब ग्रन्थकार प्रसंगवश यहाँ तारानिगमोक्त एक सुन्दर श्लोक लिखते हैं—

'ॐ पाहि·········पाशवे' "हे करुणामयि माँ ! आप अपने प्रियतम मुझ सत्साधक की रक्षा कीजिये। मेरे प्रिय मुख-कमल को भ्रष्ट होने से बचाइये। हे शिवे ! नित्य अमृत प्रदान कर सिद्धिदायक सुधोपम सिद्धि मुझे दीजिये तथा मेरे इस पशुतामय जीवन में मुक्तिदायक ज्ञान प्रदान करिये" ॥ १११ ॥

शान्तिस्तोत्रं पठित्वा तु यथेच्छं विहरेन्नरः ।
चक्रमध्ये भवेद् या सा वक्तव्या न च कुत्रचित् ॥ ११२ ॥

इस प्रकार शान्तिस्तोत्र का पाठ करके साधक मानव यथेच्छ आनन्द करे। हाँ, यह भी स्मरण रखे कि भैरवी चक्रस्थ समय में जो कुछ हो, वह किसी दूसरे से कदापि न कहे ॥ ११२ ॥

कथा प्रातर्भवेत् सापि नाशाय नरकाय च ।
चक्राकारं चरेच्चक्रं पंक्त्याकारमथापि वा ॥ ११३ ॥
प्रविष्टे भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजोत्तमाः ।
निवृत्ते भैरवीचक्रे तथा सर्वे पृथक् पृथक् ॥ ११४ ॥

क्योंकि प्रातःकाल में तथोक्त वार्ता न कहने से पाप नाश तथा कहने से नरक-यातना देती है। पंक्तिवद्ध अथवा चक्राकार (वृत्ताकार) चक्र होना

चाहिये। उस समय भैरवी-चक्र में प्रवेश करने वाले सभी वर्ग के साधक ब्राह्मण के समान श्रेष्ठ हो जाते हैं, किन्तु जब वे भैरवीचक्र से निवृत्त होकर बाहर हो जावें तब सभी वर्ण अलग-अलग हो जाते हैं ॥ ११३–११४ ॥

गन्तुं चक्रात् समायातं नत्वा नत्वा पुनः पुनः।
अन्यथा मरणं तस्य गतिः स्याद् यमसादने ॥ ११५ ॥

चक्र में जानेवाले तथा चक्र से लौटने वाले को बार-बार प्रणाम करके पुनः पुनः आना-जाना ठीक है। नहीं तो, इसके विपरीत कर्म करने वालों की मृत्यु अवश्यम्भावी है। उसे यमलोक की गति मिलती है ॥ ११५ ॥

अन्यचक्रञ्च[1] दूरस्थं स्वचक्रं वा सकृद् व्रजन्।
स भवेत्तारकापुत्रो वसुसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ११६ ॥

दूसरे के चक्र से दूर रहनेवाला अथवा अपने चक्र में एक बार भी गति करने वाला पुरुष तारा का प्रिय वत्स होता है, अतः वह ताराभक्त साधक वसुसिद्धि (आठो सिद्धियों) को पाता है ॥ ११६ ॥

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
लक्षं वापि तडागानां चक्रं दृष्ट्वा लभेत् फलम् ॥ ११७ ॥

सहस्रों अश्वमेध एवं सैकड़ों वाजपेय यज्ञ तथा लाखों तालाबों का उत्सर्ग करने का फल केवल एक बार 'चक्र' देखनेवाला साधक पाता है ॥ ११७ ॥

यो ददाति महादेव ! शक्तिभ्यः साधकाय च।
कलामात्रेण देवेषु कोट्यश्वमेधजं फलम् ॥ ११८ ॥

इसलिये हे महादेव ! शक्ति एवं साधकों के लिये जो व्यक्ति कुछ देता है, अथवा देवताओं में कुछ भी भाव रखता है, उसे करोड़ों अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है ॥ ११८ ॥

उपवासं भृगोः पातं सन्ध्या सव्रतधारणम्।
तीर्थपर्य्यटनञ्चैव कौलः पञ्च विवर्जयेत् ॥ ११९ ॥

[१] उपवास (अनशन), [२] भृगुपात (वीर्यपात), [३] संध्या, [४] व्रतधारण, [५] तीर्थाटन---ये पाँच कर्म कौल (वाममार्गी श्रेष्ठ साधक) को न करना चाहिये ॥ ११९ ॥

महापीठं व्रजेन्नित्यं न चेत् पीठमनुत्तमम्।
तारापुरं महापीठं गन्तव्यं यत्नतः सदा ॥
लक्षत्रयजपाद्देवि ! सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ १२० ॥

---

१. "अन्यचक्राच्च दूरस्थः" इति समीचीनः पाठः।

प्रतिदिन महापीठ में जाना चाहिये। यदि कोई उत्तम पीठ न मिले तो महापीठ तारापुर में यत्नपूर्वक सर्वदा जाना चाहिये। हे देवि! तीन लाख जप करने से साधक 'सर्वसिद्धीश्वर' (साक्षात् 'शिव') बन जाता है ॥ १२० ॥

ईशाने चक्रनाथस्य वैद्यनाथस्य पूर्वतः।
तारापुरमिदं ख्यातं नगरं भुवि दुर्लभम्।
तत्र यत्नेन गन्तव्यं यत्र ताराशिवालयम् ॥ १२१ ॥

इति संक्षेपः।

इति श्रीब्रह्मानन्दपरमहंसपरिव्राजकावधूतविरचिते
तारारहस्ये तृतीयपटले तत्त्वादिरहस्यम्।

ईशानकोण में 'चक्रनाथ' और पूर्व दिशा में 'वैद्यनाथ' इन दोनों के बीच का पीठ 'तारापुर' के नाम से कहा गया है, जो भूतल में अत्यन्त दुर्लभ है। इसलिये जहाँ तारा और शिवालय (मन्दिर) है, वहाँ यत्नपूर्वक जाना चाहिये ॥ १२१ ॥

इति 'विद्या'व्याख्याविलसिते तारारहस्ये पञ्चतत्त्वसंस्कार-नामकं
द्वितीयं प्रकरणम् ॥ २ ॥

अथ पूजा-प्रकरणम्

अथ पूजा। तथाच तारानिगमे तारासारे च—
आदौ जलञ्च संशोध्य क्षालनं हस्तपादयोः।
मूलेन तिलकं कुर्य्याद् विभूत्या तु त्रिपुण्ड्रकम् ॥
रक्तचन्दनटीकां वा सिन्दूरस्यापि वा पुनः ॥ १२२ ॥

प्रसंग—अब यहाँ 'तारानिगम' तथा 'तारासार' के अनुसार "तारा-पूजन-पद्धति" संक्षेप में दी जा रही है :—

सर्वप्रथम तारा साधक को चाहिये कि वह प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर मंत्र द्वारा जलशुद्धि करे, तत्पश्चात् हाथ-पैर धो डाले और मूलमंत्र से तिलक एवं भस्म त्रिपुण्ड्र धारण करे। रक्तचंदन[1] अथवा सिन्दूर या रोरी का तिलक अपने ललाट में लगावे ॥ १२२ ॥

---

१. शाक्त साधक को रक्तवस्त्र धारण करना चाहिये और स्फटिक मणि की माला से जप करना चाहिये। विशेष ज्ञान के लिये 'श्यामारहस्य' देखना चाहिये। सिंदूर-रोचन का या रोरी का तिलक विशेष महत्त्व रखता है।

ॐ मणिधरि ! वज्रिणि ! सर्ववशङ्करि ! हुं फट् स्वाहा । इत्यनेन शिखां बध्वा ॐ ह्रीं स्वाहेति आचमनम् । गुरुः प्रथमं पूजागृहद्वारमागत्य ॐ वज्रोदके हुं फट् स्वाहा—इति जलमधिष्ठाय । ॐ विशुद्धधर्माय त्रिसर्वपापानि शमयाशेषविकल्पमपनीय हुं फट् स्वाहा इति हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य । मूलेन तिलकं विभूत्या त्रिपुण्ड्रं सिन्दूरगोरोचनान्यतमटीकां गृहीत्वा । ॐ मणिधरि ! वज्रिणि ! सर्ववशङ्करि ! हुं फट् स्वाहा, इति शिखां बध्वा, ॐ ह्रीं स्वाहा, इत्याचम्य ।

"ॐ मणिधरि ! वज्रिणि, सर्ववशंकरि ! हुँ फट् स्वाहा ।" इस मंत्र से शिखाबन्धन करके "ॐ ह्रीं स्वाहा" इस मंत्र से आचमन करे । पहले साधक-गुरु पूजागृह के द्वार पर आकर "ॐ वज्रोदके हुँ फट् स्वाहा" इस मंत्र से जल स्थापित करे, तत्पश्चात् "ॐ विशुद्धधर्माय त्रिसर्वपापालि शमयाशेषविकल्पमपनीय हुँ फट् स्वाहा ।" कहकर हाथ-पैर धोवे और मूल मंत्र से तिलक तथा भस्म, त्रिपुण्ड्रादि करके । पूर्ववत् मंत्रों को पढ़-पढ़कर शिखा बन्धन-आचमन करना चाहिये ।

ततः पीठं चिन्तयेच्च कृताञ्जलिपरो भवेत् ।
आचमनं ततः कृत्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
वैरोचनादीन् विन्यस्य भूमिं संशोधयेत्ततः ॥ १२३ ॥

ततश्च भूमिं संशोध्य चासनाधस्त्रिकोणकम् ।
संशोध्यासनं पश्चात् सर्वविघ्नान् विनाशयेत् ॥ १२४ ॥

इसके वाद पीठचिन्तन करे । उस समय साधक को हाथ जोड़कर विनम्र-भाव से सब कृत्य करना चाहिये । आचमन करके विरोचन आदि का विन्यास करे । भूमिसंस्कारपूर्वक आसन के नीचे पहले त्रिकोण यंत्र बनावे तथा मंत्र से संशोधन करके उस आसन पर बैठे तो सभी विघ्न दूर हो जाते हैं और इस प्रकार का आचरण करनेवाला साधक सर्वसिद्धीश्वर' बन जाता है ॥१२३-१२४॥

ततः प्रयोगः

श्मशानं तत्र संचिन्त्य तत्र कल्पद्रुमं स्मरेत् ।
तन्मध्ये मणिपीठञ्च नानामणिविभूषितम् ॥ १२५ ॥

नानालङ्कारसंयुक्तं मणिदेवैर्विभूषितम् ।
शिवाभिर्बहुमांसास्थिमोदमानं समन्ततः ॥ १२६ ॥

चतुर्दिक्षु शिवामुण्डचिताङ्गारास्थिसंयुतम् ।
तन्मध्ये भावयेद् देवीं यथोक्तध्यानयोगतः ॥ १२७ ॥

चक्र स्थान में श्मशान एवं कल्पद्रुम का चिन्तन करे। उसके बीच में नाग-मणि विभूषित 'मणिपीठ' का स्मरण करे—जो अनेक मणियों तथा देवताओं से विभूषित हो। यह भी सोचे कि इस महाश्मशान पर चारों ओर से शृगाल मांस-हड्डियों के बीच खेल रहे हैं। चारों दिशाओं में मुण्डमाल, चिता-अग्नि, मांस, अस्थि प्रभृति वहाँ शोभायमान हो रहे हैं। प्रसन्नता के साथ घर का भाव त्याग कर वहाँ वह साधक तन्त्रोक्त विधि से ध्यान करता हुआ उस बीच में तारा काली देवी की भावना करे ॥ १२५-१२७ ॥

ततस्ताराचमनं--ॐ उग्रतारायै स्वाहा। ॐ एकजटायै स्वाहा। ॐ नीलसरस्वत्यै स्वाहा। इत्याचम्य। ॐ ह्रीं स्वाहा इति करौ संशोध्य बधूबीजेन कूर्चेन ओष्ठौ परिशोधयेत्। पुनरस्त्रेण हस्तौ क्षालयेत्। मुखे ॐ वैरोचनाय नमः। नासायां ॐ शङ्खपाण्डराय नमः। ॐ पद्मनाभाय नमः। चक्षुषोः ॐ असिताङ्गाय नमः। ॐ मामकाय नमः। कर्णयोः ॐ मामकाय नमः। ॐ पाण्डवाय नमः। ॐ तारकाय नमः। हृदि ॐ पद्मान्तकाय नमः। शिरसि ॐ यमान्तकाय नमः। वामबाहौ ॐ विघ्नान्तकाय नमः। दक्षबाहौ ॐ नरान्तकाय नमः। इति ताराचमनम्।

उसके बाद तारा का आचमन करे—'ॐ उग्रतारायै स्वाहा। एकजटायै स्वाहा। ॐ नीलसरस्वत्यै स्वाहा।' इन मंत्रों से तीन बार आचमन करे। 'ॐ ह्रीं स्वाहा' मंत्र से दोनों हाथ धोकर बधू बीज तथा कूर्च बीज से दोनों होठों को परिशोधन करे। पुनः अस्त्र मंत्र से दोनों हाथों को धो डाले। तदुपरान्त अधोलिखित क्रम से मंत्रों को पढ़कर अंग-स्पर्श करे—

ॐ वैरोचनाय नमः—मुख।
ॐ शंखपाण्डराय नमः, ॐ पद्मनाभाय नमः—नासा।
ॐ आसिताङ्गाय नमः, ॐ मामकाय नमः—दोनों चक्षु।
ॐ मामकाय नमः, ॐ पाण्डवाय नमः, ॐ तारकाय नमः—दोनों कर्ण।
ॐ पद्मकान्ताय नमः—हृदय।
ॐ यमान्तकाय नमः—शिर।
ॐ विघ्नान्तकाय नमः—वाम बाहु।
ॐ नारान्तकाय नमः—दक्षिण बाहु।

(इति ताराचमनम्।)

ॐ पवित्रे! भूमि! हुं फट् स्वाहा। इति योनिमुद्रया भूमिमभिमन्त्र्य। ॐ रक्ष रक्ष मां हुं फट् स्वाहा। इति जलसेकाद् भूमिं संशोध्य।

ततः आसनाधस्त्रिकोणं विलिख्य ॐ आः सुरेखे ! वज्ररेखे ! हुं फट् स्वाहा इत्यासनमभ्यर्च्य ॐ ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः । इत्यासनमभ्यर्च्य ॐ ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः । इत्यासनमभ्यर्च्य ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहा इत्यासनमभ्यर्च्य ।

'ॐ पवित्रे ! भूमि हुं फट् स्वाहा ।' यह मंत्र पढ़ तथा योनिमुद्रा प्रदर्शन कर भूमि को अभिमंत्रित करे । 'ॐ रक्ष रक्ष मां हुं फट् स्वाहा ।' इससे जल द्वारा भूमिसंशोधन करके आसन के नीचे त्रिकोण मंत्र लिखे । तब "ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा ।" "इस मंत्र से आसन की पूजा करके "ॐ ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः ।" इस से पुनः आसन की पूजा करके 'ॐ सर्वविघ्नानुत्सराय हुं फट् स्वाहा' इस मंत्र से पुनः तीन बार आसन का पूजन करना चाहिये ।

आसनं तारार्णवे—

कोमलं विष्टरं वापि चूडकं मृदुकं तथा ।
अष्टमासान्तगर्भस्य पतनं मृदु चोच्यते ।
चतुर्वर्षान्तरालञ्च चूडकञ्च विधीयते ॥ १२८ ॥

तारार्णवतंत्र में आसन का विधान इस प्रकार है—

कोमल कुश के विष्टर को 'चूड़क, कहते हैं आठ महीने के बाद के कुश-निर्मित को मृदुक, तथा चार वर्ष के पुराने कुश से निर्मित को 'चूड़क' नामक आसन कहते हैं ॥ १२८ ॥

पञ्चाशत् कुशपत्रनिर्मितं भस्मबालुकाभिः शोधितं मार्जितमिति ।

इसी प्रकार पचास कुशपत्र का बना हुआ आसन भस्म एवं, बालुकादि से परिशोधित एवं परिमार्जित होना चाहिये ।

ततश्चाण्डालिनीगर्भजातञ्च ब्राह्मणौरसात् ।
ब्राह्मणीगर्भजातं वा चण्डालस्यापि चौरसात् ।
कमलासनमित्युक्तं मन्त्रसिद्धिप्रदायकम् ॥ १२९ ॥

चाण्डालिनी के गर्भ से उत्पन्न ब्राह्मण वीर्य से तथा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न चाण्डाल के वीर्य से इस प्रकार का 'कमलासन' मंत्र सिद्धि दायक होता है ॥ १२९ ॥

इत्यादि कमलासनं संशोध्य । ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुं स्वाहा इति पुष्पाक्षतक्षेपैर्विघ्नान्नाशयेत् । दिव्यदृष्ट्यवलोकनेन खेचरान् वामपादघातत्रयेण भौमान् विघ्नानपसार्य्य—

इस प्रकार कमलासन का परिशोधन करके 'ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुं

स्वाहा' इस मंत्र से चारों ओर पुष्पाक्षत छोड़कर विघ्न निवारण करे। दिव्य दृष्टि से देख कर तीन बार वाम पाद प्रहार से खेचर ग्रहों एवं भूमिस्थ विघ्नों को दूर करे।

गणेशादीन् प्रणम्याथ दशदिग्बन्धनञ्चरेत्।
करौ च गन्धपुष्पाभ्यां शोधयेत्तदनन्तरम्॥ १३० ॥

तपश्चात् गणेशादि देवताओं को प्रणाम करे तथा दिग्बन्धन करना चाहिये। साथ ही गन्ध-पुष्पों से दोनों हाथों को शुद्ध करे--॥ १३० ॥

फडिति गन्धपुष्पाभ्यां करौ संशोध्य तालत्रयं दत्त्वा छोटिकाभिर्दशदिग्बन्धनञ्चरेत्। वस्त्रे ग्रन्थिं बध्वा कायवाक्चित्तं शोधयेत्।

'फट्' इस मंत्र से गन्ध पुष्प स्पर्श करे, तत्पश्चात् तीन ताल देकर—चुटुकी बजाकर दशों दिशाओं का बन्धन करे। ग्रंथि बन्धी कर के वाणी, शरीर एवं मन को शुद्ध करे।

पुष्पञ्च शोधयित्वा तु भूतशुद्धिं समाचरेत्।
ततः कर्त्तारमाराध्य मूलं शीर्षे जपेद् दश॥ १३१ ॥
एकादश प्रजप्तव्यः प्रतिष्ठामनुरेव च।
मातृकान्यासकं कृत्वा मातृकायाः षडङ्गकम्॥ १३२ ॥
कराङ्गं मातृकायाश्च योनिद्वादशकं न्यसेत्।
प्राणायामं ततः कुर्यादृष्यादिन्यास एव च॥ १३३ ॥

पुष्प संशोधन करके [1]भूतशुद्धि करे। तत्पश्चात् कर्त्ता का सत्कार करके शीर्ष स्थान में मूल मंत्र का १० बार जप करना चाहिये। साथ ही ११ बार प्रतिष्ठा मंत्र भी जपना चाहिये फिर मातृकान्यास करके मातृका-षडङ्ग तथा करांग न्यास करे तथा मातृका के द्वादश योनियों का न्यास करे। तदनन्तर प्राणायाम[2] करके ऋष्यादि न्यास भी करना चाहिये॥ १३१-१३३ ॥

ओं मणिधरि! वज्रिणि! महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा। इति कायवाक्चित्तं विशोधयेत्। ओं पुष्पकेतुराजार्हते शताय सम्यक् सम्बद्धाय। ओं पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसम्भवे। पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा। इति संशोध्य भूतशुद्धिं कुर्यात्। अथ स्वाङ्के उत्तानौ करौ कृत्वा हं सः इति कुण्डलिनीं जीवात्मानं चतुर्विंशतितत्त्वानि सुषुम्नावर्त्मना शिरोऽवस्थितपरमात्मनि शिवे संयोज्य

---

१. भूतशुद्धि तन्त्रोक्त किंवा देवीभागवतोक्त करनी चाहिए।
२. प्राणायाम की विधि भी तांत्रिक ही ग्रहण करना चाहिये।

ह्रींकारं रक्तवर्णं नाभौ ध्यात्वा तदुद्भूतेनाग्निना लिङ्गशरीरं संदह्य स्त्रींकारं पीतवर्णं हृदि विचिन्त्य तदुद्भूतेन वायुना भस्म प्रोत्साय्यं हुंकारं श्वेतवर्णं शिरसि विचिन्त्य तदुद्भूतेनामृतेन तदस्थि प्लावितं कृत्वा तस्मिन् विश्वव्यापके वारिणि आःकाराद्रक्तपङ्कजं तदुपरि टांकारात् श्वेतपङ्कजं तदुपरि हूंकारं नीलसन्निभं तदुपरि ह्रीं बीजभूषितां मातृकां ध्यायेत्।

इसके बाद अपने अंक में दोनों हाथों को उत्तान करके 'हंसः' इसके प्रयोग से कुण्डलिनीस्वरूप जीवात्मा के २४ तत्त्वों के साथ सुषुम्ना मार्ग द्वारा सहस्रार-स्थित परमात्मा शिव में मिलाकर (विलयन करके) नाभिस्थान में रक्तवर्ण ह्रींकार स्वरूप आदिशक्ति का ध्यान करके उससे उद्भुत तेजोमयी अग्नि से लिङ्गशरीर को जलाकर स्त्रींकार पीत वर्णवाली शक्ति को अपने हृदय देश में विचार कर तदुत्पन्न वायु द्वारा भस्म को फैलाकर 'हूँ'काररूपी श्वेतवर्ण सदा-शिव प्रभु का शिरोदेश मे चिन्तन कर तदुद्भूत अमृत द्वारा उन अस्थियों का सिंचन करके उस विश्वव्यापक जल में 'आः'कार रक्तवर्ण का कमल मिलेगा, तत्पश्चात् 'टां'कार श्वेतकमल होगा, उसके ऊपर जाने पर 'हूँ'कार नीलकमल प्राप्त होगा। तदुपरि 'ह्रीं' बीज-विभूषित मातृका का ध्यान करे।

ॐ प्रत्यालीढपदां घोरां मुण्डमालाविभूषिताम्।
खड्गकर्त्रीसमायोगे सव्येतरभुजद्वयाम् ॥ १३४ ॥
कपालोत्पलसंयुक्तसव्यपाणियुगान्विताम्।
पिङ्गोग्रैकजटां ध्यायेन्मौलावक्षोभ्यभूषिताम् ॥ १३५ ॥
अक्षोभ्यो हरमूर्द्धन्यस्त्रिमूर्त्तिर्नागरूपधृक्।
चन्द्रसूर्य्याग्निनयनां महापानप्रमत्तिकाम् ॥ १३६ ॥

शिव के हृदय पर पैर रखनेवाली उस भयंकर काली का मैं ध्यान करता हूँ—जो मुण्डमाला से विभूषित हैं, जिन्होंने अपने दायें-बायें दोनों हाथों में खड्ग और कटार लिया है, जिनके दायें-बायें दोनों हाथ कपाल एवं कमल से युक्त हैं। जो पिङ्गल वर्ण और एक जटाधारिणी हैं। जो नील कमल के समान सुशोभित हो रही हैं। जो शिव के समान नागों से विभूषित एवं जो त्रिदेवोपम हैं, सूर्य-चंद्र-अग्नि के तेज के समान जिनके तीन नयन हैं, जो रुद्ररूपधारिणी महापान से प्रमत्त चण्डकाली हैं, उनका मैं अपने हृदय में सदा ध्यान करता हूँ ॥ १३४–१३६ ॥

इति ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वान्तर्यजनप्रकारेण मानसोपचारैराराध्य नमस्कुर्य्यात्। ततः स्वशिरसि ॐ आं ह्रीं क्लीं स्वाहा इत्येकादशधा जप्त्वा प्रतिष्ठाप्य कृताञ्जलिः।

ऐसा ध्यान करके तथा अपने सिर पर एक पुष्प रख करके—अन्तर्यजन-विधि से मानसोपचार द्वारा उनकी पूजा करके प्रणाम करे। तत्पश्चात् अपने सिर पर—'ॐ आं ह्रीं क्लीं स्वाहा' इस मंत्र को ११ बार जप करके प्राण-प्रतिष्ठा करके हाथ जोड़कर उस वाग्देवता का ध्यान करे।

अथ ध्यानम्

पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्तमुखदोःपन्मध्यवक्षःस्थलां
भास्वन्मौलिनिबद्धचन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनीम्।
मुद्रामक्षगुणं सुधाढ्यकलसं विद्याञ्च हस्ताम्बुजै-
र्बिभ्राणां विशदप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये॥ १३७॥

जिनका मुख, भुजा, पैर तथा मध्यभाग एवं वक्षःस्थल पंचाशत् (५०) वर्णों में विभक्त है, सिर पर चमकती हुई चन्द्रकला जिसकी शोभा दे रही है, जो ऊँची एवं कठोर कुचवाली हैं। जिनके चारों हाथों में मुद्रा, स्फटिकमाल, सुधा से भरा कलस तथा विद्या (मंत्र वरदान) विराज रही हैं, जो निर्मल कान्तिवाली त्रिनयना हैं—ऐसी वाणी की अधिष्ठात्री देवता श्री सरस्वती देवी की शरण में हम हैं॥ १३७॥

इति मातृकां ध्यात्वा। मातृकान्यासं कुर्य्यात्। अं नमो ललाटे। आं नमो मुखे। इं नमो दक्षिणचक्षुषि। ईं नमो वामचक्षुषि। उं नमो दक्षकर्णे। ऊं नमो वामकर्णे। ऋं नमो दक्षनसि। ॠं नमो वामनासि। ऌं नमो दक्षगण्डे। ॡं नमो वामगण्डे। एं नमो ओष्ठे। ऐं नमो अधरे। ओं नमो ऊर्द्ध्वदन्ते। औं नमो अधोदन्ते। अं नमो ब्रह्मरन्ध्रे। अः नमो मुखे। कं नमो दक्षबाहुमूले। खं नमः कूर्परे। गं नमः कवचे। घं नमोऽङ्गुलिमूले। ङं नमोऽङ्गुल्यग्रे। तथा दक्षहस्तेन चं छं जं झं ञं वामबाहुमूलचतुःसन्ध्यग्रेषु टं ठं डं ढं णं दक्षपाद-मूलचतुःसन्ध्यग्रे तं थं दं धं नं वामपादमूलचतुःसन्ध्यग्रेषु। पं नमो दक्षपार्श्वे। फं नमो वामपार्श्वे। बं नमः पृष्ठे। भं नमो नाभौ। मं नम उदरे। यं नमो हृदये। रं नमो दक्षस्कन्धे। लं नमः ककुदि। वं नमो वामस्कन्धे। शं नमो हृदादिदक्षकरे। षं नमो हृदादिवाम-करे। सं नमो हृदादिदक्षपादे। हं नमो हृदादिवामपादे। ळं नमो हृदादि उदरे। क्षं नमो हृदादिमुखे।

इस प्रकार मातृकादेवी[1] का ध्यान करके मातृकान्यास करे। यथा—

१. मातृका देवी का न्यास पहले बताचुके हैं।

अं—ललाट में	आं—मुख में
इं—दक्षिण नेत्र में	ईं—वाम नेत्र में
उं—दक्षिण कर्ण में	ऊं—वाम कर्ण में
ऋं—दक्षिण नासिका में	ॠं—वाम नासिका में
ऌं—दक्षिण कपोल में	ॡं—वाम कपोल में
एं—ऊपर ओष्ठ में	ऐं—अधरोष्ठ में
ओं—ऊर्ध्व दन्त में	औं—अधो दन्त में
अं—ब्रह्मरन्ध्र में	अः—मुख में
कं—दक्षबाहुमूल में	खं—कर्पूर (केहुनी) में
गं—कवच स्थान (कलाई) में	घं—अंगुलिमूल में

ङं—अंगुलाग्र में

इसी प्रकार—

चं छं जं झं ञं—वाम कर के चारों संधियों में[1]

टं ठं डं ढं णं—दक्षपाद[1] में	तं थं दं धं नं—वामपाद मूल में
पं—दक्ष पार्श्व में	फं—वाम पार्श्व में
बं—पृष्ठ में	भं—नाभि में
मं—उदर में	यं—हृदय में
रं—दक्ष स्कंध में	लं—ककुद में
वं—वाम स्कंध में	शं—हृदादि दक्ष कर में
षं—हृदादि वाम कर में	सं—हृदादि दक्ष पाद में
लं—हृदादि उदर में	क्षं—हृदादि मुख में

मतान्तरे यथा—

ललाटे मुखवृत्ते च चक्षुषोः कर्णयोर्नसोः।
गण्डयोरोष्ठयोर्वापि दन्तपंक्त्योर्विशेषतः ॥ १३८ ॥
ब्रह्मरन्ध्रे पुनर्वक्त्रे अकारादीन् न्यसेद् बुधः।
तर्जनीमध्यमायोगं अकारे विन्यसेद् बुधः ॥ १३९ ॥
मध्यमानामिकायोगाद् मध्यं वक्त्रे न्यसेत् ततः।
मध्यमाङ्गुष्ठयोगेन विन्यसेच्चक्षुषोस्तथा ॥ १४० ॥

अब यहाँ अंगन्यास की विधि मतान्तर से कही जाती है। ललाट, मुख, दोनों नेत्र, दोनों कर्ण, कान, कपोल, ओष्ठों तथा दन्तपंक्तियों में वर्ण-विन्यास अकारादिक्रम से करे। साथ ही ब्रह्मरन्ध्र तथा पुनः मुख में चतुर साधक इस

---

१ पूर्ववत् कर-पाद के चारों संधियों में न्यास करना चाहिये।

प्रकार न्यास करें। तर्जनी और मध्यमा अंगुली के योग से ललाट में, मध्यमा और अनामिका के योग से मुख-स्पर्श करे। उसके बाद मध्यमा और अंगुष्ठ के योग से दोनों नेत्रों को छुवे ॥ १३८-१४० ॥

अनामाङ्गुष्ठयोगेन कर्णयोर्न्यसनीयकम्।
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन नासायोगे परिन्यसेत् ॥ १४१ ॥
अनामामध्यमायोगाद् गण्डयोर्विन्यसेत् सदा।
अङ्गुष्ठपर्वणा न्यासः कर्त्तव्यश्चोष्ठयोरपि ॥ १४२ ॥
मध्यमाग्रं समादाय दन्तयोर्न्यसनीयकम्।
अङ्गुष्ठाग्रं ब्रह्मरन्ध्रे मुखे करतलं विदुः ॥ १४३ ॥

अनामिका अंगुष्ठ योग से दोनों कानों का स्पर्श करे। और तर्जनी अंगुष्ठ योग से नासिका छुवे। साथ ही अनामिका तथा मध्यमा के योग से दोनों गालों को छुवे। अंगुष्ठ के पोर से दोनों ओठों को छुवे। मध्यमा तथा आद्य (कनिष्ठिका) के योग से दाँत की दोनों पंक्तियों को छुवे। और पुनः अंगुष्ठ तथा कनिष्ठिका के योग से ब्रह्मरन्ध्र (सहस्रार) को एवं करतल (हथेली) से मुख स्पर्श करे ॥ १४१-१४३ ॥

विद्यामुद्रां समादाय हस्तयोः साधकोत्तमः।
विन्यसेद्धस्तपादेषु पार्श्वे पृष्ठे च नाभितः ॥ १४४ ॥
हृदाकारं तलं प्रोक्तं मातृकान्यासकर्मणि।
ककुदि स्कन्धयोर्वापि पुनः सर्वत्र हस्तयोः ॥ १४५ ॥

इसी प्रकार साधकोत्तम को चाहिये कि विद्यामुद्रा से दोनों हाथों को छुवे। हस्त-पादों में तथा बगल में, पीठ में एवं नाभि से लेकर हृदाकार तक मातृका-न्यास कर्म में 'तल' कहा जाता है। इसलिये ककुद (डील) कन्धे तथा सभी अंगों में न्यास करना चाहिये ॥ १४४-१४५ ॥

ततो मूलेन शिर आदि पादान्तं पादादि शिरोऽन्तं शिर आदि हृदयान्तं हृदादि मुखान्तम् इति व्यापकत्रयं कुर्य्यात्।

अकारादिपुटैर्वर्गैर्न्यसेदङ्गकराङ्गकम्।

इसके बाद मूल मंत्र से शिर से पैर तक तथा पैर से सिर तक, एवं शिर से हृदय तक, हृदय से मुख तक तीन व्यापक करें। तत्पश्चात् नीचे की विधि से अकारादि स्वर एवं कुकारादि व्यञ्जन वर्गों द्वारा करन्यास-अंगन्यास करे।

अथ अङ्गन्यासः

अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः। इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा। उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट्। एं तं थं दं धं नं ऐं

कचाय हुं । ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट् । अं यं रं लं वं शं पं सं हं लं क्षं अः करतलपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट् । अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा । उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां वषट् । एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां हुं । ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठाभ्यां वौषट् । अं यं रं लं वं शं पं सं हं लं क्षं अः करतलपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् ।

योनिद्वादशविद्याञ्च विन्यसेत् साधकोत्तमः ।
मूर्ध्नि वक्त्रे तथा कण्ठे हृदये चोदरे तथा ॥ १४६ ॥
नाभावाधारपद्मे च पदोर्बाह्वोश्च सर्वतः ।
योनिवेद्या योनिनित्या योनिरूपा तथैव च ॥ १४७ ॥
योनिमध्या योनिसिद्धा योनिक्लृप्ता च योनिदा ।
योनिहा योनिसाध्या च योनिज्ञाना च योनिपा ।
योनिपुण्या तथान्यासश्चतुर्वर्गस्य सिद्धये ॥ १४८ ॥

उत्तम साधक को चाहिये कि वह योनि द्वादश विद्या का विन्यास करे । उससे मूर्द्धा, मुख, कण्ठ, हृदय तथा उदर तथा नाभि एवं मूलाधार चक्र में, दोनों पदों एवं भुजाओं में सर्वत्र न्यास करे; क्योंकि योनिरूपा नित्य योनि ही योनिवेद्या कही गयी है । वही योनिमध्या, योनिसिद्धा, योनिक्लृप्ता तथा योनिप्रदा है । पवित्र योनि होने के कारण वह चारों पदार्थों को देनेवाली है अतः उसकी सिद्धि के लिये तथोक्त न्यास अवश्य करना चाहिये ॥ १४६–१४८ ॥

अथ योनिन्यासः

मृगमुद्रया मूर्ध्नि ॐ योनिवेद्यायै नमः । वक्त्रे ॐ योनिनित्यायै नमः । कण्ठे ॐ योनिरूपायै नमः । हृदये ॐ योनिमध्यायै नमः । उदरे ॐ योनिसिद्धायै नमः । नाभौ ॐ योनिक्लृप्तायै नमः । मूलाधारे ॐ योनिदायै नमः । दक्षपादे ॐ योनिहायै नमः । वामपादे ॐ योनिसाध्यायै नमः । दक्षबाहौ ॐ योनिज्ञानायै नमः । वामबाहौ ॐ योनिपायै नमः । सर्वाङ्गे ॐ योनिपुण्यायै नमः । इति विन्यसेत् । इति द्वादशयोनिन्यासः ।

१–योनिवेद्यायै नमः – मृगमुद्रा द्वारा सिर में ।
२–ॐ योनिनित्यायै नमः – मुख में । ३–ॐ योनिरूपायै नमः – कण्ठ में ।
४–ॐ योनिमध्यायै नमः – हृदय में । ५–ॐ योनिसिद्धायै नमः – उदर में ।
६–ॐ योनिक्लृप्तायै नमः – नाभि में । ७–ॐ योनिदायै नमः–मूलाधार में ।
८–ॐ योनिहायै नमः–दक्षिणपाद में । ९–ॐ योनिसाध्यायै नमः–वामपाद में ।

१०-ॐ योनिज्ञानायै नम. – दक्षिण भुजा में।

११-ॐ योनिपायै नमः – वाम भुजा में।

१२-ॐ योनिपुण्यायै नमः – सर्वाङ्ग में।

अथ प्राणायामः

दक्षहस्ताङ्गुष्ठेन दक्षनासापुटं धृत्वा मूलं षोडशवारं जप्त्वा वायुं पूरयेत्। ततो नासापुटौ कनिष्ठिकानामिकाभ्यां धृत्वा चतुःषष्टिवारजपेन कुम्भयित्वा वामनासायां कनिष्ठानामिकाभ्यां धृत्वा द्वात्रिंशद्वारजपेन दक्षिणेन रेचयेत्। पुनर्दक्षिणेनापूर्य्य वामेन रेचयेत्।

दाहिने हाथ के अंगूठे से दाहिना नासिका को पकड़ कर मूल मंत्र का १६ बार जप कर वायु को खींचे। उसके बाद कनिष्ठिका और अनामिका से दोनों (नासापुट) को दबाकर ६४ बार मंत्र जपकर कुम्भक करे। अंगूठे को छोड़कर ३२ बार मंत्र जप करता हुआ दक्षिण नासिका से रेचक करे। पुनः दक्षिण से पूर्ण कर वाम से और वाम से पूर्ण कर दक्षिण से रेचक करे। क्योंकि,

कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्यन्नासापुटधारणम् ।
प्राणायामः स विज्ञेयः पूरकुम्भकरेचकैः ॥ १५६ ॥

कनिष्ठिका, अनामिका एवं अंगुष्ठ के योग से नासापुट धारण करना तथा पूरक, कुम्भक एवं रेचक करना ही 'प्राणायाम' कहलाता है ।।१४९ ॥

इत्थमेव वारत्रयं कुर्य्यादिति प्राणायामः।

इस प्रकार तीन बार प्राणायाम करने का विधान है।

अथ ऋष्यादिन्यासः

शिरसि ॐ अक्षोभ्य ऋषये नमः। मुखे ॐ बृहस्पतिच्छन्दसे नमः। हृदि श्रीमत्तारायै एकजटायै देव्यै नमः। मूलाधारे हुं बीजाय नमः। पादयोः फट् शक्तये नमः। सर्वाङ्गे निजबीजकीलकाय नमः।

ॐ अक्षोभ्य ऋषये नमः — शिरसि।

ॐ बृहस्पतिच्छन्दसे नमः — मुखे।

श्रीमत्तारायै एकजटायै देव्यै नमः — हृदि।

हुं बीजाय नमः — मूलाधारे।

फट् शक्तये नमः — पादयोः।

निजबीजकीलकायै नमः — सर्वाङ्गे।

---

१. सद्गुरु द्वारा प्राणायाम की विधि सीख कर अभ्यास कर लेना चाहिये। इसी को 'प्राणायामः परं तपः' कहा गया गया है।

अथ पीठशक्तिन्यासः

पीठन्यासं ततः कृत्वा पीठशक्तिं न्यसेत्ततः।
तत्तन्न्यासं विधायाथ बीजन्यासं समाचरेत् ॥ १५० ॥

इसके बाद पीठन्यास करके पीठशक्ति का न्यास करे। इस प्रकार तत्तन्न्यास का विधान करके 'बीजन्यास' करना चाहिये ॥ १५० ॥

कराङ्गञ्च षडङ्गञ्च न्यस्त्वा वर्णान्न्यसेत्ततः।
संशोध्य यन्त्रं देहे तु पीठपूजां समाचरेत् ॥ १५१ ॥

उपर्युक्त विधि से कराङ्ग तथा षडङ्ग न्यास करके वर्णन्यास करे। तत्पश्चात् अपने शरीर में ही मन्त्र-संशोधन करके 'पीठपूजा' करे ॥ १५१ ॥

गणेशं वटुकञ्चैव क्षेत्रपालञ्च योगिनीम्।
पीठपूजां ततः कृत्वा पीठशक्तिं प्रपूजयेत् ॥ १५२ ॥

गणेशजी, वटुकजी, क्षेत्रपाल एवं योगिनी एवं पीठ पूजा करके 'पीठशक्ति' की सम्यक् प्रकार से पूजा करे ॥ १५२ ॥

षोढां कृत्वा ततो मन्त्री अर्घ्यं कृत्वा च तत् पुनः।
व्यापकं पञ्चधा कृत्वा पूजयेत् परदेवताम् ॥ १५३ ॥

तत्पश्चात् मंत्रज्ञ साधक को चाहिये कि वह तथोक्त षड्विध[1] पूजा करके अर्घ्य प्रदान करे तत्पश्चात् पुनः पाँच प्रकार का व्यापक करके परदेवता (तारा) का पूजन करे ॥ १५३ ॥

हृदि हस्तं दत्त्वा मृगमुद्रया हृत्पद्मस्य केशरेषु—

हृदय पर हाथ रखकर मृगमुद्रा द्वारा हृदय कमल के केशरों में—

ॐ श्मशानाय नमः। ॐ कल्पवृक्षाय नमः। ॐ मणिपीठाय नमः। ॐ नानालङ्कारेभ्यो नमः। ॐ मुनिभ्यो नमः। ॐ देवेभ्यो नमः। ॐ बहुमांसास्थिमोदमानशिवाभ्यो नमः। चतुर्दिक्षु ॐ शवमुण्डचिताङ्गारास्थिभ्यो नमः। इति पीठन्यासः।

हृदि ॐ लक्ष्म्यै नमः, ॐ सरस्वत्यै नमः, ॐ प्रीत्यै नमः, ॐ कीर्त्यै नमः, ॐ शान्त्यै नमः, ॐ तुष्ट्यै नमः, ॐ पुष्ट्यै नमः।

अथ तत्त्वन्यासः

उपर्युक्त मंत्र कहकर पीठशक्ति (सप्तमातृकाओं) का न्यास करे।

ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा इति आधारादि हृत्पर्य्यन्तम्। ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा इति हृदादि मुखपर्य्यन्तम्। ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा इति मुखादि ब्रह्मरन्ध्रान्तम्।

---

१. गणेश, वटुक, क्षेत्रपाल, योगिनी, पीठपूजा तथा पीठशक्ति— यह 'षोढा' पूजा कही गयी है।

ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा — मूलाधार से हृदयपर्यन्त ।

ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा -- हृदय से मुखपर्यन्त ।

ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा -- मुख से ब्रह्मरन्ध्र तक ।

अथ बीजन्यासः ।

मन्त्रं पञ्चखण्डं कृत्वा ब्रह्मरन्ध्रात् ललाटान्तम् । आद्यबीजं नमोऽन्तं न्यसेत् । ललाटात् मुखान्तं द्वितीयबीजं नमः । मुखादाकण्ठं तृतीयबीजं नमः । कण्ठात् हृदयान्तं चतुर्थवर्णं नमः । हृदयान्मुखान्तं पञ्चमवर्णं नमः ।

साधक को चाहिये कि अपने देह में ही पाँच खण्ड करके पंचवर्गीय मंत्र (वर्णन्यास) का न्यास इस प्रकार करे। (ब्रह्मरन्ध्र) से ललाट तक प्रथम बीज को नमोऽन्त सहित क्रमशः करे। ललाट से मुख तक, मुख से कण्ठ तक, कण्ठ से हृदय तक, तथा हृदय से मुखपर्यन्त 'नमः' जोड़कर बीजन्यास करे। यथा—प्रथमबीजं, द्वितीयबीजं, तृतीयबीजं, चतुर्थबीजं, पञ्चमबीजं च नमः ।

अथ कराङ्गन्यासः

हकारं रेफसंयुक्तं षड्दीर्घेण समन्वितम् ।
चन्द्रखण्डयुतं कृत्वा विन्यसेत् साधकोत्तमः ॥ १५४ ॥

रेफसहित हकार को षड्दीर्घ[1] के साथ जोड़े और इस पर चन्द्रबिन्दु लगाकर साधक न्यास करे ॥ १५४ ॥

एकजटा तारिणी च न्यस्या वज्रोदका तथा ।
उग्रजटा ततो न्यस्या महाप्रतिसरा तथा ॥
पिङ्गोग्रैकजटा पश्चात् कराङ्गेषु षडङ्गतः ॥ १५५ ॥

एकजटातारिणी देवी का न्यास करके वज्रोदक, उग्रजटा तथा पिङ्गला, उग्रा, एकजटा का भी छः प्रकार से कराङ्गन्यास करना चाहिये ॥१५५॥

तथा ह्रां एकजटायै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ह्रीं तारिण्यै तर्जनीभ्यां स्वाहा । ह्रूं व्रजोदके मध्यमाभ्यां वषट् । ह्रैं उग्रजटे अनामिकाभ्यां हुम् । ह्रौं महाप्रतिसरे कनिष्ठाभ्यां वौषट् । ह्रः पिङ्गोग्रैकजटे करतलपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट् ।

यथा—

ह्रां एकजटायै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः – दोनों अंगूठे से ।

ह्रीं तारिण्यै तर्जनीभ्यां नमः – दोनों तर्जनी से ।

ह्रूं वज्रोदके मध्ययाभ्यां वषट् – दोनों मध्यमा से ।

---

१. षड्दीर्घ है—आ ई, ऊ, ऐ, औ, अः । अर्थात् ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, ह्रैं, ह्रौं, ह्रः—ये पञ्चबीज हैं ।

हैं उग्रजटे ! अनामिकाभ्यां हुं – दोनों अनामांगुलियों से ।

ह्रौं महाप्रतिसरे कनिष्ठाभ्यां वौषट् – कनिष्ठिकांगुलियों से ।

ह्रः पिङ्गोग्रैकजटे करतलपृष्ठाभ्यां – अस्त्राय फट् ।

अथ षडङ्गन्यासः

ह्रां एकजटायै हृदयाय नमः। ह्रीं तारिण्यै शिरसे स्वाहा। ह्रूं वज्रोदके शिखायै वषट्। ह्रैं उग्रजटे कवचाय हुं। ह्रौं महाप्रतिसरे नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्रः पिङ्गोग्रैकजटे करतलपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट्।

अथ मन्त्रशोधनप्रकारः

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं नमो हृदि। एं ऐं ओं औं कं खं गं घं नमो दक्षबाहौ। ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमो वामबाहौ। णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमो दक्षपादे। मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं नमो वामपादे। ततः श्रीमदेकजटायन्त्रम् उद्धृत्य संस्कुर्यात्। ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हुँ फट् नमः। इति योनिमुद्रां प्रदर्श्य यन्त्रं शोधयेत्।

अर्थात् अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं (हृदय में), एं ऐं ओं औं कं खं गं घं नमः (दक्षिण भुजा में), ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमः (वाम-भुजा में), णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमः (दक्षिण पैर में), मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं नमः (वामपाद में), न्यास करके 'एकजटामंत्र' का उद्धार कर उसका संस्कार इस प्रकार करे—

ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हुँ फट् नमः। योनिमुद्रा दिखा कर यंत्र-शोधन करे।

अथ पूजाप्रारम्भः

ततः पूजामारभेत्। पूर्वादितः ॐ ह्रीं गां गणपतये नमः। दक्षिणे ॐ ह्रीं वां वटुकाय नमः। पश्चिमे ॐ ह्रीं क्षें क्षेत्रपालाय नमः। उत्तरे ॐ ह्रीं यां योगिनीभ्यो नमः। पीठन्यासवत् पीठपूजां कृत्वा पूर्वाद्यष्टदले पीठशक्तिं संपूज्य मध्ये ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः।

पूर्व में—ॐ ह्रीं गां गणपतये नमः।

दक्षिण में—ॐ ह्रीं वां वटुकाय नमः।

पश्चिम में—ॐ ह्रीं क्षें क्षेत्रपालाय नमः।

उत्तर में—ॐ ह्रीं यां योगिनीभ्यो नमः।

पीठ न्यास के समान पीठपूजा करके पूर्वादि अष्टदलों में पीठशक्ति की पूजा करके मध्य में "ह्सौः सदाशिव-महाप्रेतपद्मासनाय नमः।" कहे।

ततः स्ववामे बिन्दुमध्यत्रिकोणवृत्तचतुरस्रमण्डलं कृत्वा तत्र श्रीमदेकजटादेव्याः अर्घ्यस्थानाय नमः। तत्र त्रिपदिकामावाह्य जलेनाभ्युद्य फडिति पात्रं प्रक्षाल्य यत्र संस्थाप्य श्रीमदेकजटादेव्याः ॐ अर्घ्यपात्राय नमः।

इसके बाद अपने वाम भाग में मध्यबिन्दु सहित त्रिकोण के बाद वृत्त तथा चतुरस्रमण्डल वर्गाकार बनाकर उसमें श्रीमती 'एकजटा' को अर्घ्य देवे। 'अर्घ्यस्थानाय नमः' कहकर वहाँ त्रिपदिका (तिपाई) लाकर जल से अभ्युक्षण करे। वहाँ 'फट्' इस मंत्र से पात्र-प्रक्षालन करके भी एकजटा देवी को वहाँ स्थापित करे. तत्पश्चात् 'ॐ अर्घ्यपात्राय नमः' कहकर।

ततो मूलेनापूर्य्य रक्तचन्दनबिल्वपत्रदूर्वाक्षतादीन्निक्षिप्य विलोममातृकावर्णैर्मूलेन च बिन्दुस्रुतसुधामयजलेन शङ्खमापूर्य्य तत्र गङ्गे चेत्यादिना अङ्कुशमुद्रया अर्घ्यमावाह्य वं इति धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य योनिमुद्रां प्रदर्श्य मत्स्यमुद्रया आच्छाद्य तत्र देवीं ध्यात्वा पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा षडङ्गानि विन्यस्य मूलं तत्र दशधा जप्त्वा तज्जलैः पुष्पादिना आत्मानं पूजोपकरणं चाभ्युद्य पञ्चार्घ्यं कृत्वा पञ्चधा व्यापकं कृत्वा देवीं ध्यायेत्;

मूलमंत्र से उस पात्र में जल भर देवे साथ ही रक्तचंदन, बिल्वपत्र, दूर्वा, अक्षत, पुष्पादि छोड़कर विलोम मातृकावर्णों से तथा मूल मंत्र से बिन्दु-स्रवित-सुधामय सलिल से शंख परिपूर्ण करे। तत्पश्चात् उसमें पात्र (कलश) में "गङ्गे च ...." इत्यादि मंत्र से आवाहन करके 'अंकुशमुद्रा' द्वारा अर्घ्य का आवाहन करे 'वं' इति 'धेनुमुद्रा' से अमृतीकरण करे। योनिमुद्रा का प्रदर्शन करके मत्स्यमुद्रा से उसे आच्छादित करे। तब वहाँ देवी का ध्यान करके पुष्पाञ्जलि चढ़ाकर षडंग न्यास करे, उसके बाद वहीं पर मूलमंत्रको १० बार जपना चाहिये। उस जल से तथा पुष्पादिको से अपने शरीर एवं पूजा-सामान का अभ्युक्षण कर, पाँचों प्रकार के 'व्यापक' कृत्य करके देवी का इस प्रकार ध्यान करे।

ध्यायेत् श्रीतारकादेवीं करकच्छपमुद्रया।
विशेषतः फलार्थी च ध्यायेत् तां योनिमुद्रया॥ १५६॥

'करकच्छपमुद्रा' दिखाकर श्रीतारादेवी का वहाँ ध्यान करे। विशेष फल चाहनेवाला साधक 'योनिमुद्रा' दिखाकर उस देवी का ध्यान करे॥ १५६॥

प्रत्यालीढपदार्पिताङ्घ्रिशवहृद्घोराट्टहासा परा
खड्गेन्दीवरकर्त्रिखर्परभुजा हुंकारबीजोद्भवा।

खर्वा नीलविशालपिङ्गलजटाजूटैकनागैर्युता
जाड्यं न्यस्य कपालके त्रिजगतां हन्त्युग्रतारा स्वयम् ॥ १५७ ॥

शिवजी के हृदय पर जिन्होंने अपने दोनों चरण रखे हैं और जो भयंकर अट्टहास कर रही हैं। जिन्होंने अपने चारों हाथों में खड्ग, कमल, कर्त्रिका (कैंची) और खप्पर धारण किया है, जो हुंकार बीज से प्रगट हुई हैं, जो स्थूलवदन की हैं तथा जिसने नीले एवं पिंगल वर्ण के विशाल जटाजूट के ऊपर सर्प का फेटा बांधा है। तीनों लोक की जड़तारूपी अंधकार को जिन्होंने अपने कपोल में निहित कर रखा है—ऐसी उग्रतारा भगवती स्वयं त्रिलोकान्धकार को दूर करती हैं; क्योंकि वे स्वयं प्रकाशमयी (ज्योतिर्मयी) जगन्माता हैं ॥१५७॥

इति ध्यात्वा यन्त्रे तत् पुष्पं दत्त्वा ध्यानरहस्यं विभाव्य आवाहयेत्।

इस प्रकार ध्यान कर, मंत्र में उस पुष्प को छोड़ देवे, पुनः ध्यानरहस्य की भावना करके आवाहन करे।

यथा सर्वामभिनवजलधरनीलां लम्बोदरीं व्याघ्रचर्माघृतशोभितकटीम्, पीनोन्नतपयोधरां रक्तवर्त्तुलनेत्रत्रयां पृष्ठेऽतिनीलजटाजूटां शीर्षेऽक्षोभ्यमहादेवकृतनागफणातिशोभितां पार्श्वद्वये लम्बमाननीलोत्पलमालां पञ्चमुद्रास्वरूपशुभ्रत्रिकोणाकारकपालपञ्चतमाम् अतिनीलजटाजूटां विस्तीर्णचमरिकाकेश इव महाविगलितचिकुरां शुभ्रवर्णतक्षकनागकृतकङ्कणां रक्तवर्णनागकृतस्वल्पहारां चित्रितवर्णशेषनागकृतहारां स्वर्णवर्णस्वल्पनागपादाङ्गुरीयकाम् ईषद्रक्तनागकृतकटिसूत्रां दूर्वादलश्यामलनागकृतवलयां चन्द्रसूर्य्यवह्निकृतनेत्रत्रयां कोटिकोटिबालरविच्छविकृतदक्षिणनेत्रां कोटिकोटिबालचन्द्रकृतवामनेत्रां लक्षलक्षदहनकृतोर्ध्वनेत्रां ललज्जिह्वां महाकालशवरूपहृदयस्थितसङ्कुचितदक्षिणचरणां शवपादद्वयस्थितप्रसारितवामचरणाम् एतेन प्रत्यालीढपदां सद्यश्छिन्नगलद्रुधिरान्योन्यकेशग्रथितमुण्डमालावलीरम्यां सर्वरूप्यलङ्कारशोभितां महामोहविमोहिनीं महामोक्षविदायिकां विपरीतरताशक्तां रत्यावेशस्मेराननाम्।

जो देवी सर्वमयी, नूतन जलधर-स्वरूपा लम्बोदरी हैं, जिन्होंने अपने कमर में व्याघ्रचर्म लपेटा है, जो स्थूल एवं समुन्नत कुचवाली हैं, जिनके लाल-लाल

---

१. यह काले खप्पर का वर्णन कैसा अतिशयोक्तिपूर्ण एवं भावगम्य है, इसे अन्तर्मुखी साधक ही समझ सकते हैं।

गोले तीन नयन हैं, जिनके पीठ पर अत्यन्त काले केश लटके रहते हैं। जिनका सिर अक्षोभ्य महादेव जी के प्रिय नाग के फनों से सुशोभित है। दोनों बगल में नील कमलों की विशाल मालाएँ शोभित हो रही हैं। [1]पंचमुद्रास्वरूपिणी शुभ्र त्रिकोणाकार कपालपंचक को धारण करनेवाली, अत्यन्त नील जटाजूट-वाली, विशाल चँवर सदृश केशों से सुशोभित, श्वेतवर्ण के तक्षक नाग का वलय (कंकण) वाली, लाल सर्प के समान स्वल्पाहार करने वाली, चित्र-विचित्र वर्ण वाले शेषनाग-रचित हारवाली, सोनहले पीतवर्ण के लघुसर्पों की मुद्रिकावाली, कुछ ललाई लिये रक्तनाग की बनी कटिसूत्र (डण्डा) वाली, दूर्वादल के समान श्यामवर्ण के नागों के वलय वाली, सूर्य-चन्द्र-अग्निस्वरूप, त्रिनयना, करोड़ों बाल रवि की छटायुक्त दक्षिण नेत्रवाली, करोड़ों बालचन्द्र के समान शीतल नयनवाली, लाखों अग्निज्वाला से भी तीक्ष्ण तेजोरूप नयन वाली, लप-लपाती हुई जीभवाली, महाकाल (शिव) रूपी शव के हृदय पर स्थित दक्षिण पाद को कुछ मोड़ी हुई तथा उस शव के दोनों पैरों पर अपने वाम पैर को फैलायी हुई—अतएव प्रत्यालीढ पदवाली उस महाकाली का हमलोग ध्यान करते हैं—जो तुरत कटे हुए रुधिराक्त केशों से गूँथे हुए मुण्डमालों से अत्यन्त रमणीय हो गयी हैं। सब प्रकार की स्त्री-भूषणों से विभूषित एवं महामोह को भी मोहनेवाली हैं। महामुक्ति प्रदान करनेवाली, विपरीत-रतिक्रीड़ा निरता एवं रति कामावेश के कारण प्रसन्नमुखी हैं।

दक्षिणहस्ताधोधृतकर्त्रिकां तदूर्ध्वे लक्षचन्द्रहासखड्गधरां वामोर्ध्वे सर्वशिष्याणां भयहरणाय आसवगलितनीलोत्पलकिञ्चिद्विकस्मररक्तनागधरां तदधःकपालचसकसद्यःकृत्तमुण्डशोभितभुजां हुङ्कारबीजोद्भवां सर्वब्रह्माण्डानां कर्त्रीं क्षपयत्रीं षोडशाब्दां सर्वज्ञानविदायिनीं ध्यात्वा आवाहयेत्।

नीचे के दक्षिण हाथ में कर्तृका तथा ऊपर के हाथ में लाखों चन्द्रहास की तरह चमकाने वाला खड्ग धारण करनेवाली एवं ऊपर के वाम हाथ में सब शिष्यों के भयहारी, विषरहित काले सर्पों को धारण करनेवाली और नीचे के हाथ में वह कपालचषक है—जिसमें सद्यःकटित मुण्ड से भरा एवं भुजा भी सुशोभित हो रही है। 'हुँ'कार बीज वाली वह देवी—जो सकल ब्रह्माण्ड निर्मात्री, रक्षयित्री एवं संहारयित्री हैं—ऐसी षोडशवर्षीया सब प्रकार के ज्ञानों को देनेवाली महादेवी का ध्यान करके आवाहन करे।

---

१. श्वेत, लाल, पीले, नीले, चित्रित लघुसर्पों के भूषण से यहाँ तात्पर्य है।

ॐ देवेशि ! भक्तिसुलभे ! परिवारसमन्विते ! ।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव ॥ १५८ ॥

हे भक्ति से प्राप्त होनेवाली देवेश्वरि ! जब तक मैं आपकी पूजा करूँ तब तक आप सपरिवार यहीं स्थिर रहें ॥ १५८ ॥

इत्युक्त्वा ऊर्ध्वाञ्जलिना श्रीमदेकजटे ! देवि ! इहागच्छागच्छ अधोमुखाञ्जलिना इह तिष्ठ तिष्ठ गर्भाङ्गुष्ठमुष्टिभ्याम् इह सन्निधेहि तदधोमुखेन इह सन्निरुद्धस्वहस्तं भ्रामयित्वा अत्र अधिष्ठानं कुरु मम पूजां गृहाण ।

ऐसा कह कर ऊपर को हाथ जोड़ कर यह कहे कि हे श्रीमति ! एकजटे देवि ! यहाँ आओ-आओ । अधोमुख अंजलि करके कहे—'यहाँ ठहरो, ठहरो ।' मुट्ठी में अंगूठे को दबाकर 'निकट बैठो, निकट बैठो' ऐसा कहे । तत्पश्चात् अधोमुख होकर तथा अपना हाथ छुपाकर—यहाँ निवास करो और मेरी पूजा ग्रहण करो ।

आकारं बिन्दुसंयुक्तं मायापाशविभूपितम् ।
वह्निजाया च हंसान्तः प्रतिष्ठामन्त्र ईरितः ॥ १५९ ॥

प्रतिष्ठामंत्र इस प्रकार है :—

'ॐ आं ह्रीं क्लीं स्वाहा हंसः ।'

अर्थात् बिन्दु समेत आ (आं) माया और पाश (ह्रीं, क्लीं) तथा वह्नि-जाया (स्वाहा) अन्त में हंस रखने से देवी प्रतिष्ठामंत्र कहा गया है ॥ १५९ ॥

आं ह्रीं क्रीं स्वाहा हंसः श्रीमदेकजटादेवतायाः प्राणा इह प्राणाः एवं जीव इह स्थितः एवं सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि एवं वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा । इत्यनामाङ्गुष्ठसंयुक्ताग्रेण प्रतिष्ठापयेत् । ततो मूलं दशधा जप्त्वा धेनुयोनिमत्स्याङ्कुशशङ्खखड्गमृगगालिनीमुद्राः प्रदर्श्य श्रीमदेकजटे ! देवि ! वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा । इति पुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा पूजयेत् ।

'आं ह्रीं क्लीं स्वाहा हंसः' श्रीमदेकजटादेवतायाः प्राणा इह प्राणाः, एवं जीव इह स्थितः । एवं सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि, एवं वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राण-प्राणा इहागतं सुखं चिरं तिष्ठन्तु ।' इस प्रकार गद्यात्मक मंत्र द्वारा प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये । इस मंत्र से अनामिका और अंगुष्ठ के संयोग से प्राणप्रतिष्ठा करे । तत्पश्चात् मूलमंत्र को दस बार जप कर धेनु, योनि, मत्स्य, अङ्कुश, शशांक, खड्ग, मृग, गालिनी मुद्राएँ दिखाकर इस मंत्र से पुष्पादिपूर्वक पूजन करे । मंत्र यथा—'श्रीमदेकजटे ! देवि !! वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा ।'

ऊर्ध्वकेशव्योमकेशनीलकण्ठवृषध्वजान् ।
तत्रैवानन्दनाथान्तान् पूजयित्वा फलं लभेत् ॥ १६२ ॥
तारावती भानुमती जया विद्या महोदरी ।
अम्बान्ताः पूजयेच्चैता इष्टमोक्षार्थसिद्धये ॥ १६३ ॥

यथा – वहीं पर ऊर्ध्वकेश, व्योमकेश, नीलकण्ठ, वृषध्वज, आनन्द नाथान्त जगत्पिता का तथा तारावती, भानुमती, जया, विद्या, महोदरी, अम्बान्त इन जगदम्बा की अपने अभीष्ट मोक्षकामना की सिद्धि के लिये साधकजन पूजा करें ॥ १६२-१६३ ॥

वशिष्टमीननाथश्च हरिनाथकुलेश्वरो विरूपाक्षमहेश्वरसुखपारिजाताः। महाकालरुद्राणी उग्रा भीमा घोरा भ्रामरी कालकर्त्री विश्वरूपा च। ॐ ऊर्ध्वकेशानन्दनाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुँ फट् स्वाहा। एवं व्योमकेशानन्दनाथ-नीलकण्ठानन्दनाथ-वृषध्वजानन्दनाथान् एवं तारावत्यम्ब-भानुमत्यम्ब-जयावत्यम्ब-विद्यावत्यम्ब-महोदर्यम्बाः तथा वशिष्ठानन्दनाथ-मीननाथानन्दनाथ-हरिनाथानन्दनाथ-कुलेश्वरानन्दनाथ-महेश्वरानन्दनाथ-सुखानन्दनाथ-पारिजातानन्दनाथान् तथा महाकालरुद्राण्यम्ब-उग्राम्ब-भीमाम्ब-घोराम्ब-भ्रामर्यम्ब-कालरात्र्यम्ब-विश्वरूपाम्बाः। ततः पूर्वादि वामावर्त्तनाष्टदले पूजयेत्। ॐ विरोचन वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुँ फट् स्वाहा।

साथ ही वहाँ वसिष्ठ, मीननाथ, हरिनाथ, कुलेश्वर, विरूपाक्ष, महेश्वर, सुख पारिजात, महाकाल, रुद्राणी, उग्रा, भीमा, घोरा, भ्रामरी, कालकर्त्री तथा विश्वरूपा आदि देवी देवताओं को स्मरण करते हुए, 'ॐ ऊर्ध्वकेशानन्दनाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' मंत्र उच्चारण करे। इसी प्रकार व्योमकेशानन्दनाथ-नीलकण्ठानन्दनाथ-वृषध्वजानन्दनाथ तथा तारावत्यम्ब-भानुमत्यम्ब-जयावत्यम्ब-विद्यावत्यम्ब-महोदर्यम्ब और वसिष्ठानन्दनाथ-मीननाथानन्दनाथ-हरिनाथानन्दनाथ-कुलेश्वरानन्दनाथ-महेश्वरानन्दनाथ-सुखानन्दनाथ-पारिजातानन्दनाथ तथा महाकालरुद्राण्यम्ब-उग्राम्ब-भीमाम्ब-धीराम्ब-भामर्य्यम्ब-कालराव्यम्ब - विश्वरूपाम्ब आदि माताओं की पूर्वादिक्रम से वामावर्त विधि से उस अष्ट दल पर पूजा करे। मंत्रो यथा—"ॐ विरोचन वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुँ फट् स्वाहा।"

एवं शङ्खपाण्डर पद्मनाभ असिताङ्गनामक पाण्डर तारक पद्मान्तक वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुँ फट् स्वाहा इति पूर्वद्वारे। तथा उदीच्यां यमान्तकपश्चाद्विघ्नान्तकदक्षिणे नरान्तक एतान् संपूज्य पञ्चपुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा पाद्यार्घ्यादिना देवीं संपूज्य वामे त्रिकोणं षट्कोणं वृत्तं चतुरस्रं विलिख्य तत्र विभरितसाधारपात्रं समांसतण्डुलदधिहरिद्रा

दग्धमीनासवपिण्याकलवणार्द्रकान्यसतं गृहीत्वा दक्षहस्ते जलं नीत्वा ॐ ह्रीं श्रीमदेकजटे देवि मयोपनीतं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय मम शान्तिं कुरु कुरु परविद्यामाकृष्याकृष्य त्रुट त्रुट छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि सर्वजगद्वशमानय ॐ ह्रीं स्वाहा इति त्रिः पठित्वा बलिं दद्यात्।

इसी प्रकार पूर्व द्वार में "शंखपाण्डर, पद्मनाभ, असिताङ्गनामक पाण्डर, तारक, पद्मान्तक, वज्रपुष्प प्रतीच्छ हुँ फट् स्वाहा।" उत्तर द्वार में यमान्तक, पश्चिम द्वार में विघ्नान्तक, दक्षिण में नरान्तक—इनकी पूजा करके पंच पुष्पाञ्जलि देकर, पाद्यार्घ्यादि से देवी की पूजा करे। तत्पश्चात् वाम भाग मे त्रिकोण, षट्कोण, वृत्त तथा वर्गाकार, चतुष्कोण यंत्र बनाकर वहाँ परिपूर्ण पात्र रखे—जिसमें मांससहित चावल, दधि, हरिद्रा, परिपक्व मत्स्य, मदिरा······ इत्यादि अन्यान्य पदार्थ लेकर दाहिने हाथ में जल लेकर "ॐ ह्रीं श्रीमदेकजटे! देवि! मयोपनीतं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय मम शान्तिं कुरु कुरु परविद्यामाकृष्याकृष्य त्रुट त्रुट छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि सर्वजगद्वशमानय ॐ ह्रीं स्वाहा।" यह मंत्र तीन वार पढ़कर बलि देवे।

यदुक्तं कालिकाकल्प बलिं स्वतनुशोणितम्।
तत् सर्वं कालिकार्चायां न ताराविषये क्वचित्॥ १६५॥
स्वगात्ररुधिरं यत्तु तारकायै प्रदीयते।
तस्य रुष्टा सदा तारा न पूजाफलमाप्नुयात्॥ १६६॥

'कालिका कल्प' में अपने शरीर के मांस को देने का जो विधान है, वह सब कालिकार्चन विधि में है। इस तारार्चन कृत्य में कभी नहीं। क्योंकि अपने शरीर का रुधिर जो तारादेवी को चढ़ाता है, उस पर भगवती सर्वदा रुष्ट रहती हैं और उसकी पूजा ग्रहण नहीं करतीं। उसकी सारी पूजा निष्फल हो जाती है॥ १६५–१६६॥

त्रिकोणञ्चाष्टकोणञ्च वृत्तं कोणचतुष्टयम्।
बलिदाने त्विदं स्थानं शस्यते तारकार्चने॥ १६७॥

तारकार्चन विधि में बलिदान करते समय त्रिकोण, अष्टकोण, वृत्त तथा चतुष्कोण यंत्र (चक्र) ही शुभ यंत्र माना गया है॥ १६७॥

ॐ ह्रीं एकजटेत्युक्त्वा देवीति तदनन्तरम्।
महायक्षाधिपतये मयोपनीतकं पदम्॥ १६८॥
बलिञ्चोक्त्वा गृह्ण युग्मं श्रावयेत्तदनन्तरम्।
गृह्णापय पदद्वन्द्वं मम शान्तिं समाचरेत्॥ १६९॥

कुरुद्वयं परविद्यामाकृष्याकृष्य एव च।
त्रुटयुग्मं वदेत् पश्चात् छिन्धियुग्मं ततः परम् ॥ १७० ॥
भिन्धियुग्मं समुच्चार्य्य जगत् सर्वं वशं नय।
लज्जत् तारं समुच्चार्य्य बलिं दद्यात् पठेत् त्रयम् ॥ १७१ ॥

'ॐ ह्रीं एकजटा' ऐसा कहकर 'देवी' यह पद कहना चाहिए। तदनन्तर 'महायक्षाधिपतये' तथा मयोपनीतं—ऐसी वाक्ययोजना करके 'वलिं गृह्ण गृह्ण मम शान्ति कुरु कुरु परविद्यामाकृष्य आकृष्य त्रुट त्रुट' ऐसा बोले। उसके बाद 'छिन्धि' दो बार तथा 'भिन्धि' दो बार जोड़े। अन्त में सर्वजगद् वशं नय' ऐसा कहकर लज्जाबीज 'ह्रीं' एवं तारा बीज 'ॐ' पूर्वक सम्पुट करके पूर्वोक्त मंत्र पूर्ण कर लेना चाहिए। अन्त में 'वलिं दद्यात्' उच्चारण कर लेवे ॥ १६८–१७१ ॥

ततः पुनरर्घ्यं कृत्वा ॐ ह्रौं ऐं श्रीमदेकजटे देवि मम सर्वविद्यां सिद्धय सिद्धय गृहाणार्घ्यं सर्ववाचस्पतित्वं देहि स्वाहा। इत्युक्त्वा जय जय इत्युक्त्वा नीराजनपुरःसरं देव्या मौलौ यथाशक्ति जप्त्वा समर्प्य जलं देव्या वामहस्ते दद्यात्। ततः स्तवकवचादिपाठः सर्वत्र कुलक्रियादिपूर्वकः।

इसके बाद पुनः अर्घ्यं देकर यह मंत्र पढ़े—"ॐ ह्रौं ऐं श्रीमदेकजटे देवि ! मम सर्वविद्यां सिद्धय सिद्धय, गृहाणार्घ्यं, सर्ववाचस्पतित्वं देहि स्वाहा।" 'जय-जय' कहकर आरतीपूर्वक देवी के सिर पर मूल मंत्र का यथाशक्ति जप समर्पण कर देवी के बायें हाथ में जल देवे। तत्पश्चात् स्तोत्र-कवचादि का पाठ कुल क्रियानुसार सर्वत्र सर्वदा करना चाहिये।

ततः प्रदक्षिणं कुर्य्यात् घण्टावाद्यपुरःसरम्।
ऊर्ध्वं दक्षिणकं हस्तं कृत्वा वारत्रयं नरः ॥ १७२ ॥

इसके बाद घंटा वाद्यपुरःसरं तीन बार प्रदक्षिणा करे। उस समय साधक पुरुष को अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाकर प्रदक्षिणा करनी चाहिये ॥ १७२ ॥

याम्याच्च वायव्यां गच्छेत् स्थित्वा किञ्चिच्च शाङ्करीम्।
पुनर्याम्यं प्रगत्वा तु प्रणमेच्च पुरःस्थितः ॥१७३॥

प्रदक्षिणा करते समय दक्षिण से वायव्य कोण जाय। वहाँ थोड़ी देर रुक कर ईशान कोण में जाय। पुनः दक्षिण दिशा में जाकर देवी के सामने खड़े होकर प्रेमपूर्वक प्रणाम करे ॥ १७३ ॥

प्रणमेत् सप्तवारन्तु त्रिः प्रकुर्य्यात् प्रदक्षिणम्।
दण्डाकारं निपत्याथ कः फली भूमिमध्यतः ॥ १७४ ॥

वहाँ सात बार प्रणाम करके तीन बार प्रदक्षिणा करे। इस प्रकार साष्टांग दण्डवत् (प्रणाम) करने वाले से बढ़कर पृथ्वी पर कौन सफल है ? अर्थात् कोई नहीं ॥ १७४ ॥

अङ्गुलानाञ्च अग्राणि एकीकृत्य सुमानसः।
त्रिकोणाकारमाधाय किञ्चिद्वामांशतो नमेत् ॥ १७५ ॥

अंगुलियों के अग्र भाग को एकत्र करके प्रसन्न चित्त साधक त्रिकोणाकार वना कर कुछ वामांश भाग से नमस्कार करे ॥ १७५ ॥

उरसा शिरसा पश्चात् पाणिभ्यां जानुतस्तथा।
नासाचिबुकयोगेन प्रणम्य सिद्धिमाप्नुयात् ॥ १७६ ॥

हृदय से, शिर से, हाथों से, जानु से तथा नासिका और चिवुक (ठुड्डी) के योग से षडङ्ग[1] प्रणाम करने से साधक सिद्धि प्राप्त करता है ॥ १७६ ॥

अथ जपक्रमः

कुल्वुकां प्रजपेच्छीर्षे दशधा मन्त्रसिद्धये।
मुखे सेतुं सप्तधा च प्रणवेन पुटं हृदि ॥
प्राणायामपरः पूर्वं जपेत् साधकसत्तमः ॥ १७७ ॥

अब जप क्रम भी देखिये—

'कुल्वुका'[2] जप शीर्षस्थान में मंत्रसिद्धि के लिये १० बार जपे, मुख में 'सेतु'[3] नामक जप ७ बार करे, हृदय में 'पुट'[4] नामक जप प्रणव (ॐकार) से करे। इस प्रकार प्राणायाम परायण श्रेष्ठ साधक सबसे पहले जपे ॥ १७७ ॥

कुल्वुका यथा—

स्वरं द्वितीयं चन्द्राढ्यं लज्जा चाङ्कुश एव च।

आं ह्रीं क्रौं इति शिरसि दशधा जपेत्। मुखे सेतुं ॐ इति सप्तधा जपेत्। हृदि प्रणवपुटितमन्त्रं सप्तधा जपेत्। सर्वत्र आदौ प्राणायामः। ततः सेतुं ततो महासेतुं ततो मन्त्रशिखाम् ॐ ह्रौं ऐं इति सप्तधा जपेत्। ततो मन्त्रप्राणं कलरीं इति सप्तधा। ततः सहस्रम् अष्टोत्तरशतं विंशतिं वा जपेत्। ततो जलपुष्पं करतले नीत्वा।

---

१. साधक को स्मरण रखना चाहिये कि दक्षिण मार्गवाले साष्टाङ्ग प्रणाम तथा वाममार्गवाले षडङ्ग प्रणाम करते हैं।

२. "स्वरं द्वितीयं चन्द्राढ्यं लज्जा चाङ्कुश एव च।"
'आं ह्रीं क्रौं'—कुल्वुका मंत्र है।

३. सेतु—'ह्रौं'।

४. पुट 'ऐं'।

'आं ह्रीं क्रीं' इस मंत्र को दस बार जपे, यही 'कुल्लुका' नाम से विख्यात है। मुख में सेतु 'ॐ' मंत्र सात बार जपे। हृदय में प्रणवपुटित अस्त्र 'फट्' मंत्र सात बार जपे। सर्वत्र आरम्भ में प्राणायाम करना चाहिये। उसके बाद सेतु, महासेतु, मंत्र शिखा 'ॐ ह्रौं ऐं' को सात बार जपना चाहिये। इसके बाद पुनः मंत्रप्राणस्वरूप 'कलरी' को सात बार जपे, तदनन्तर सहस्र, अष्टोत्तरशत, किंवा विंशति बार मंत्र जपे। इसके बाद करतल में पुष्प-जल लेकर—'ॐ गुह्यातिगुह्य' मंत्र से प्रार्थना क्षमापन करे। अर्थात्—

ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि! त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिते ॥ १७८ ॥

हे देवि! आप गुप्त से भी गुप्त हैं, इसीलिये हमारा किया हुआ यह जप स्वीकार करें, जिससे आपमें स्थित होने पर आपकी ही कृपा से हमारा मन्त्र सिद्ध होवे—यही प्रार्थना है ॥ १७८ ॥

इति जपं देव्या वामहस्ते समर्पयेत्। ततः प्राणायामः। इति जपक्रमः। काम्यजपः पुरश्चरणप्रकरणे वक्तव्यः। नित्यजपे निगमम् अस्या एव।

इस प्रकार कह कर देवी के बायें हाथ में अपना जप निवेदन करे। तदनन्तर प्राणायाम करे। यही जप विधि है। काम्य जप का वर्णन पुरश्चरण प्रकरण में करना है। नित्य जप में इसका विधान इस प्रकार है :—

सहस्रं प्रजपेन्मन्त्रं धर्ममोक्षार्थसिद्धये।
अष्टोत्तरशतं यत्तु तत् पूजायाः फलाप्तये।
विंशतिञ्च जपेन्मन्त्रं पूजासिद्ध्यर्थमेव हि ॥ १७९ ॥

धर्ममोक्षार्थ[1] सिद्धि के लिये सहस्र मंत्र जपे। जो अष्टोत्तर शत कहा गया है, वह तो पूजा-फल की प्राप्ति के लिये है। सुतराम् पूजासिद्धार्थ मंत्र जप केवल बीस बार ही करे ॥ १७९ ॥

पूजनेतरजपे तारासारे—

पूजनातिरिक्त जप के विषय में तारासार में लिखा है :—

यावन्न क्रियते कर्म पुरश्चरणमुत्तमम्।
तावन्नैव प्रजप्तव्यं सहस्रादधिकं शिव ? ॥ १८० ॥

भैरवी ने भैरव से ठीक ही कहा है कि हे शिव! जब तक उत्तम पुरश्चरण कर्म नहीं करते, तब तक सहस्र से अधिक मंत्र संख्या का जप कभी नहीं करना चाहिए ॥ १८० ॥

---

१. अर्थ, काम की सिद्धि के लिये नहीं से तात्पर्य है।

प्रजपेत् साधको यस्तु क्षोभयुक्तोऽप्यनन्यधीः ।
सहस्रादधिकं वत्स ! सहस्रेषु समर्पयेत् ॥ १८१ ॥

हे वत्स ! जो साधक क्षोभसहित अनन्य धी होकर सहस्र से अधिक जप करे तो वह प्रति सहस्र संख्या पर समर्पित किया करे ॥ १८१ ॥

एतेन पुरश्चरणहीनः सहस्रादूर्ध्वं न जपेत् । यद्येकदा अयुतं जपेत् तदा सहस्रं सहस्रं जप्त्वा समर्पयेत् ।

तात्पर्य यह कि पुरश्चरणहीन साधक सहस्राधिक न जपे । यदि एक वार एक लक्ष जपना भी हो तो उसे प्रतिसहस्र संख्या पर देवी को समर्पित करता जाय ।

सहस्रं प्रजपेन्मन्त्रं पुरश्चरणकर्मणि ।
शतं तेन प्रजप्तव्यं ह्यधिकं न कदाचन ॥ १८२ ॥

पुरश्चरण कर्म में भी सहस्रमंत्र जपना हो तो साधक को सौ वार ही जपना चाहिए, अधिक कभी नहीं ॥ १८२ ॥

ततोऽर्घ्यजलं नीत्वा ॐ इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत् स्मृतं यदुक्तं यत् कृतं तत् सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु मदीयं सकलं सम्यक् श्रीमदेकजटादेवतायै सर्वं समर्पितमस्तु ।

इसके बाद अर्घ्यजल लेकर यह कहे कि हे देवि ! इसके पूर्व प्राण-बुद्धि-देह-धर्माधिकार वश जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति अवस्थाओं में मनसा, वाचा, कर्मणा, दोनों हाथों से, पैरों से, उदर, शिश्न (लिङ्ग) से जो कुछ मैंने स्मरण किया, जो कुछ कर दिया, वह सब ब्रह्मार्पण होवे । अर्थात् मेरे सभी कर्म सम्यक् प्रकारेण श्रीमति एकजटा देवि के लिये सर्वस्व समर्पित होवे ।

ततः संहारमुद्रया क्षमस्वेति विसृज्य ऐशान्यां त्रिकोणे ॐ उच्छिष्टचाण्डालिन्यै नमः । ततस्तेन यन्त्रलेपनचन्दनेन टीका-पाद्यादिकं नैवेद्यं किञ्चित् स्वीकृत्यान्यच्छक्तिभ्यो दत्त्वा यथेच्छं विहरेदिति एकजटापूजापद्धतिः ।

इसके बाद संहारमुद्रा द्वारा 'क्षमस्व' ऐसा कहकर ईशान कोण में त्रिकोण लिखे और 'ॐ उच्छिष्ट चाण्डालिन्यै नमः' कहे । तत्पश्चात् उस यंत्र लेपन चन्दन से तिलक करे तथा पाद्यादिक एवं कुछ नैवेद्य स्वीकार स्वयं करे तथा अन्य शक्तियों को भी कुछ देकर यथेष्ट विहार करे ।

अथ तारापूजनम्

प्रत्यालीढपदां देवीं महामायां त्रिलोचनाम् ।

सर्वालङ्कारभूषाढ्यां महानीलप्रभां पराम् ॥ १८३ ॥
खड्गं पाशं दक्षिणे च वामेन्दीवरमूर्द्ध्वतः ।
दधतं चषकं देव्या भावयेत् साधकोत्तमः ॥ १८४ ॥

इसके बाद उत्तम साधक को चाहिए कि वह प्रत्यालीढ पदवाली (शवारूढ़) देवी को—जो महामाया, त्रिनयना, सब भूषणों से विभूषित अंगवाली तथा महानील प्रभावाली परमश्रेष्ठ हैं—इस प्रकार ध्यान करे–'दाहिने हाथों में खड्ग और पाश तथा बायें हाथों में कमल और चषक[1] धारण कर रही हैं'।।१८३-१८४।।

इति ध्यात्वा तत्कल्पोक्तयन्त्रे पूजयेत् ।।इति तारापूजा ।

इस प्रकार भावनापूर्वक ध्यान करके तत्कल्पोक्त मन्त्र में तारा की पूजा करे ।

अथ कामतारापूजनम् । तत्-कल्पोक्तयन्त्रे—
घोरहास्यां महादेवीं तारिणींताररूपिणीम् ।
चसकेन्दीवरञ्चैव खड्गञ्चापि वरं तथा ॥ १८५ ॥
व्याघ्रचर्मपरीधानां सर्वालङ्कारभूषिताम् ।
वक्षसा नागहाराञ्च महायोगस्वरूपिणीम् ॥ १८६ ॥

कामताराकल्पे यथा—

घोर हास्य करने वाली उस महादेवी ॐकारस्वरूपिणी तारिणी (तारा) देवी को हम ध्यान करते है—जो चषक, कमल, खड्ग एवं वरद हस्तवाली हैं । व्याघ्र चर्म धारण करनेवाली, सर्वालङ्कार से अलंकृत उस देवी को हम पुनः स्मरण करते हैं—जो अपने हृदय पर नागराज धारण कर रही हैं तथा जो महायोगिनी हैं ॥ १८५–१८६ ॥

इति ध्यात्वा आवाह्य पूर्ववत् सर्वम् । इति कामतारापूजनम् ।

इस प्रकार ध्यान करके उनका आवाहन एवं पूजन पूर्ववत् करे ।

अथ उग्रतारापूजनम् । उग्रताराप्रकरणोक्तयन्त्रे या या लक्ष्म्यादि पीठशक्तयः । अत्र ताः ता न किन्तु—

उग्रतारा प्रकरण में कहे गये मंत्र में जो-जो लक्ष्मी आदिक पीठ शक्तियाँ हैं, उन-उनको नहीं किन्तु--

इच्छाज्ञानक्रियाञ्चापि कामिनीं कामदायिनीम् ।
रतिं रतिप्रियाञ्चैव रतिदां परिपूजयेत् ॥ १८७ ॥

इच्छा ज्ञान क्रियारूपिणी, कामना सिद्ध करनेवाली कामिनी, रति, रतिप्रिया एवं रति देनेवाली शक्ति की विशिष्ट पूजा करे ॥ १८७ ॥

---

१. 'चसक' इति प्राचीनपुस्तके पाठः ।

शवोपरि महादेवीं शवेशहास्यसंयुताम् ।
विपरीतरतासक्तामुग्रतारां परात्पराम् ।। १८८ ।।
कर्त्रिकाखड्गसंयुक्तां दक्षिणे तारिणीं पराम् ।
वामभागे नीलपद्मं चषकं तदधः स्मृतम् ।। १८९ ।।
मुण्डमालावलीरम्यां रक्तधाराविभूषिताम् ।
घोरहास्यां त्रिनेत्राञ्च सर्वदा ज्ञानदायिनीम् ।। १९० ।।
एकवेणीं महावेणीं फणिराजविभूषिताम् ।
सुवर्णमुकुटैर्युक्तां शुभ्रदन्तविभूषिताम् ।। १९१ ।।

इति ध्यात्वा पूर्ववत् । इति उग्रतारापूजनम् ।

शव के ऊपर खड़ी हुई, शवेश (शंकर) के साथ हास-विलास करती हुई, विपरीत रति में निरत, परात्परा उस उग्रतारा देवी को प्रणाम है—जो कैंची, खड्ग अपने दाहिने हाथ में ले रखी है, जो तारनेवाली एवं उत्तम देवी हैं। जो अपने बायें हाथ में नाग एवं पद्म तथा चषक नीचे ऊपर धारण कर रही हैं। जो मुण्डमालाओं से अत्यन्त सुन्दर लग रही हैं, जो रक्तधारा से अधिक शोभा पा रही है, ऐसी भयंकर अट्टहास करनेवाली, त्रिनयना, सुतरां सर्वदा सद्ज्ञानप्रदायिनी देवी को मैं ध्यान कर रहा हूँ। साथ ही जो एक वेणी तथा महावेणी वाली है, जो सर्पराज (नाग) से विभूषिता है। जो सुवर्ण रचित मुकुट धारण करती हैं तथा जो स्वच्छ एवं चमकीले दर्शनों वाली हैं ।।१८८-१९१।।

शम्भुपत्नीमहाकालप्रियाणाम् प्राणायामः वेदकलावसुमन्त्रयुतः । इयान् विशेषः—

इस प्रकार ध्यान करके उग्रतारा भगवती का पूजन पूर्ववत् करना चहिए। यहाँ पर शम्भुपत्नी (महाकाली) एवं महाकाल (शिव) का परमप्रिय प्राणायाम वेद कलावसु मंत्र सहित करना चाहिए। विशेषता इस प्रकार है :—

नीलवाणीं सदा वन्दे नीलाञ्जनचयप्रभाम् ।
स्त्र्यलङ्कारसमोपेतां व्याघ्रचर्मावृतां कटौ ।। १९२ ।।
नागेनावेष्टितां देवीं फणिहारविधारिणीम् ।
फणिमस्तकयोगेन दक्षपादं प्रपञ्चितम् ।। १९३ ।।
वामपादं शवे नाभौ रत्युल्लासहृदान्विताम् ।
तामसीं महतीं विश्वमोहिनीं घोरकामिनीम् ।। १९४ ।।

मैं उस नील सरस्वती को सर्वदा प्रणाम करता हूँ जो नीलाञ्जन-समूह सदृश कान्तिवाली (श्यामा) हैं, स्त्रियों के योग्य आभूषणों से जो सर्वदा विभूषित रहती है, जो अपने कमर में व्याघ्रचर्म धारण करती हैं। जो देवी

सर्पसंवेष्टित एवं नागहार को धारण करती हैं, जिनके सिर पर नागराज शोभित हो रहे हैं, जिसने अपना दाहिना पैर फैला रखा है और बायाँ पैर शव की नाभि मण्डल पर विमण्डित हो रहा है तथा जो रति-उल्लान से गद् गद हो रही हैं—ऐसी तामसी, महतो, विश्वविमोहिनी एवं घोर कामिनी-स्वरूपा हैं ॥ १९२–१९४ ॥

शिववक्त्रस्य भ्रमरां प्रत्यालीढपदां शुभाम् ।
चमरीकेशसंस्कारसदागलितकुन्तलाम् ॥ १९५ ॥

जो देवी शिव के मुख कमल की भ्रामरी हैं, जो प्रत्यालीढ पदवाली शुभ-स्वरूपा हैं, जो काले चमर[1] के समान केश संस्कार से सदा अपरिश्क्व बाल-वाली हैं ॥ १९५ ॥

नानामणियुतां शीर्षे महापापविनाशिनीम् ।
कपालञ्चापि खड्गञ्च नीलपद्मां सरस्वतीम् ॥
भावयेत् सर्वसिद्ध्यर्थं नीलवाणीं कपित्थदाम् ॥ १९६ ॥

जिनके सिर पर अनेक प्रकार के माणियों से जटित मुकुट शोभा दे रहा है, जो भक्तों (साधकों) के महापातकों को नष्ट करनेवाली हैं । जो अपने चारों करों में क्रमशः कपाल, खड्ग, नीलकमल, एवं अभयमुद्रा (वर) धारण करती हैं ऐसी कपित्थदायिनी नीलवाणीरूपी सरस्वती देवी को सब प्रकार की सिद्धियों के लिये सर्वदा ध्यान करना चाहिए ॥ १९६ ॥

एवं ध्यात्वा सर्वं पूर्ववत् यन्त्रस्याष्टदिक्षु पद्मखड्गदण्डपाशकपाल-शूलगदाचक्रादीन् पूजयेत् । इति विशेषः । इति पूजनं नीलशारदायाः महानीलसरस्वत्याश्च । ततो यथाशक्ति नित्यहोमः । तथा निगमे—

इस प्रकार ध्यान करके पूर्ववत् यंत्रस्थ आठों दिशाओं में पद्म, खड्ग, दण्ड, पाश, कपाल, शूल, गदा, चक्रादि देवीप्रिय वस्तुओं की पूजा करे । यही विशेषता है । यही पूजन नीलशारदा एवं महानील सरस्वती की है । यहाँ यथाशक्ति नित्य होम का विधान है । तथाहि निगमे—

एकधा ह्याहुतिर्येन तारकायै प्रदीयते ।
कोटिजन्मकृतं पापं तत्क्षणात् तस्य नश्यति ॥ १९७ ॥

जिस साधक ने एक वार भी तारका देवी के लिए होम प्रदान किया, उसके करोड़ों जन्म के किये पातक तत्काल ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १९७ ॥

---

१. यहाँ श्वेत चँवर से तात्पर्य नहीं हैं, क्योंकि आगे के पद में 'अगणित-कुन्तला' विशेषण है । चामर के दो भेद हैं—(१) श्वेत चामर, (२) काले चामर ।

ततो वलिदानम् ।

छागं वा महिषं वापि शूकरं वा पतत्त्रिणम् ।
हस्तिनं मूषिकं वापि मार्जारञ्चापि मेषकम् ॥ १९८ ॥
दत्त्वा देव्यै महादेव्यै स भवेत् कुलनायकः ।
वलिं पुरत आनीय योनिमुद्रां प्रदर्श्य च ॥ १९९ ॥

कौवे, महिष, सूकर, पक्षियाँ, हाथी, मूषक, मार्जार (विलार) किंवा मेष (भेड़े) की वलि देवी के लिए देकर वह साधक कौल शिरोमणि हो जाता है। स्मरण रहे कि वलिदान की वस्तु सामने लाकर योनिमुद्रा का अवश्य प्रदर्शन करे ॥ १९८–१९९ ॥

दक्षिणे तद्गलं धृत्वा वामपृष्ठे नियोजयेत् ।
श्रीमदेकजटे ! देवि ! वलिं गृह्ण सुरोत्तमे ! ।
मन्त्राणाञ्चापि मे सिद्धिं लतासिद्धिञ्च देहि मे ॥ २०० ॥

उस समय उसको दक्षिण की ओर से वाम भाग की ओर कर दे। तव यह मंत्र कहे "हे श्रीमदेकजटे देवि ! हे सुरोत्तमे !! यह वलि ग्रहण कीजिये। और मुझे मेरे सभी मंत्रों में सिद्धि दीजिये। साथ ही मुझे लता सिद्धि भी दीजिये" ॥ २०० ॥

"ॐ ह्रीं ह्रां हुं ऐं ऐं सर्वसिद्धिप्रदे ! मे चतुर्वर्गसिद्धिं देहि देहि वलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा। इति निवेद्य खड्गं जलपुष्पादिना संपूज्य एकघातेन छेदयेत्। इति वलिदानम्।

"ॐ ह्रीं ह्रां हुं ऐं ऐं सर्वसिद्धिप्रदे ! मे चतुर्वर्गसिद्धिं देहि देहि, वलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।" इस मंत्र से खड्ग समर्पित कर जल, पुष्पादि से विधिवत् पूजा करके एक वार के आघात से काट डाले। (इति वलिदानम्)

आसवं संविदाञ्चापि निवेद्यानन्दमाचरेत् ।
तदा पूजा प्रकर्त्तव्या ह्यन्यथा निष्फला भवेत् ॥ २०१ ॥

आसव और संविदा को भी प्रदान कर, आनन्द का अनुभव करे। तभी तो पूजा करनी चाहिए, अन्यथा वह पूजा निष्फल हो जाती है। संविदा को चार भागों में विभक्त कर चारों वर्णों को अधिष्ठातृ देवता के लिये निम्नलिखित प्रकार से प्रदान करे ॥ २०१ ॥

संविदां चतुर्धा विभज्य प्रथमे तत्त्वमुद्रया

ॐ संविदे ! ब्रह्मसंभूते ! ब्रह्मपुत्रि ! सदानघे ! ।
भैरवाणाञ्च तृप्त्यर्थं पवित्रा भव सर्वदा ॥ २०२ ॥

ॐ ब्राह्मयै नमः स्वाहा। इति भूमौ क्षिपेत्।

प्रथम भाग में तत्त्वमुद्रा से कहे—'हे संविदे ! तुम ब्रह्मा से उत्पन्न हो अतः हे अनघे ! ब्रह्मपुत्रि ! तुम भैरवों की तृप्ति के लिये सर्वदा पवित्र रहो।' वहाँ 'ब्राह्मयै नमः स्वाहा' ऐसा कहकर भूतल पर गिरा देवे। तब यह मंत्र पढ़े— ॥ २०२ ॥

ॐ सिद्धिमूलकरे ! देवि ! हीनबोधप्रबोधिनि ! ।
राजप्रजावशङ्करि ! शत्रुकण्ठत्रिशूलिनि ! ॥ २०३ ॥
ऐं क्षत्रियायै नमः स्वाहा।

'हे सिद्धिमूल हाथ में लेनेवाली देवि ! अज्ञानियों को भी प्रबोध देनेवाली, राजा-प्रजाओं को वश में करवे वाली, शत्रुकण्ठ में त्रिशूल को देनेवाली'—ऐसा कहकर 'ऐं क्षत्रियायै नमः स्वाहाः' मंत्र पढ़े ॥ २०३ ॥

ॐ नमस्यामि नमस्यामि योगमार्गप्रदर्शिनि ! ।
त्रैलोक्यविजये ! मातः ! समाधिफलदा भव ॥ २०४ ॥

यदि हे त्रैलोक्यविजये ! मातः !! आप मुझे समाधि का फल देनेवाली हों तो मैं आपको बारंबार प्रणाम करूँगा; क्योंकि आप ही योगमार्ग प्रदर्शिका है। अर्थात् योगी साधकों को योगयुक्त करनेवाली आप ही हैं। इसके बाद ॥२०४॥

ह्रीं वैश्यायै नमः स्वाहा।
ॐ अज्ञानेन्धनदीप्ताग्ने ! ज्वालाग्निब्रह्मरूपिणि ! ।
आनन्दस्याहुतिं प्रीतिं सम्यग् ज्ञानं प्रयच्छ मे ॥ २०५ ॥

'ह्रीं वैश्यायै नमः स्वाहा' कहकर यह कहे कि हे माता ! आप अज्ञान-रूपी इंधन (लकड़ी) को जलाने के लिये अग्नि के समान हैं। इसलिये हे ज्वालाग्नि ब्रह्मरूपिणी मेरी दी हुई इस आनन्दाहुति से आप तृप्त होवें और मुझे सम्यक् प्रकार से ज्ञान देवें ॥ २०५ ॥

क्लीं शूद्रायै नमः स्वाहा। ततस्तन्मध्ये त्रिकोणं विलिख्य ॐ अमृते ! अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि ! प्रिये ! अमृतमाकर्षय आकर्षय स्वाहा। ततस्तत्त्वमुद्रया पूर्ववत्तर्पयेत् ॥ ततोभूमौ किञ्चिन्निक्षिप्य ऐं ऐं वद वद वाग्वादिनि ! मम जिह्वायां स्थिरीभव सर्वशत्रुक्षयं कुरु कुरु स्वाहा। इत्यनेन जुहुयादिति ॥

'क्लीं शूद्रायै नमः स्वाहा' कहकर चक्र के मध्य में त्रिकोण लिखकर "ॐ अमृते ! अमृतोद्भवे ! अमृतवर्षिणि प्रिये !! अमृतमाकर्षय आकर्षय स्वाहा' कहे। तत्पश्चात् तत्त्वमुद्रा द्वारा पूर्ववत् तर्पण (पूजन) करे। इसके बाद भूमि पर

कुछ गिराकर "ऐं ऐं वद वद वाग्वादिनि मम जिह्वायां स्थिरीभव, सर्वशत्रुक्षयं कुरु कुरु स्वाहा।" इस मंत्र से हवन करे।

यत्रास्ते कमला कृताञ्जलिपरा वीणाधरा शारदा
तारावाक्यमनुस्मरन् प्रियतमं चोमावचःकारणम्।
ब्रह्मानन्दकृतौ सुसाधनविधौ ताराहस्ये शुभे-
ऽप्याचारादिविधौ तृतीयपटलः सर्वार्थसिद्धिप्रदः ॥ २०६ ॥

इति ताराहस्ये तृतीयः पटलः।

जहाँ पर लक्ष्मी जी हाथ जोड़कर खड़ी रहती हैं, जहाँ शारदा भी वीणा लेकर स्तुति करती हैं, जो उस वचन का एकमात्र कारणस्वरूपा हैं—ऐसी तारा से भी पूज्यतम एवं प्रियतम मूल प्रकृतिस्वरूप चिन्मयब्रह्म का स्मरण करता हुआ मुझ 'स्वामी ब्रह्मानन्दकृत इस साधक विधिवाले "ताराहस्य" नामक शुभ ग्रंथ की 'आचारविधि नामक यह तीसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥ २०६ ॥

इस प्रकार हिन्दी व्याख्या में आचारविधि नामक
तृतीय पटल समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

—:o:—

अथ चतुर्थः पटलः

अथ त्रिपोढाप्रकरणम्

प्रणवं मातृकावर्णैः पुटितं मातृकास्थले।
तेनैव पुटितं वर्णं न्यसेत्तत्रैव पार्वति ! ॥ १ ॥ इतियामले।

मातृकास्थान में मातृकावर्णों से प्रणव को सम्पुटित करे। उसी से संपुटित-वर्ण को हे पार्वति ! वहीं न्यास करे—यह 'रुद्रयामल' का मत है ॥ १ ॥

केवलां मातृकां कृत्वा मातृकां तारसंपुटाम्।
तारेण पुटितां तान्तु लज्जा तु मातृकापुटा ॥ २ ॥

केवल मातृका को तार-सम्पुटित करे, पुनः प्रणव से ही संपुटित कर दे तत्पश्चात् लज्जा (ह्रीं) बीज भी मातृका से संपुटित करे ॥ २ ॥

लज्जया पुटिता सा तु न्यस्तव्या साधकोत्तमैः।
मातृकया पुटा योषा योषया मातृका तथा ॥ ३ ॥

इस प्रकार लज्जाबीज से संपुटित उस मातृका को उत्तम साधक विन्यस्त करे। फिर मातृका से पुटित योषाबीज (स्त्रीं) तथा योषा से मातृका को अन्योन्य सम्पुटित करे ॥ ३ ॥

मातृकया पुटं कूर्चं कूर्चेन पुटितार्णताम्।
मातृकापुटितं चापि ह्यस्त्रं[1] मातृकया तथा ॥ ४ ॥
मातृकापुटितं मन्त्रं मन्त्रेण पुटितान्तु ताम्।
अयुतं विन्यसेद् यस्तु वायुकुम्भकयोगतः।
महायोगी भवेत् सोऽपि देवीं पश्यति चक्षुषा ॥ ५ ॥

'मातृका से पुटित' कूर्चबीज (हूं) और कूर्च से पुटित 'वर्णता' तथा मातृका से पुटित 'अस्त्र'[1] किंवा मातृका द्वारा अस्त्रपुटित हो इसी प्रकार मातृकापुटित मंत्र एवं मंत्र से पुटित मातृका को जो साधक लाखों बार न्यास करे, कुम्भक प्राणायाम के योग से तो वह महायोगी होता है तथा देवी को अपने नेत्रों से प्रत्यक्ष देखता है ॥ ४–५ ॥

षोढाहीनस्य मन्त्रस्य दुर्बलत्वं प्रजायते।
न सिद्धिदो भवेत् सोऽपि मोक्षदो न कदाचन ॥ ६ ॥

यह षोढा विधि कही गई है। क्योंकि षोढ़ाहीन मंत्र दुर्बल हो जाता है। वह कभी सिद्धि नहीं देता और न मुक्तिदायक ही होता है ॥ ६ ॥

---

१. 'अस्त्रमि'ति साधु पाठः। अस्त्रीबीज 'फट्' है।

यथा—अं आं अं, ओं अं ओं नमः। अं स्त्रीं अं नमः। स्त्रीं अं स्त्रीं नमः। अं ह्रीं अं नमः। ह्रीं अं ह्रीं नमः। अं हूँ अं नमः। हूँ अं हूँ नमः। अं फट् अं नमः। फट् अं फट् नमः। अं मूलं अं नमः। मूलं अं मूलं नमः। अं नमः अं, नमः अं नमः, अं लज्जा अं नमः, लज्जा अं लज्जा नमः, अं वधूम् अं नमः। वधू अं वधू नमः। अं कूर्चं अं नमः। कूर्चं अं कूर्चं नमः। पुनः अं फट् अं नमः। फट् अं फट् नमः। अं मूलं अं नमः मूलं अंमूलं नमः इति वायुधारणेन न्यासं कृत्वा मूलेन सप्तधा व्यापकं कुर्य्यात्। इति गुह्यषोढा।

इस प्रकार वायु धारण करके न्यास करे तथा मूल मंत्र का सात बार जप करके व्यापक करे।

ह्रीं ऐं ह्रौं क्लीं हुं फट्।

लज्जा वाग्भवबीजञ्च प्रासादं काम एव च।
वर्मबीजं ततोऽप्यस्त्रं न्यस्तसिद्धिमवाप्नुयात्॥ ७॥

इति महाषोढा।

'ह्रीं ऐं ह्रौं क्लीं हुँ फट्' अर्थात् लज्जावीज 'ह्रीं' और वाग्वीज 'ऐं' प्रासाद बीज 'ह्रौं' तथा कामबीज (क्लीं) वर्ण बीज 'हुँ' तथा अस्त्र बीज 'फट्' न्यस्त करने से साधक शीघ्र सिद्धि प्राप्त करता है। (इति महाषोढा)॥ ७॥

धूं धूं धूमावति! स्वाहा इति मन्त्रं जपेद्दश।
वर्णन्यासक्रमेणैव मायया पुटिता वधूः॥ ८॥

इसके बाद 'धूं धूं धूमावति! स्वाहा' इस मंत्र को दस वार जपे। वर्णन्यास के क्रम से तथा माया बीज से वधू को संपुटित कर लेवे॥ ८॥

वध्वा संपुटितान् वर्णान् विन्यसेत् साधकोत्तमः।
षड्धा न्यासं ततः कृत्वा महासिद्धिमवाप्नुयात्॥ ९॥

उत्तम साधक वही है जो वधू से संपुटित वर्णों का विन्यास करे। इस प्रकार छः प्रकार का न्यास करके साधक महासिद्धि प्राप्त करता है॥ ९॥

इति पूर्ववत् पुटितं कृत्वा वर्णन्यासवत् पञ्चाशत् स्थाने षड्धा न्यसेत्। इति महाषोढा।

इस प्रकार पूर्ववत् पुटित करके वर्णन्यास की तरह ही पंचाशत् वर्णों को छः वार न्यास करे।

प्रत्यहं क्रियते येन षोढाः वत्स! महामहा।
मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य स्वप्ने वाक्यं शृणोति हि॥ १०॥

इति ब्रह्मानन्दपरमहंसपरिव्राजकावधूतविरचिते तारारहस्ये चतुर्थः पटले त्रिपोढाप्रकरणम् ।

हे वत्स ! इस महापोढा न्यास को जो प्रतिदिन करता है, उसको मंत्र-सिद्धि होती है और वह साधक सोते समय (स्वप्न में) देवी का वचन सुनता है ॥ १० ॥

इस प्रकार हिन्दी व्याख्या में त्रिपोढा नामक
प्रथम प्रकरण समाप्त हुआ ॥ १ ॥

—:०:—

षोढा नक्तं मत्स्यमांसं परमान्नादिभिर्युतम् ।
सायंसन्ध्यां ततः कृत्वा योगं च परिकल्पयेत् ॥ ११ ॥
आधारमूलं ग्रीवाग्रं मेरुदण्डं प्रकीर्त्तितम् ।
तदाश्रित्य वसेत् लोके कोटितीर्थत्रयं[1] तनौ ॥ १२ ॥

षोढा न्यास, नक्तव्रत, परम अन्नादि के साथ मत्स्यमांस जुटाकर सायं-कालीन सन्ध्या करके निम्नलिखित योग की कल्पना करे। वह योग है—आधारमूल, ग्रीवाग्र तथा मेरुदण्ड—इन तीनो योगों का आश्रय लेकर सात्रक अपने इस देह-लोक में निवास करे, क्योंकि ये तीनों ही तीर्थ[1] के समान उत्तम हैं ॥११–१२॥

वामे तदंशे नाडी स्यात् इडा सर्वार्थसिद्धिदा ।
दक्षिणे पिङ्गला नाडी सर्वतीर्थमयी शुभा ॥ १३ ॥
सुषुम्ना मेरुपुरतः पुण्यनाड्यखिलप्रदा ।
तन्मध्ये चित्रिणी वज्रा तन्मध्यमध्यतः स्मृताः ॥ १४ ॥

अब यहाँ नाड़ी परिचय दिया जा रहा है। इस शरीर के वाम भाग में जो नाड़ी है, उसे 'ईडा' कहते हैं, यह सर्वार्थसिद्धि देने वाली है। दक्षिण भाग में जो नाड़ी है, उसे 'पिंगला' कहते हैं, यह शुभ एवं सर्वतीर्थमयी है। मूलाधार से मेरुपर्यन्त जो मध्य नाड़ी है, उसे 'सुषुम्ना' कहते हैं, यह समस्त प्रकार के पुण्य को देने वाली है। उसके मध्य में 'चित्रिणी' तथा चित्रिणी के मध्य में 'वज्रा' नाड़ी कही गयी है ॥ १३–१४ ॥

ब्रह्मनाडी समाख्याता ब्रह्मानन्दप्रदायिनी ।
इन्दीवरमृणालेव राजते मध्यमध्यतः ॥ १५ ॥

इसी 'वज्रा' का नाम 'ब्रह्मनाड़ी' भी है—जो ब्रह्मानन्दप्रदायिनी है। यह नाड़ी सबके बीचोबीच में कमल नाली के समान कोमल एवं सुन्दर शोभा देती है ॥ १५ ॥

---

१. 'तीर्थकोटित्रयम्' इति साधु पाठः ।

स्थिरवायुसमायोगात्तिष्ठत्येव चराचरम् ।
स तावत् कुण्डलीशक्तिर्नासावायुः प्रकीर्त्तितः ॥ १६ ॥
मायायोगसमायोगात् तत्र चाष्टस्थितानि वै ।
तिलकाकाररजतं तथा भाति च तिष्ठति ॥ १७ ॥

स्थिर वायु के समायोग से समस्त चराचर जगत् स्थित है। यही नासा-वायु 'कुण्डलिनी' शक्ति के नाम से कही गई है। वहीं मायायोग के प्रभाव से अष्टदल कमल स्थित है—जो तिलकाकार चाँदी के समान चमकता रहता है ॥ १६-१७ ॥

चैतन्यरहिता नाड्यो वद्धास्तिष्ठन्ति देहतः ।
तीर्थं पुण्यं महापीठं तदाश्रित्य च तिष्ठति ॥ १८ ॥
यन्त्रं च देवता तत्र मूले च परिनिष्ठिता ।
मेरोर्मूले यथा पद्मं मूलाधारं प्रकीर्त्तितम् ॥ १९ ॥

चैतन्यरहित सभी नाड़ियाँ शरीर से आवद्धमान हैं। पवित्र तीर्थ एवं महापीठ भी उसी के आश्रय से रहता है। वहीं पर यंत्र और देवता भी मूलाधार में परिनिष्ठित रहते हैं। मूल से लेकर मेरुपर्यन्त पद्म यथास्थान है, इसीलिये उसे 'मूलाधार' कहा गया है ॥ १८-१९ ॥

चतुरङ्गुलविस्तीर्णमुच्छ्रितं चतुरङ्गुलम् ।
चतुःपर्णं शोणपर्णं त्रिकोणं कर्णिका ततः ॥ २० ॥
तन्मध्ये विन्दुरूपो हि काकिनीशक्तिसंयुता ।
स्वयंभूलिङ्गमाख्यातं स्वर्णवर्णं सुशोभनम् ॥ २१ ॥

चार अंगुल लंवा, चार अंगुल ऊंचा, चार दल का शोणपर्ण 'त्रिकोण' के वाद कर्णिका हो, उसके वीच में विन्दुरूप शक्ति सहित 'काकिनी' हो, स्वर्ण वर्ण का सुन्दर हो, वह 'स्वयम्भूलिङ्ग' कहलाता है ॥ २०-२१ ॥

यवपञ्चकमानन्तु महालिङ्गं मनोहरम् ।
वेष्टयित्वा च विहरेत् शक्तिः कुण्डलिनी परा ॥ २२ ॥
विलोलभुजगाकारा ब्रह्मरूपविधारिणी ।
सार्द्धत्रिवलयाकारा महायोगमयी सदा ।
षट्पदैव प्रोच्यमाना नैव लिङ्गं स्पृशेत् क्वचित् ॥ २३ ॥

इस प्रकार पाँच यव के प्रमाण का एक सुन्दर महालिङ्ग है, उसे घेरकर श्रेष्ठ कुण्डलिनी शक्ति विहार कर रही है। जो चंचल सर्पाकार एवं ब्रह्मरूप-धारिणी है, जो साढ़े तीन फेंट का वलयाकार तथा महायोगमयी होने से सदा 'षट्पदा' के नाम से ही कही गयी है। इसलिये कहीं भी लिङ्ग को स्पर्श नहीं कर पाती ॥ २२-२३ ॥

सूर्य्यकोटिप्रतीकाशा चन्द्रकोटिसुशीतला।
तडिच्चञ्चलरूपाभा परब्रह्मस्वरूपिणी ॥ २४ ॥

वह कुण्डलिनी कोटि सूर्य के तेज के समान प्रज्वलित तथा करोड़ों चन्द्रमा के प्रकाश के समान शीतल है, बिजली के समान चंचल रूपवाली परब्रह्मस्वरूपिणी वह कुण्डलिनी है ॥ २४ ॥

विराटमूर्त्तिर्देवेशो विहरेत् पूर्वतो दले।
चित्कलाशक्तिसंयुक्तः स्तूयते च कृताञ्जलिः ॥ २५ ॥

वहाँ पूर्वदल में विराट् रूपधारी देवेश (शिव) विहार कर रहे हैं, जो चित्कला शक्तिसहित एवं कृताञ्जलिस्वरूप अन्य देवताओं से स्तुति किये जा रहे हैं ॥ २५ ॥

महाकाली दक्षिणे च कालिकाशक्तिसंयुतः।
स्तूयते परया भक्त्या महाज्ञानस्वरूपिणीम् ॥ २६ ॥

दक्षिण दल में कालिक शक्तिसहित महाकाल महाज्ञानस्वरूपिणी जगन्माता की परम भक्ति से स्तुति कर रहे हैं ॥ २६ ॥

नारायणः पश्चिमे च महालक्ष्मीकुलेश्वरः।
स्तूयते परया भक्त्या भावेन कुण्डलीं पराम् ॥ २७ ॥

पश्चिम दल में महालक्ष्मी कुलेश्वर नारायण भगवान् सबके साथ परम भक्तिपूर्वक उस श्रेष्ठ कुण्डलिनी देवी की स्तुति करते हैं ॥ २७ ॥

उत्तरे च महादेवः पार्वत्या सह शङ्करः।
स्तूयते तारिणीं देवीं सर्पाकारां महेश्वरीम् ॥ २८ ॥

उत्तर दिशा में पार्वतीसहित भगवान् शंकर महादेवजी सर्पाकार उसी महेश्वरी तारिणी देवी की स्तुति कर रहे हैं ॥ २८ ॥

यदा कदाचित्त् तद्वाचामेकं वाक्यं शृणोति हि।
तदा सृष्टिं स्थितिञ्चापि संहारं कर्त्तुमेव हि ॥ २९ ॥

जब कभी उनकी वाणियों में से एक वाक्य सुन लेते है, उस समय जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं लय करने में समर्थ हो जाते हैं ॥ २९ ॥

ते शक्ताः स्युर्महादेव ! साधु साधु प्रकाशितम्।
यदा लिङ्गे भवेल्लिप्ता तदा निद्रां व्रजेन्नरः ॥ ३० ॥

भैरवी कहती हैं—'हे महादेव ! वे समर्थ हों—यह आपने अच्छा कहा है। पर जब मनुष्य उस लिङ्ग में लिप्त हों, तो अवश्य निन्दित होंगे ही ॥ ३० ॥

यदा सा परमा शक्तिः स्थिरलग्ने स्थिरा भवेत्।
तदा पुण्यकरो लोको भविष्यति न संशयः ॥ ३१ ॥

जब वह श्रेष्ठ शक्ति स्थिर लग्न में सुस्थिर होवे तब संसार पुण्यमय (सुखी) होगा, इसमें तनिक भी संशय नहीं ॥ ३१ ॥

यदा मूर्द्धनि लिङ्गस्य सा ददाति सुखं परम् ।
जपशक्तो भवेज्जीवस्तत्र शब्दे च सिद्धिदः ॥ ३२ ॥

जब लिङ्ग के सिर पर वह स्थित हो, तब वह परम सुख देती है। तब वहाँ पर जीव जप में लीन होता है और तभी उस शब्द में सिद्धि मिलती है ॥३२॥

यदा पुच्छं लिङ्गमूर्ध्नि ददाति ब्रह्मरूपिणी ।
गुरुतल्पं ब्रह्मयोषां गच्छेद् बालाञ्च कामिनीम् ॥ ३३ ॥

जब वह ब्रह्मरूपिणी कुण्डलिनी लिंग के ऊपर अपनी पुच्छ रखती है, तब साधक गुरुशय्या, तथा ब्रह्मयोग्या (ब्रह्माणी) एवं कामिनी बाला के पास जा सकता है ॥ ३३ ॥

षड्दलं लिङ्गमूले च पद्मं स्याद्रक्तपाण्डरम् ।
तन्मध्ये रक्तपाण्डुञ्च लिङ्गं विश्वोद्भवात्मिकम् ॥ ३४ ॥
डाकिनीशक्तिसंयुक्तं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो भर्गश्चन्द्रः शचीपतिः ॥ ३५ ॥
राजते दलमध्ये तु सर्वशक्तिसमन्वितः ।
स्तूयते परमं लिङ्गं सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ ३६ ॥

उस लिंग मूल में षड्दल पद्म रहता है—जो लाल एव पाण्डुरंग के मिश्रण का होता है उसके भीतर पुनः रक्तपाण्डु (रक्तश्वेत) लिंग होता है—जो विश्वोद्भव-कारक है। तथा डाकिनी शक्तिसंयुक्त होकर वही सर्वसिद्धिदायक है। साथ ही निज शक्तियों के साथ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, भर्ण (सूर्य), चन्द्र, इन्द्र में सभी उस षड्दल के बीच में विराजते रहते हैं जो सबसे पूज्य एवं सकल मनोरथों को देनेवाले हैं ॥ ३४–३६ ॥

मूलाधारात् कुण्डलिनीं तत्र यत्नेन चालयेत् ।
तस्याः स्पर्शनमात्रेण दलं तस्योत्तरं मुखम् ॥ ३७ ॥
पद्मोपरि व्रजेन्नैव महाशक्तो [1]महेश्वरि ! ।
किन्तु तत्र स्थिताः सर्वे स्ववां गच्छन्ति तत्कुले ॥ ३८ ॥

---

१. 'महेश्वरि' इति स्थाने 'महेश्वरः' इति पाठः साधीयान् ।

इसलिये वहाँ यत्नपूर्वक मूलाधार से कुण्डलिनी को जागृत करे; क्योंकि उसके स्पर्शमात्र से ही उसका ऊपरी मुख खुल जाता है। तब महाशक्तिशाली महेश्वर उस पथ पर चल नहीं सकते। किन्तु वहाँ स्थित रहकर सभी देवी-देवगण उस कुल में जाने लगते हैं ॥ ३७–३८ ॥

एकत्रीभूय ते सर्वे स्तुवन्ति सिद्धिदायिनीम् ।
नाभावष्टदलं पद्मं नवीनजलदप्रभम् ॥ ३९ ॥

तब वहाँ एकत्र होकर सभी देवता उस सिद्धिदायिनी कुण्डलिनी देवी की स्तुति करने लगते हैं। फिर नाभि में अष्टदल कमल दीख पड़ता है—जो नूतन मेघ सदृश श्याम वर्ण का (नील कमल) है ॥ ३९ ॥

विश्वान्तकरस्तत्र लिङ्गं शाकिनीशक्तिसंयुतम् ।
इन्द्रो वह्निः पितृपतिर्नैर्ऋतो वरुणो मरुत् ॥ ४० ॥
कुबेरस्तत्र ईशानः स्वस्वशक्तिसमन्वितः ।
तत्र पद्मस्य मध्ये तु ब्रह्मनाडीसमाश्रिताम् ॥ ४१ ॥

वहीं पर विश्व का अन्त करने वाला लिङ्ग है। जो शाकिनी शक्ति के सहित है। वहीं अष्टदल कमल में इन्द्र, अग्नि, पितृपति (यम), नैर्ऋत, वरुण, पवन, कुबेर, ईशान अपनी शक्तियों के साथ विराजते हैं। उसी पद्म के मध्य में ब्रह्मनाड़ी को साधक समाश्रित करे ॥ ४०-४१ ॥

कृत्वा तु तस्य पात्राणि चोत्तरञ्च विभावयेत् ।
ते ते देवास्ततो गत्वा स्तुवन्ति भक्तिसंयुताः ॥ ४२ ॥

साथ ही उसके पात्रों को भी न्यास करके आगे अनुभव (ध्यान) करे; क्योंकि तथोक्त वे सभी देवता भक्तियुक्त होकर वहीं जाने पर स्तुति करने लगते हैं ॥ ४२ ॥

हृदये च ततो ध्यायेत् पद्मं षोडशभिर्दलैः ।
महाशुक्लं महापद्मं गजकुम्भाकृतिं दलम् ॥ ४३ ॥
इन्द्रश्चन्द्रो गुरुः शुक्रो वामदेवः शिवापतिः ।
ईश्वरः शङ्करः कृष्णः वामदेवः कुलेश्वरः ॥ ४४ ॥

कमलानायकः कोपः कामरूपः कृपामयः।
करणे षोडशके च स्वस्वयोषासमन्वितः ॥ ४५ ॥

इसके बाद योगाचार द्वारा इस प्रकार ध्यान करना चाहिये। साधक अपने हृदय में उस षोडशदल कमल का ध्यान करे, जो अत्यन्त श्वेत एवं हाथी के मस्तक के समान है। उस महापद्म में अपनी-अपनी शक्तियों सहित इन्द्र, चन्द्र, गुरु, शुक्र, वामदेव, शिवापति, ईश्वर, शंकर, कृष्ण, वामदेव, कुलेश्वर, कमलानायक, कोप, कामरूप, कृपामय नामक षोडश देवता निवास करते हैं ॥ ४३-४५ ॥[1]

स्तूयते सर्वदा भक्त्या महालिङ्गं महेश्वरम्।
डाकिनीशक्तिसंयुक्तं भावयेच्च परात्परम् ॥ ४६ ॥

उक्त सभी देवता भक्तिपूर्वक उस महालिङ्ग महेश्वर की स्तुति करते हैं। साथ ही वहाँ डाकिनी शक्ति के साथ परात्पर ब्रह्म का ध्यान (भावना) वे करते रहते है ॥ ४६ ॥

तत् पन्थानं समारुह्य तत्र देवीं समानयेत्।
तद्वामे राजते जीवस्तदधः पाप एव च ॥ ४७ ॥

साधक को चाहिये कि उस मार्ग पर आरूढ़ होकर वहाँ देवी (कुण्डलिनी) को भलीभाँति लावे। उसके वाम भाग में 'जीव' तथा नीचे के भाग में 'पाप' रहता है ॥ ४७ ॥

सुरापानहृदा युक्तं गुरुतल्पकटिद्वयम्।
वज्रदन्तसमोपेतं मृदुदन्तविभूषितम् ॥ ४८ ॥

महाकायं महादेवरहितं हृदये सदा।
नखे स्वर्णहृतं चिह्नं सर्वदोषयुतं परम् ॥ ४९ ॥

नवाकारं मोहहीनं कुलाचारविहीनकम्।
कामदं कामरूपेण रतिदोषप्रदं तथा ॥ ५० ॥

---

१. श्लोक ४४ में दो बार 'वामदेव' का प्रयोग खटकता है। 'कमलानायक' एक मानने से केवल १४ देवता के नाम होते हैं, १६ नहीं।

वह पाप इस प्रकार का है—सुरापानरूपी हृदय से युक्त, गुरुशय्या पर दोनों के कटि भाग हों, जिसके दाँत वज्र के समान बाहर से हों और भीतर से मृदुदन्त हों, जो महाकाय हो, जिसके हृदय में महादेव न हों, जिसके नख सुवर्ण के समान पीले हों, जो सब प्रकार के दोषों से युक्त हों, जो नवाकार एवं मोक्ष-हीन हो, जो कुलाचार विवर्जित हो, जो कामरूप होकर कामना देनेवाला हो, तथा जो रति दोषप्रद हो—ऐसा वह अधम पाप है ॥ ४८–५० ॥

ततः परं भावयेच्च दशपत्रं सुशोभनम् ।
नीलवर्णं महापद्मं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ५१ ॥

इसके बाद उस सुन्दर दशदल पद्म की भावना करे—जो नीलवर्ण का महापद्म है और सब प्रकार की सिद्धियों को देनेवाला है ॥ ५१ ॥

महालिङ्गं कामनाम राजते कामिनीयुतम् ।
कामदेवश्च साम्बश्च कामाचारश्च कामुकः ॥ ५२ ॥
कामिनीनायकः कामो ब्रह्मानन्दः कुलेश्वरः ।
त्रिलोकेशः सदानन्दः कौलो दशदले स्थितः ।
स्वस्वशक्तिसमोपेताः स्तुवन्ति कुण्डलीं पराम् ॥ ५३ ॥

कामनामक एक महालिङ्ग कामिनी के साथ शोभा दे रहा है। जो कामदेव, साम्ब (सदाशिव), कामाचार, कामुक (कामी), कामिनीनायक, कामदेव, ब्रह्मानन्द, कुलेश्वर, त्रिलोकेश, सदानन्द—आदि नाम से कौलरूप में विद्यमान होकर दशदल कमल में निवास करते हैं। ये सभी अपनी शक्तियों के साथ परदेवता कुण्डलिनी देवी की स्तुति करते हैं ॥ ५२–५३ ॥

ललाटे नेत्रपत्रञ्च ब्रह्मलिङ्गसमन्वितम् ।
सशक्तिर्विष्णु रुद्रश्च स्तौति तारासमन्वितः ॥ ५४ ॥
तं विभिद्य गता देवी कुण्डली शक्तिरुत्तमा ।
अधोमुखं सहस्रारं मेरुदण्डाग्रनाडीतः[1] ॥
त्रिलोकस्थास्ततो देवाः सन्ति तत्रैव शक्तिभिः ॥ ५५ ॥

---

1. 'मेरुदण्डाग्रनाडितः' इति साधु पाठः ।

साथ ही जिनके ललाट में ब्रह्मलिङ्ग के साथ बेत्रपत्र हैं, ऐसे उन सदाशिव प्रभु की शक्तिसहित विष्णु तथा तारासहित रुद्र भी स्तुति करते हैं। उसे भी पार करके उत्तम कुण्डलिनी देवी अधोमुख सहस्रार चक्र तक गई हैं और मेरुदण्ड से आगे की नाड़ी से तीनों लोकों में विराजनेवाले त्रिदेव अपनी शक्तियों के साथ वहीं रहते हैं ॥ ५४–५५ ॥

नाडीत्रयसमोपेतं सरोजं द्वादशं दलम्।
त्रिकोणकर्णिका तत्र ब्रह्मविष्णुशिवान्विता।
दन्तावीकवती शय्या शक्तिवज्रसमन्विता ॥ ५६ ॥

तीनों नाड़ियों के साथ एक द्वादश दल का कमल है। वहीं पर 'त्रिकोण-कर्णिका' है—जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और शिव विराजते हैं। साथ ही एक 'दन्तावीकवती' नामक एक शय्या है—जो शक्ति वज्र समन्वित है ॥ ५६ ॥

तत्रापि श्रीगुरुः साक्षात् सर्वभूतहिते रतः।
कर्पूरधवलं देवं ब्रह्मरूपिणमव्ययम् ॥ ५७ ॥

वहीं पर सब जीवों पर दया करनेवाले श्रीगुरुदेव (शिवगुरु) रहते हैं—जो कर्पूर के समान धवल हैं तथा अनुपम एवं ब्रह्मस्वरूप हैं ॥ ५७ ॥

परमं शिवमाख्यातं कौबेरास्यं विभावयेत्।
मूलादिदेवताः सर्वे स्तुवन्ति सर्वकारणम् ॥ ५८ ॥

कुबेरमुखी उस प्रख्यात शिव की भावना करनी चाहिये; क्योंकि मूल प्रकृति आदि सभी देवगण उस सर्वकारणस्वरूप सदाशिव प्रभु की स्तुति करते हैं ॥ ५८ ॥

कुण्डलिनीं महाशक्तिं ललाटे कमलावतीम्।
भावयेच्छिवरूपेण वामभागे समानयन् ॥ ५९ ॥

ललाट देश में 'कमलावती' नाम से विख्यात महाशक्ति कुण्डलिनी देवी को वाम भाग से ले आते हुए शिवस्वरूप से भावना करे ॥ ५९ ॥

वामे रतिञ्च संस्थाप्य गुरोरेव सुसिद्धये।
समुत्थाय गुरुस्ताञ्च साकारां मन्त्ररूपिणीम् ॥ ६० ॥

हैं—ऐसी तारा से भी पूज्यतम एवं प्रियतम मूल प्रकृतिरूप चिन्मय ब्रह्म का स्मरण करता हुआ स्वामी श्री ब्रह्मानन्द गिरि कृत इस साधन विधानवाले "तारारहस्य" नामक शुभ ग्रन्थ का "योगाचारविधि" नामक यह सर्वार्थसिद्धि-दायक चतुर्थ पटल समाप्त ॥ ६४ ॥

इस प्रकार हिन्दी व्याख्या में योगाचारविधि नामक
चतुर्थ पटल समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

समाप्तश्चाऽयं ग्रन्थः

—:०:—

तत्रापि गुरुणा देवि ! वीतशक्ता महेश्वरी ।
उपरि स्थीयते तेन महामोहविनाशिनी ॥ ६१ ॥

उस समय गुरु ही भलीभांति सिद्धि के लिये साधक के वाम भाग में रति (शक्ति) की स्थापना करे तथा उस मंत्रस्वरूपा शक्ति को ऊपर उठावे । पुनः वह रागरहित महेश्वरी महामोह को नष्ट करनेवाली बनकर वहीं स्थित रहे ॥ ६०–६१ ॥

वामपादाङ्गुष्ठतोऽस्याः वक्ष्यतेऽमृतमुत्तमम् ।
तत् पीत्वा सुखदुःखाभ्यां जीवो जीवति नित्यशः ॥ ६२ ॥
भावनाभ्यासयोगेन यदि नाडीं प्रवेशयेत् ।
महासिद्धिं स लभतेऽप्यमरो जयते ध्रुवम् ॥ ६३ ॥

तब उस देवी के वाम पाद के अँगूठे से निकलते हुए उत्तम अमृत को पीकर समयानुसार सुख-दुःख से रहित होकर नित्य ही साधक जीव जीता रहता है । इसलिये यदि कोई साधक भावना एवं अभ्यास योग द्वारा नाड़ी को यथास्थान प्रवेश करा सके, तो निश्चय ही वह महासिद्धि प्राप्त कर अमर हो जावे । ऐसा तारायोग एवं योगसार में भी लिखा है ॥ ६२–६३ ॥

इति तारायोगे योगसारः ।

यत्रास्ते कमला कृताञ्जलिपरा वीणाधरा शारदा
तारारााध्यमनुस्मरन् प्रियतमं चोभावचः कारणम् ।
ब्रह्मानन्दकृतौ सुसाधनविधौ तारारहस्ये शुभे
योगाचारविधौ चतुर्थपटलः सर्वार्थसिद्धिप्रदः ॥ ६४ ॥

इति तारारहस्यतन्त्रं समाप्तम् ।

जहाँ पर श्रीलक्ष्मी हाथ जोड़कर खड़ी रहती हैं, जहाँ पर श्री शारदा भी वीणा धारण कर निवास करती हैं । जो उमा-वचन का एकमात्र कारणस्वरूप

---

१. नोट—'तारासहस्रनामस्तोत्रं' रुद्रयामलोक्तं "ताराभक्तिसुधार्णवे" २३५ पृष्ठतः २४७ पृष्ठं यावदस्ति तत्रैव द्रष्टव्यम् ।

हैं—ऐसी तारा से भी पूज्यतम एवं प्रियतम मूल प्रकृतिरूप चिन्मय ब्रह्म का स्मरण करता हुआ स्वामी श्री ब्रह्मानन्द गिरि कृत इस साधन विधानवाले "तारारहस्य" नामक शुभ ग्रन्थ का "योगाचारविधि" नामक यह सर्वार्थसिद्धि-दायक चतुर्थ पटल समाप्त ॥ ६४ ॥

इस प्रकार हिन्दी व्याख्या में योगाचारविधि नामक
चतुर्थ पटल समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

समाप्तश्चाऽयं ग्रन्थः

—: o :—